वर्ष: 44, अंक: 2, मार्च-अप्रैल 2021

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

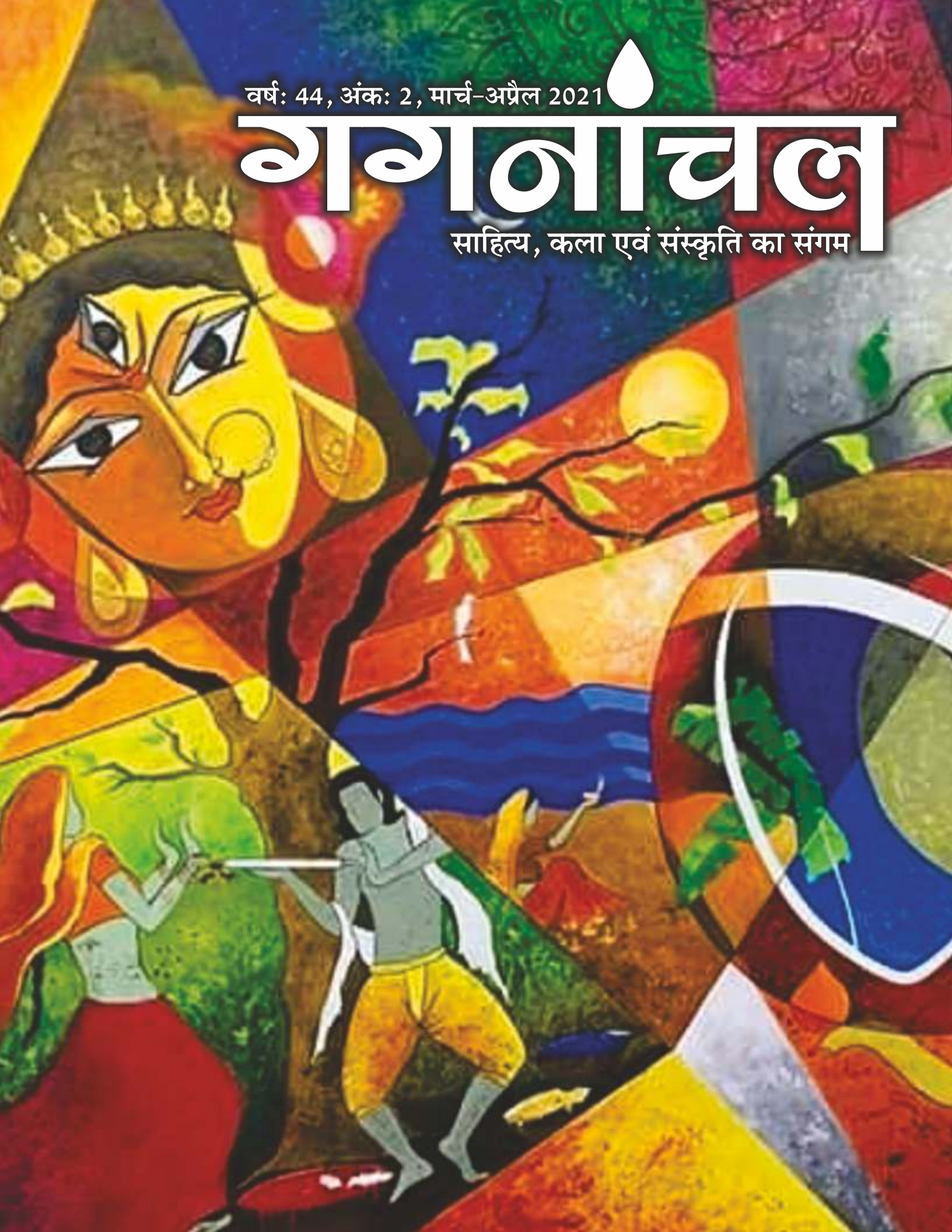

जयंती स्मरण

महादेवी वर्मा

26 मार्च, 1907

वे मुस्काते फूल, नहीं
जिनको आता है मुरझाना,
वे तारों के दीप, नहीं
जिनको भाता है बुझ जाना!

वे सूने से नयन, नहीं
जिनमें बनते आँसू मोती,
वह प्राणों की सेज, नहीं
जिसमें बेसुध पीड़ा, सोती!...

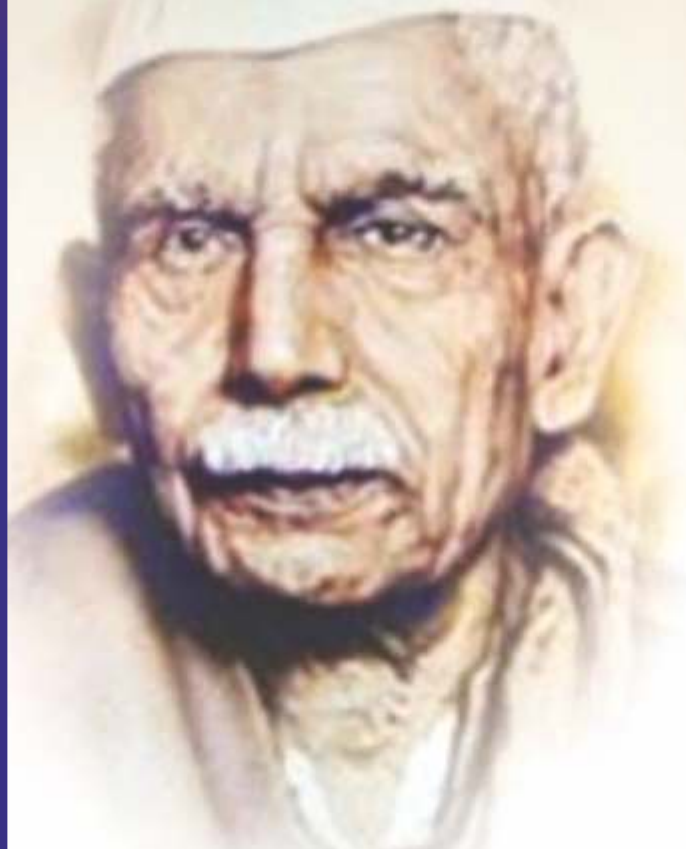

जयंती स्मरण

माखनलाल चतुर्वेदी

4 अप्रैल, 1889

छोड़ चले, ले तेरी कुटिया,
यह लुटिया-डोरी ले अपनी,
फिर वह पापड़ नहीं बेलने
फिर वह माला पड़े न जपनी।

यह जागृति तेरी तू ले-ले,
मुझको मेरा दे-दे सपना,
तेरे शीतल सिंहासन से
सुखकर सौ युग ज्वाला तपना।

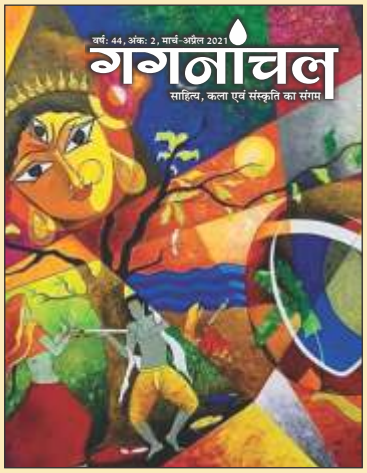

प्रकाशक

दिनेश कुमार पटनायक

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

संपादक

डॉ. आशीष कंधवे

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,

नई दिल्ली-110002

ई-मेल : spdawards.iccr@gov.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध
http://www.iccr.gov.in/Publication/Gagananchal
पर क्लिक करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	₹ 500
	यू.एस	$ 100
त्रैवार्षिक	:	₹ 1200
	यू.एस.	$ 250

उपर्युक्त सदस्यता शुल्क का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रण : स्पेस 4 बिजनेस सोल्यूशन्स प्रा. लि. दिल्ली

ISSN : 0971-1430

वर्ष: 44, अंक: 2, मार्च-अप्रैल 2021

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

इस अंक के आकर्षण

सिमरन आंटी

सुसंस्कृत, संपन्न एवं आत्मनिर्भर भारत

गाँधी की सांस्कृतिक चेतना एवं राष्ट्रवाद

पारसी रंगमंच की अभिनेत्रियाँ

भारत और आर्मेनियाई समुदाय

अखबारी हिंदी का बदलता स्वरूप

हिंदी विदेशी भाषा शिक्षा में 'आत्मनिर्भर भारत' की संकल्पना नवाचार की आवश्यकता

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

अनुक्रम

वर्ष 44, अंक 2, मार्च-अप्रैल 2021

प्रकाशकीय

3 **भाषा का प्रश्न और पत्रकारिता**
दिनेश कुमार पटनायक

संपादकीय

4 **रामराज बैठे त्रैलोका**
डॉ. आशीष कंधवे

सांस्कृतिक-विश्व

6 **सुसंस्कृत, संपन्न एवं आत्मनिर्भर भारत**
प्रो. लल्लन प्रसाद

लोक-संस्कृति

10 **भारतीय साहित्य में नीति और वृंद-सतसई**
डॉ. प्रेम सिंह

कथा-सागर

14 **सिमरन आंटी**
अंजना वर्मा

18 **इन्द्रधनुष**
रोचिका अरुण शर्मा

दृष्टि-सृष्टि

22 **सांस्कृतिक मूल्यों की युगानुरूप व्याख्या और हिंदी कविता**
कविता भाटिया

26 **आदिवासी जन-जीवन का 'पार' कहाँ**
डॉ. दीपक कुमार पांडेय

चिंतन-मंथन

30 **गाँधी की सांस्कृतिक चेतना एवं राष्ट्रवाद**
राजीव गुप्ता

35 **पारसी रांगमंच की अभिनेत्रियाँ**
डॉ. आशा

देश-देशांतर

41 **भारत और आर्मेनियाई समुदाय**
माने मकर्तच्यान (आर्मेनिया)

शोध-संसार

46 **जन आंदोलन की 'कर्मभूमि'**
डॉ. हरीन्द्र कुमार

50 **संत सहजोबाई का काव्य-मर्म**
आलोक कुमार पाण्डेय

साहित्य-वैविध्य

54 **नज़ीर अकबराबादी की भाषा और लोक-रंग**
डॉ. संगीता राय

नाट्य-संसार

59 **ध्रुवस्वामिनी नाटक में इतिहास और कल्पना**
डॉ. शैलजा

काल-मंथन

64 **आज की कविता**
हेमंत कुकरेती

भाषा-विमर्श

66 **अखबारी हिंदी का बदलता स्वरूप**
डॉ. आलोक रंजन पांडेय

व्यंग्य-वीथिका

72 **नफरत से मुहब्बत तक का सफर**
अर्चना चतुर्वेदी

लघुकथा-सरोवर

74 डॉ. पुष्पलता
75 इंजी. आशा शर्मा
76 खेमकरण 'सोमन'
58 मृणाल आशुतोष

ज्ञान-कलश

77 **हिंदी विदेशी भाषा शिक्षा में 'आत्मनिर्भर भारत' की संकल्पना नवाचार की आवश्यकता**
द्विवेदी आनंद प्रकाश शर्मा

पुस्तक-समीक्षा

82 **समीक्षाएँ चार पुस्तकों की**
डॉ. कमल किशोर गोयनका

काव्य-मधुबन

85 संजय पंकज
86 गरिमा सक्सेना
86 अलका दूबे
87 अशोक सिंह
88 सत्या शर्मा 'कीर्ति'
89 शोभा त्रिपाठी
90 गीतांजलि कालरा

91 **गतिविधियाँ : आई.सी.सी.आर.**

दिनेश कुमार पटनायक
महानिदेशक

भाषा का प्रश्न और पत्रकारिता

हिंदी अभिव्यक्ति की सबसे अच्छी भाषा है और हिंदी भाषा राष्ट्र के भावनात्मक अंत:करण के सूत्र का परिचायक है।

संस्कृत से लेकर पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तक की यात्रा करते हुए भारतीय भाषाओं के इतिहास में एक ऐसी भाषा का जन्म हुआ जो विभिन्न प्रकार के जन-समाज का समग्रता से प्रतिनिधित्व कर सके।

एक ऐसी भाषा जो शिष्टता, नागरिकता ग्राम्यता, शहरीकरण तथा सभी प्रकार के शब्द संपदा को अपने में समाहित कर सके।

दुनिया की समस्त भाषाओं का निर्माण समाज ने किया है लेकिन हिंदी पहली भाषा है जिसने अनेक समाज और उनकी संस्कृतियों का निर्माण किया है। हिंदी में अभिव्यक्ति की सर्वाधिक संभावनाओं की तलाश की है और अपनी इसी उद्देश्य को लेकर आगे बढ़ते हुए भारत की अन्य भाषाओं से भी संरचना विन्यास, शब्द कोष और सांस्कृतिक आदान-प्रदान की परंपरा को कायम कर रही है।

हिंदी की प्रकृति उसके चरित्र से जुड़ी हुई है भाषाओं के लंबे इतिहास में ऐसी इंद्रधनुषी भाषा का अस्तित्व शायद ही कहीं मिले।

अपने भौगोलिक विस्तार के कारण और इनमें 18 बोलियों, सैकड़ों उपबोलियों की विविधता को न केवल व्याकरण की दृष्टि से अपितु सांस्कृतिक बोध के स्तर पर भी हिंदी धारण कर चुकी है। हिंदी में अन्य भाषाओं के शब्दों को समाहित करने का गुण सबसे अधिक है।

मैं इसके लिए आपको कुछ उदाहरण भी दूँगा कि किस तरह से अंग्रेजी भाषा ने हिंदी के शब्दों को अपनाया है और हिंदी ने किस तरह से अन्य भाषाओं के हजारों शब्दों को अपने अंदर समाहित कर लिया है। आधार, अच्छा और बापू जैसे शब्द अंग्रेजी में हिंदी से अपना लिए गए हैं।

युग-विशेष की साहित्यिक पत्रकारिता ही उस युग के साहित्यिक आंदोलन, बहस, समस्या, प्रश्न और चुनौतियों से हमें अवगत कराती हैं।

इसके अतिरिक्त नई साहित्यिक प्रवृत्तियों के उभरने, उनके क्रमश: विकास और विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों के आपसी अंतर्विरोध एवं अंतर्द्वंद्व से भी हमें अंतरंग परिचय कराती है।

साहित्यिक पत्रकारिता हमारे समक्ष युग-विशेष का भरा-पूरा और कलात्मक प्रतिबिंब प्रस्तुत करती है। समकालीन समस्याओं और चुनौतियों को समझने में हमें मदद मिलती है और भविष्य के सर्जनात्मक संघर्षों का परिप्रेक्ष्य भी दिखाई देता है। आधुनिक चेतना, स्वच्छंद आत्माभिव्यक्ति और व्यक्तिगत पाठक समुदाय के विकास के साथ ही साहित्यिक पत्रकारिता का विकास भी होता रहा।

हिंदी में लघु पत्रिका-आंदोलन आजादी के बाद उस समय शुरू हुआ था जब साहित्यकारों के समूहों ने महसूस किया कि बड़ी पत्रिकाएँ अपने व्यवसायिक या वैचारिक दबावों के कारण कुछ विशेष ही रचनाएँ छापती हैं। अत: अपनी बात कहने और लोगों तक पहुँचाने के लिए लघु पत्रिका आंदोलन की शुरुआत हुई जिसका एक बड़ा आधार अपनी भाषा को स्थापित करना भी था।

दिनेश कुमार पटनायक

डॉ. आशीष कंधवे
संपादक

रामराज बैठे त्रैलोका

सृष्टि अर्थात जीवन का मूलाधार। सृष्टि अर्थात हमारे अस्तित्व की परिभाषा। सृष्टि अर्थात प्रकृति और पुरुष के बीच में समन्वय। सृष्टि अर्थात अधिपति और अधिपत्य का संतुलन। आज इस लेख के माध्यम से मैं उसी अधिपति और अधिपत्य के संतुलन पर विचार प्रकट करूँगा।

जब भी हम सृष्टि पर विचार करते हैं तो उसके विस्तार में हमें अनेक आयाम देखने को मिलते हैं। अनेक गतिविधियों से हमारा सामना होता है। अनेक विधियों को सीखते हुए हम सृष्टि के अंश मात्र के भी नियंता न होते हुए भी अपने कर्मों का फल अपने जीवन में ही प्राप्त करने के लिए तत्पर रहते हैं। हम अधिपति बनना चाहते हैं। हम अधिकारी बनना चाहते हैं। हम नीति और नियत के विरुद्ध अपने अस्तित्व के लिए लड़ते हैं। इस सारी प्रक्रिया में कई बार हम सफल होते हैं कई बार हम असफल हो जाते हैं। वैचारिक प्रवाह नित्य-प्रतिदिन हमारे भीतर उगते हैं, उठते हैं और गिर जाते हैं। कुछ वैचारिक प्रवाह ही ऐसे होते हैं जो आपके जीवन काल में आपके साथ कुछ वर्षों तक या फिर एक लंबी कालावधि तक आपकी जीवन यात्रा में शामिल रहे।

सूर्य-चंद्रमा, वर्षा-शरद, पशु-पक्षी, पर्वत-नदी आदि-आदि पर हमारा विचार बना रहता है दौड़ता रहता है फिर भी इस महान विश्व का नियमबद्ध संचालक हमारी नजरों से हमेशा ओझल ही रहता है। इसलिए हमारी यह विवशता होती है कि हम उस अदृश्य संचालक शक्ति की कल्पना करें और उसे परिभाषित करें ताकि सृष्टि के राज्य को नियंत्रित करने वाले साकार या निराकार स्वरूप की विवेचना हो सके। हम राम की प्रभुता को समझ सके और रामराज्य की संप्रभुता को परिभाषित कर सकें।

दरअसल, इन सब बातों के निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए हमें राम के उन क्रांतिकारी विचारों को समझना पड़ेगा जिसे हम 'रामराज्य' कहते हैं। यहाँ मैं आप सबके बीच यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ की 'राम' यहाँ क्रांति के प्रतीक नहीं हैं परंतु 'रामराज्य' भारतीय संस्कृति में क्रांति का प्रतीक है। रामराज्य ऐसी क्रांति है जो अनवरत चली जा रही है।

मैं इसके इतिहास में नहीं जाऊँगा। परंतु मैं यह जरूर कहूँगा कि समकालीन परिदृश्य में भी रामराज्य की परिकल्पना किसी क्रांति से कम नहीं है। अगर हम इसके प्रमुख कारणों के बारे में संक्षेप में चर्चा करें तो यह कहा जा सकता है कि लौकिक जीवन में शुद्धता हमारे व्यक्तित्व को शुद्ध तो बनाती है लेकिन व्यक्तित्व-शोधन मात्र से हमारा काम नहीं चलता। इसलिए प्रकृति के नियमानुसार व्यक्तियों का एक समुदाय और उस समस्त समुदाय को व्यवस्थित रखना आवश्यक हो जाता है। व्यवस्था-हीन समुदाय के द्वारा अराजकता फैलाने के कारण शुद्ध व्यक्ति-विशेष को भी सुख-शांति से वंचित रहना पड़ता है।

इसलिए स्वाभाविक नियम के अनुसार सृष्टि में स्थित मानव समुदाय को भी व्यवस्थित रखना आवश्यक है।

हर समुदाय की विशेष कर मानव समुदाय की इस व्यवस्था का ही नाम 'राज्य' है। अधिकांश समय देखने को मिलता है कि राज्य के नाम पर सुखद व्यवस्था के स्थान में दुखप्रद व्यवस्थाएँ मानव समाज में देखी जाती है। इसलिए उनके साथ राम शब्द जोड़कर प्रकट किया गया है ताकि यदि सुख-समृद्धि चाहो तो हर राज्य को राम रूपी शोध से शुद्ध रखना चाहिए।

सरल शब्दों में हम कहें तो कहा जा सकता है कि सारी सृष्टि में तथा सृष्टि के प्रतीक समूहों में व्यवस्था सर्वोपरि है। व्यवस्थित समाज से ही व्यक्तित्व का निर्माण होता है। व्यक्तित्व के निर्माण से ही सामाजिक समरसता बढ़ती है और राज्य सबल होता है। भारतीय संस्कृति में इसीलिए रामराज्य की परिकल्पना को इस तरह से किया गया है कि जब किसी समूह में या राज्य में प्रधान कर्ता

ईश्वरवाची राम नाम से प्रेरित रहे तो वहाँ की व्यवस्था अन्य व्यवस्थाओं की तुलना में ज्यादा न्याय करने वाला और सुव्यवस्थित होता है। यहाँ व्यक्तिगत प्रभुता का स्थान नहीं होता बल्कि सामाजिक संप्रभुता और लोक प्रभुता पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। वैसे भी व्यक्तिगत नारा लगाने से किसी व्यक्ति विशेष की प्रभुता का महिमामंडन होता है जबकि अगर किसी समूह का नारा लगाया जाए तो उसका असर सामाजिक परिपेक्ष्य में भी व्यापक होता है। अहंकार की भावना का परित्याग होता है। यही कारण है कि हमारी संस्कृति में रामराज्य की परिकल्पना की गई है।

रामराज्य कहने में सामूहिक अथवा सामाजिक जीवन की शुद्धता का भाव परिलक्षित होता है, इसलिए आज भी रामराज्य जैसा शब्द हमारे समाज में आज भी उतना ही लोकप्रिय है जितना युगों पहले था।

सृष्टि राज्य के पश्चात दशरथ-नंदन राम के राज्य की रूपरेखा खींची है जिसमें हमें राम के यज्ञ, दान, वेद-पथ धर्म-निर्णय त्रिगुणातीत लक्षणों का बोध कराया गया है। उनकी पत्नी, माता, भाई, सेवक आदि का एक सम्मिलित आदर्श कुटुंब का परिचय दिया है एवं प्रजा में स्नान आदि नित्य क्रियाओं, सत्य-संगति, भजन-पूजन, कथा-पुराण आदि की रुचि विषयक चर्चा की गई है और फिर यह कहकर अवध वासियों को सुख संपदा का उल्लेख किया है।

तुलसीदास जी ने भी रामराज्य का वर्णन मानस के उत्तरकांड के पूर्वार्ध में किया है। साधारणतया पाठक यही समझते हैं कि तुलसी ने केवल दशरथ पुत्र राम की राज व्यवस्था का वर्णन किया है। परंतु यह सत्य नहीं है। अगर आप ध्यानपूर्वक और सुयोग्य विधि से इसे पढ़ने की कोशिश करेंगे तो विदित होगा कि उक्त वर्णन में तुलसीदास जी ने त्रिविध रामराज्य का उल्लेख किया है।

प्रथम सर्वव्यापी रामराज्य द्वितीय अवध नरेश पुरुषोत्तम राम का राज्य और तृतीय मानस का रामराज्य। आइए रामराज्य के इन तीनों बिंदुओं पर संक्षिप्त चर्चा कर लें।

सर्वव्यापी राम का राज्य से तात्पर्य है कि जो समस्त सृष्टि को व्यवस्थित रखता है। नीतियों का नियंता है और जो सृष्टि का अभियंता है। दूसरा अवध नरेश पुरषोत्तम राजा का राज्य है जिससे अपने आदर्श चरित्र या व्यवस्था द्वारा अवध राज्य में सुख-समृद्धि का प्रचार प्रसार किया जाता है। जन-मन के लिए न्याय की व्यवस्था की जाती है और यह तय किया जाता है कि सभी प्रजा को समान अधिकार मिले, संतुष्टि मिले और समान अवसर मिले। तीसरा मानस का रामराज्य है जो मानव के मन, कर्म, वचन पर आरूढ़ होकर सर्व समाज को त्रिविध दुखों ईर्ष्या, द्वेष, दुर्गुणों से बचाकर सुखी और समृद्धशाली बनाता है। अर्थात समाज के चरित्र निर्माण पर विशेष जोर दिया जाता है और सामाजिक परंपराएँ लोक आस्थाओं को जीवित रखने के लिए सभी उद्यम किए जाते हैं।

तुलसीदास जी की मूल भावना हर मनुष्य के मन पर ईश्वरीय राज्य की स्थापना का रहा होगा क्योंकि जब तक समाज सुखी नहीं रहेगा, समृद्ध नहीं रहेगा, सत्य पर नहीं चलेगा तब तक मानवता की बात निराधार है।

त्रिलोक के स्वामी प्रभु श्रीराम के बारे में तुलसी ने कहा है कि 'रामराज बैठे त्रैलोका'। बहुधा आकाश, पृथ्वी और पाताल इन तीनों को ही त्रिलोक कहते हैं परंतु लोक का अर्थ यथार्थ में होता है कोई भाग विशेष जिसे अंग्रेजी में स्फीयर या डोमेन कहते हैं। मनुष्य मन, वाणी और कर्म का संग्रहरूप होता है इसलिए यह तीनों भाग विशेष मानव पृथ्वी के त्रिलोक हैं। इन तीनों में भी मन-लोक सबसे महत्वपूर्ण है। इसी मन-लोक पर शासन व्यवस्था का नाम रामराज्य है। चूंकि, रामराज्य की परिकल्पना में मन पर राम का राज्य है और राज्य पर राम का अधिपत्य इसलिए रामाधिपत्य के कारण मनुष्य मन को वश में कर लेता है। यही रामराज्य का चरमोत्कर्ष है। यही रामराज्य की सिद्धि है। अधिपति और अधिपत्य का यही संतुलन रामराज्य का मूलाधार है।

डॉ. आशीष कंधवे

मोबाइल : +91-9811184393

ई-मेल : editor.gagananchal@gmail.com

सुसंस्कृत, सम्पन्न एवं आत्मनिर्भर भारत

— प्रो. लल्लन प्रसाद

राम राज्य की परिकल्पना भारत में ही हुई जिसमें लोग, वाल्मीकि के शब्दों में प्रसन्न और धर्म परायण थे, किसी की हिंसा नहीं करते थे, लोभ रहित थे, अपने कर्मों में संतुष्ट होकर लगे रहते थे, झूठ नहीं बोलते थे। विस्तृत तनों वाले वृक्ष नित्य फल फूल देते थे, बादल समय पर बरसते थे। राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में दर्शाया गया है। माता पिता के प्रति बच्चों का कर्तव्य, भाइयों में सद्भाव, पति पत्नी के संबंध, परिवार और समाज के प्रति जिम्मेदारी, प्रजा हित में शासन आदि की विषद व्याख्या रामायण में है। रामायण काल में समृद्धि का आकलन अयोध्या के विवरण से आसानी से किया जा सकता है। अयोध्या में बहुत से कपाट एवं तोरण थे। उसके बीच बीच में भली भाँति विभक्त बाजार थे। वहाँ सब प्रकार के यंत्र और आयुध थे। वहाँ सभी प्रकार के शिल्पी निवास करते थे। उस दीप्तिशालिनी एवं शोभा संपन्न नगरी में सूत मागधों की भीड़ लगी रहती थी।

वेदों की संरचना से लेकर शक्तिशाली हिंदू सम्राटों के शासन काल तक भारतीय संस्कृति और अर्थव्यवस्था चरमोत्कर्ष पर थी। भारत हर दृष्टि से विश्व के सभी राष्ट्रों से आगे था, आत्म निर्भर था, सोने की चिड़िया कहलाता था। भारत में अंग्रेज वायसराय लार्ड कर्जन (1899-1905) ने कहा था कि जब अंग्रेज चेहरों पर रंग पोतकर जंगलों में घूम रहे थे और कनाडा आदि मात्र बीहड़ और जंगल थे तब भारत में शक्तिशाली साम्राज्य थे जो फल फूल रहे थे, मानवता के इतिहास दर्शन और धर्म पर भारत ने विश्व के किसी भूखंड से कहीं अधिक प्रभाव डाला है। भारतीय मनीषियों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक था, चिंतन, मनन और तप के बल उन्होंने जो आविष्कार किए और ज्ञान की धारा बहाई वह शाश्वत है, आज के युग में भी प्रेरणा स्रोत है। वेदों में सृष्टि की रचना, ग्रहों की चाल, गुरुत्वाकर्षण शक्ति, परमाणु आदि की जो विवेचना की गई है और जिसका श्रेय पाश्चात्य वैज्ञानिकों को देने का प्रयास हुआ, अब विज्ञान जगत में सर्वमान्य होता जा रहा है। फ्रांसीसी दार्शनिक एम वोल्तेयर ने वेदों को सबसे मूल्यवान उपहार कहा है जिसके लिए पश्चिम पूर्व के प्रति सदा ऋणी रहेगा। आस्ट्रेलियन भौतिकी और खगोल विज्ञान के लेखक एन्ड्र्यू टोमस का मानना है कि भारतीय शास्त्रों, वैशेषिक तथा न्याय में पदार्थ के परमाणु की संरचना का वर्णन है। योगवशिष्ट में लिखा है कि प्रत्येक परमाणु के विवर में विराट विश्व है, सूर्य की किरणों में दिखने वाले असंख्य रज रश्मियों की तरह और जिन्हें आज हम सत्य मानते हैं।

आर्यभट्ट, पाणिनी, पातंजलि, भास्कर, चरक, सुश्रुत जैसे भारतीय मनीषियों और चिंतकों का विश्व सदा ऋणी रहेगा। शून्य का आविष्कार भारत में हुआ, गणित, ज्योमेट्री, ज्योतिष शास्त्र, भाषा विज्ञान और व्याकरण, योग और आयुर्वेद विश्व को भारत की देन है। यदि शून्य का कापीराइट भारत को मिल जाए तो वह दुनिया के सबसे धनी देशों में आ जाए। सारी गणना, डाटा बेस शून्य पर आधारित है। महान वैज्ञानिक और दार्शनिक अल्बर्ट आइंस्टाइन ने कहा था कि हम भारत के अत्यंत ऋणी हैं जिन्होंने हमें गिनना सिखाया, जिसके बिना कोई भी सार्थक वैज्ञानिक खोज नहीं की जा सकती। यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ नम्बर्स के फ्रेंच

लेखक के अनुसार संख्या की अभिधारणाओं के सामान्यीकरण की विधियों को प्रदान कर भारतीय विद्वानों ने गणित एवं परिशुद्धता विज्ञानों के त्वरित विकास का मार्ग प्रशस्त किया। जिस वातावरण में ये खोजें की गईं वह एक साथ रहस्यवादी, दार्शनिक, धार्मिक, ब्रह्मांडीय, पौराणिक तथा पराभौतिक था। सर विलियम हंटर ने पाणिनी के बारे में कहा था कि वे महान व्याकरण रूपी शानदार भवन के निर्माता हैं जिसमें जो भी जाता है आश्चर्य चकित हो जाता है। यह व्याकरण भाषा में कही जाने वाली सभी बातों को अभिव्यक्त करने में सक्षम है। प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक मैक्समूलर ने तो यहाँ तक कह दिया कि यदि मुझसे पूछा जाए कि किस आकाश तले मानव मन मस्तिष्क ने उत्तम प्रतिभा का पूर्ण तथा महानतम विकास किया, सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषयों पर गहनतम विचार किया और कुछ के हल भी निकाल लिए हैं, जो उनके लिए भी मनन योग्य हैं जिन्होंने प्लेटो एवं कैंट का अध्ययन किया है तो मैं कहूँगा भारत के आकाश तले।

धर्म, कला और विज्ञान का जैसा समन्वय प्राचीन भारत में था विश्व में कहीं नहीं था, न हुआ। जीवन दर्शन की सर्वश्रेष्ठ व्याख्या भगवत गीता में है। प्रसिद्ध उपन्यासकार, आलोचक और दार्शनिक एल्डर हक्सले का मानना था कि मानव के आध्यात्मिक विकास को संपन्न करने के लिए सर्वाधिक व्यवस्थित भगवत गीता ही सर्वोत्तम ज्ञान प्रदान करती है। बंगाल के गवर्नर लार्ड वार्न हेस्टिंग (1773-1786) ने कहा था कि यह घोषणा करने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं है कि मानव के सभी धर्मों में गीता अत्यंत मौलिक कृति है। इसकी अवधारणा ही उदात्त है, इसकी तर्कपद्धति, इसकी शैली अद्वितीय है। मार्क ट्रेन का मानना था भारत धर्मों की भूमि है, सभ्यताएँ इसकी गोद में पली हैं, यह वाणी की माता है, पुराणों की दादी है, परंपराओं की परदादी है। प्राचीन भारतीय साहित्य उच्च कोटि की रचनाओं के लिए विश्व विख्यात है। रामायण और महाभारत जैसे लोकप्रिय महाकाव्य सदियों से करोड़ों लोगों के प्रेरणा स्रोत हैं, ढूँढने से भी किसी अन्य भाषा में नहीं मिलेंगे। दोनों महाकाव्य ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित हैं, मात्र कल्पना पर नहीं। राम सेतु के अस्तित्व को नासा ने मान्यता दी है। वाल्मीकि रामायण में सेतु बंध का सुंदर चित्रण मिलता है। वानर फलों से लदे हुए वृक्षों से सेतु बना रहे थे। हाथियों के समान विशालकाय वानर पर्वतों के समान बड़े-बड़े पत्थरों और पर्वत शिखरों को उठाकर छोड़ते हुए दिखाई दे रहे थे। वह महासेतु अच्छी तरह बनाया हुआ सुंदर, समतल, सुगठित एवं शोभायमान था। वह सागर में नारी की माँग के समान प्रतीत हो रहा था। महाभारत काल की द्वारिका नगरी के अवशेष सागर तल में सुरक्षित हैं, उस समय के विकसित वास्तु कला के परिचायक हैं। दोनों महाकाव्यों में जिन स्थानों का विवरण मिलता है वे सब अस्तित्व में हैं, अपनी गोद में उस काल की निशानी संजोए हैं। कालिदास की शकुंतला के बारे में जर्मन दार्शनिक और साहित्यकार जोहान गाडफ्रीड ने कहा कि मुझे मानव मस्तिष्क द्वारा रचित शकुंतला जैसी सुंदर रचना आसानी से कहीं और देखने को नहीं मिली जो पूर्व के खिलते हुए सूर्य के सदृश्य सुंदर है। इसके बराबर की कृति कोई दो हजार वर्ष में एक बार रची जाती है।

अजंता, एलोरा, एलिफेंटा, भीमवेतका, बाघ आदि प्राचीन गुफाओं के भित्ति चित्र हजारों वर्ष पुराने हैं, फूल पत्तियों और

प्राकृतिक रंगों से बनाए गए हैं, देवी-देवताओं, मानव, पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों की सुंदर आकृतियों से अंकित हैं। कोणार्क, महाबलिपुरम, खजुराहो के मंदिरों की वास्तुकला, हंपी (कर्नाटक) के मंदिर के खम्भों से निकलता संगीत सभी अद्‌भुत हैं, अतुलनीय हैं। तमिलनाडु में चोला राजाओं के मंदिर, तेलंगाना का गोलकुंडा किला, गुजरात में रानी की वाव, 27 मीटर जमीन की सतह से नीचे तक बना सरस्वती ताल और शेष शैय्या पर भगवान विष्णु और अन्य देवी देवताओं की पत्थर की सुन्दर मूर्तियाँ, काशी के प्राचीन शिव मंदिर और देश के विभिन्न हिस्सों में हजारों वर्ष पुराने मंदिर मात्र देवालय नहीं हैं, पत्थरों में अंकित महान भारत का इतिहास है। आदि शंकराचार्य द्वारा हिमालय की गोद में स्थापित मंदिरों में तो भारत की आत्मा बसती है, पूरे देश को

एक सूत्र में बाँध कर रखती है जहाँ हर हिंदू जाना चाहता है, माथा टेकना चाहता है।

राम राज्य की परिकल्पना भारत में ही हुई जिसमें लोग, वाल्मीकि के शब्दों में प्रसन्न और धर्म परायण थे, किसी की हिंसा नहीं करते थे, लोभ रहित थे, अपने कर्मों में संतुष्ट होकर लगे रहते थे, झूठ नहीं बोलते थे। विस्तृत तनों वाले वृक्ष नित्य फल फूल देते थे, बादल समय पर बरसते थे। राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में दर्शाया गया है। माता पिता के प्रति बच्चों का कर्तव्य, भाइयों में सद्‌भाव, पति पत्नी के संबंध, परिवार और समाज के प्रति जिम्मेदारी, प्रजा हित मे शासन आदि की विषद व्याख्या रामायण में है। रामायण काल में समृद्धि का आकलन अयोध्या के विवरण से आसानी से किया जा सकता है। अयोध्या में बहुत से कपाट एवं तोरण थे। उसके बीच बीच में भली भाँति विभक्त बाजार थे। वहाँ सब प्रकार के यंत्र और आयुध थे। वहाँ सभी प्रकार के शिल्पी निवास करते थे। उस दीप्तिशालिनी एवं शोभा संपन्न नगरी में सूत मागधों की भीड़ लगी रहती थी। अनेक प्रकार के रत्नों से भरी हुई उस नगरी के ऊँचे-ऊँचे भवन विमान के समान शोभा दे रहे थे। महाभारत में इन्द्रप्रस्थ का जो विवरण मिलता है वह भी ऐसे ही मनोहारी है। कृष्ण की इच्छानुसार विश्वकर्मा ने राजधानी का निर्माण किया जिसमें विशाल महल, चौड़ी सड़कें, विशाल किला, बाग बगीचे, झरने सब कुछ थे। इंद्र की राजधानी की तुलना में वह नगर बनाया गया था, इसलिए उसे इंद्रप्रस्थ नाम दिया गया।

वैदिक काल से ही भारत उन्नत कृषि, उद्योग एवं व्यापार के लिए प्रसिद्ध था। कृषि के लिए ऋग्वेद में लिखा है कि ऋत्विजों हल आदि कृषि उपकरणों को व्यवस्थित करके बैलों के कंधों पर जुओं को रखो तथा खेत की जुताई करो। तैयार किए गए खेत में बीजों का वपन करो और कृषि विज्ञान के अंतर्गत फसलों की अनेक प्रजातियाँ श्रेष्ठ विधि से तैयार करो जिससे शीघ्र काटने योग्य पका हुआ अन्न उपलब्ध हो सके। गौवों की सुरक्षा और गोपालन महत्वपूर्ण था। इंद्र की एक प्रार्थना में कहा गया है कि दूध से पोषण करने वाली गौवों को श्रेष्ठ संतान युक्त बनाकर हमारे गोष्ट में भिजवाएँ। गौवों के संतान और दुग्ध पाकर हम वैभवशाली बन सकें। अर्थव्यवस्था के बारे में भूमि सूक्त में कहा गया है कि हमारी जिस भूमि में उद्यमी और शिल्प कला में निपुण, कृषि कार्य करने वाले हैं, जिस देश में चार दिशाएं और चार विदिशाएं धान, गेहूँ आदि पैदा करती हैं, जो विभिन्न प्रकार के प्राणियों और वृक्ष वनस्पतियों का पालन पोषण और संरक्षण करती है, वह मातृभूमि हमें गौ आदि पशु और अन्नादि प्रदान करने वाली हो।

सिंधु घाटी की सभ्यता (3300-1750 ईसा पूर्व) प्राचीन भारतीय जीवन शैली और अर्थव्यवस्था को अमरत्व प्रदान करती है। नेचर पत्रिका ने इसे 8000 वर्ष पुराना कहा है। सिंधु एवं सरस्वती नदियों के तट पर बसी सभ्यता, जिसके केंद्र में हड़प्पा,

मोहन जोदड़ो, कालीवंगा, लोथल, धोलावीरा और राखी गढ़ी स्थित थे पकी ईंटों से बने विशाल दुर्ग, आयताकार शहरों, चौड़ी सड़कों, ऊँचे भवनों, देवालयों, जलाशयों, सार्वजनिक स्नानागार, पानी की निकासी के लिए मोरियों, अनाज रखने के कोठारों, पक्के चबूतरों, घरों में कुओं, चित्रों से सज्जित टेराकोटा के वर्तनों, सील और मुद्राओं, माप तौल के बाटों, रथ के पहियों, काँसे की मूर्तियों, वस्त्र उद्योग आदि के लिए प्रसिद्ध थी। सिंधु, सरस्वती और सहयोगी नदियों के दोआबे में लोग जौ, राई, मटर, ज्वार, सरसों औंस तिल की खेती करते थे। वर्षा भी अच्छी होती थी जिससे पैदावार अच्छी होती थी। कपास की खेती की शुरुआत यहीं से हुई मानी जाती है। खेती के अलावा पशुपालन, घरेलू उद्योग और व्यापार जीविका के अन्य साधन थे। दूर देशों से व्यापार संबंध के प्रमाण भी मिले हैं। 1400 से अधिक केन्द्रों के पाए गए अवशेषों में 925 भारत में हैं, शेष अफगानिस्तान और पाकिस्तान में।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र अर्थ और राजनीति शास्त्र की महान कृति है। इसके रचयिता चाणक्य नाम से विख्यात हैं जिन्होंने गड़ेरिए के पुत्र चन्द्रगुप्त की शिक्षा दीक्षा की और भारत का सम्राट बनाया। चाणक्य कालीन भारत विश्व का सबसे बड़ा समृद्ध और शक्तिशाली साम्राज्य था। चन्द्रगुप्त द्वितीय जिन्हें विक्रमादित्य के नाम से जाना जाता है ने ईसा पूर्व 57वें वर्ष में विक्रम संवत प्रारम्भ किया। भारत तब विश्व बाजार का केन्द्र था। भारतीय व्यापारी समुद्र और स्थल मार्गों से भारत में निर्मित सोने, चांदी, हीरे, माणिक्य और मोतियों के जवाहरात, सूती, रेशमी, कीमती कढ़ाई के वस्त्र, रंग बिरंगे ऊनी कालीन, तांबे, पीतल लोहे और पंच धातुओं से बने सामान, साज सज्जा की सुन्दर भेंट सामग्री, गर्म मसाले आदि का निर्यात करते थे। चन्द्र गुप्त के शासन काल के बारे में मेगस्थनीज ने लिखा है कि सारी कृषि भूमि नाप ली गई थी, सिंचाईयों का उत्तम प्रबन्ध किया गया था। व्यापार पर कर लगाया गया था, तथा सौदागरों और व्यापारियों से आय कर लिया जाता था। स्ट्रॉबेरी ने राजमार्गों और मील के पत्थरों का उल्लेख किया है। सब परिवारों में सोना, रत्न, रेशम और गहनों का प्रयोग होता था।

महामना मदन मोहन मालवीय ने भारतीय औद्योगिक कमीशन की रिपोर्ट पर अपने प्रतिवेदन में प्रो. बेवर को उद्धृत करते हुए लिखा था कि महीन वस्त्रों की बुनाई, रंगों को मिलाने, धातु और कीमती पत्थर के काम, इत्रों को तैयार करने और प्रत्येक प्रकार की शिल्प कला में भारतवासी अपनी कुशलता के लिए अति प्राचीन काल से प्रसिद्ध हैं। इस बात का प्रमाण भी मिला है कि ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व बैविलोन का भारत के साथ व्यापार संबंध था। ईसा के दो हजार वर्ष पहले मिश्र की समाधियों (पिरामिडों) में रक्षित शव (ममी) भारत के बने हुए अत्युत्तम जाति के मखमल से ढँके हुए हैं। इतिहास वेत्ता ज्येष्ठ प्लिनी के अनुसार ढाके के मलमल यूनान में गंगीतक के नाम से प्रसिद्ध थे। लोहे के व्यवसाय के संबंध में प्रो विल्सन का कहना है कि हिंदू लोहे की ढलाई के काम में बड़े कुशल थे, लोहा पीटने और इस्पात बनाने की उनकी यह कला बहुत प्राचीन है। दिल्ली के पास जो लोहे का स्तम्भ है वह इस बात का सबूत है कि भारतीय लौह शिल्प में कितने निपुण थे। भारतीय इस्पात से ही दमिश्क की प्रसिद्ध तलवारें बनाई जाती थी। सिकन्दर की विश्व विजय की कामना भारत में आकर चूर हो गईं, सम्राट अशोक चन्द्र गुप्त के ही वंशज थे जिनकी गणना विश्व के महानतम सम्राटों मे होती है। उनके शासन काल में भगवान बुद्ध का संदेश विश्व के कोने कोने तक पहुँचा। सुप्रसिद्ध लेखक एच जी वेल्स ने कहा है कि अनेक शताब्दियों तक भारत का इतिहास किसी भी अन्य इतिहास की तुलना में अधिक सुखी, अहिंसक और स्वप्न की भाँति था। एक दार्शनिकों का देश जैसा भारत था, भारत के अतिरिक्त कहीं हुआ ही नहीं।

❖

वरिष्ठ साहित्यकार
सी-140, सेक्टर-19, नोएडा-201301
मोबाइल : 9810990008

भारतीय साहित्य में नीति और वृंद-सतसई

— डॉ. प्रेमसिंह

वृन्द की 'नीति सतसई' में मनुष्य जीवन के अनेक पहलुओं एवं नैतिक बातों की ही विशेष चर्चा है अतः इसे विशुद्ध नीतिकाव्य कहा जा सकता है। सतसई में धर्म, अध्यात्म, उपदेश आदि की अपेक्षा व्यावहारिक बातों पर अधिक दृष्टि डाली गई है। वृन्द के सभी दोहे सुन्दर दृष्टान्तों एवं उदाहरणों से समन्वित हैं। सतसई में रामायण, महाभारत, पुराणादि की कथाओं से भी उदाहरण प्रस्तुत कर वृन्द ने अपनी विद्वत्ता का परिचय दिया है। विभिन्न नीतियों के समर्थन में वृन्द ने अर्जुन और कृष्ण, मैनाक और उदधि, युधिष्ठिर और नल, भीम और कीचक, अर्जुन और विराट, कृष्ण और सुदामा, राम और विभीषण आदि अनेक प्राचीन पौराणिक चरित्रों, घटनाओं एवं दृष्टान्तों का यथास्थान उल्लेख कर अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है।

भारतीय साहित्य में नीतिकाव्य की समृद्ध परंपरा रही है। प्राचीन वैदिक युग से लेकर अद्यावधि इस काव्यधारा का साहित्य में विशेष स्थान रहा है। साहित्य के अनेकानेक काव्य-ग्रंथों में नीति शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में हुआ है। इन ग्रंथों में नीति सद्व्यवहार के लिए, कहीं मर्यादा के लिए तो कहीं राजनीति के लिए प्रयुक्त हुई है। 'नीति' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'णीञ् =नी' धातु व उसमें क्तिन् (ति) प्रत्यय के संयोग से हुई है, जिसका अर्थ है अभीष्ट को प्राप्त कराने वाली, बतलाने वाली या लक्ष्य तक पहुँचाने वाली पद्धति अथवा प्रकार।

शुक्राचार्य अपने ग्रंथ शुक्रनीति में नीति शास्त्र को इस तरह परिभाषित करते हैं-

सर्वोपजीवलोकंस्थितिकृन्नीतिशास्त्रकं।
धर्मार्थकाममूलंहिस्मृतंमोक्षप्रदंयतः।

अर्थात नीतिशास्त्र सबकी जीविका का साधन और लोक की स्थिति बनाए रखने वाला धर्म, अर्थ तथा काम का मूल होने से मोक्ष देने वाला है।[1]

प्रकारान्तर से ही मानव को सही मार्ग दिखलाने के लिए नीति-वचनों का प्रतिपादन होता आ रहा है। संस्कृत का विशाल वाङ्मय नीति-वचनों का वृहद् भण्डार है, जिसमें नीति के उपदेशों के अनेक संग्रह हैं। प्रत्येक मनुष्य इस संसार के प्रति निश्चित दायित्वों को लेकर उत्पन्न होता है, जिसे पूरा करना उसके लिए अनिवार्य होता है। व्यक्ति अपने जीवन में जब चौराहे पर खड़ा गंतव्य स्थल तक पहुँचने के लिए उचित मार्ग का निश्चय नहीं कर पाता है, तब ये नीति के उपदेश ही उसे सही मार्ग का निर्देश देते हैं और उस मार्ग का अनुसरण ही लक्ष्य प्राप्त करने में उसका अद्वितीय साधन बन जाता है।

हिंदी साहित्य के इतिहास को समझने-समझाने या व्याख्यायित करने के लिए उसे हमेशा किसी न किसी प्रवृत्ति से जोड़ा जाता रहा है। मध्यकालीन साहित्य में भक्ति और रीति की प्रवृत्ति के आधार पर दो खाते खोले जाते हैं जिनमें भक्ति साहित्य के अंतर्गत सगुण-निर्गुण, प्रेम, ज्ञान, सूफी, संत, राम-कृष्ण आधारित साहित्य को समझाया जाता है तो इसी प्रकार रीति में हम दरबारी संस्कृति-साहित्य, काव्यशास्त्रीय ग्रंथ को समझते हैं। अक्सर इन दो बड़ी श्रेणियों में तत्कालीन पूरा साहित्य नहीं आ पाता है अतः इतिहासकार एक फुटकल खाता भी खोलते हैं और नीति को हम वहीं पाते हैं। तत्कालीन काव्य को परखने के कुछ पैमाने थे जिसमें प्रबंधात्मक काव्य मुख्य था और नीति काव्य में प्रबंध काव्य की तरह कथा का कोई क्रम नहीं होता है, कवि दोहा, सोरठा, कुंडलियाँ जैसे छंदों में अलग-अलग विषय पर सूक्तियाँ कहते थे। यद्यपि प्रबंध काव्य में कवि नीति की बातें बहुतायत से करता है

लेकिन अपने किसी न किसी पात्र के सहारे जिससे प्रबंधात्मक कथा में कोई अंतर नहीं पड़ता था। कहने का अर्थ यह है कि ऐसे ही कुछ कारण हैं जो नीति को फुटकल खाते में डालते हैं।

भारतीय वाङ्मय में नीतिपरक काव्य की परंपरा बहुत समृद्ध रही है। प्राचीनकाल से लेकर अध्यावधि ही बहुत सारे ग्रंथों में नीति-सद्व्यवहार, मर्यादा, राजनीति, लोकनीति, धर्मनीति आदि के लिए प्रयुक्त हुई है।

वैदिक साहित्य में प्रचुर नीति साहित्य मिलता है। वेद, संहिता, आरण्यक, उपनिषद् आदि ग्रंथों में सुन्दर नीति बातों का समावेश है। 'नीति मंजरी' में ऋग्वेद की नीति कथाओं को प्रस्तुत किया गया है। संस्कृत साहित्य में एक ओर रामायण, महाभारत, पुराण आदि नीतिपरक बातों से परिपूर्ण हैं तो दूसरी ओर चाणक्य सूत्र, चाणक्य नीति, हितोपदेश, भर्तृहरि का नीतिशतक, विदुर नीति, पंचतंत्र आदि नीति ग्रंथ भी लिखे गए। पाली में धम्मपद से होते हुए प्राकृत-अपभ्रंश के हेमचंद्र, धनपाल के काव्यों से हिंदी में नीतिकाव्य का विकास हुआ जो गोरखनाथ की बानियों में प्रसंगानुसार हम देख सकते हैं।

हबकि न बोलिबा ठबकि न चालिबा धीरे धरिबा पांव।
गरब न करिबा, सहजैं रहिबा भणत गोरष रांव॥[2]

आदिकाल वीर रस प्रधान होने के कारण वहाँ युद्ध नीति की बातें ज्यादा है तथापि अमीर खुसरो के यहाँ नीतिगत बातें अनायास ही आ गई हैं। भक्ति काल में भक्ति की प्रधानता होने में बावजूद नीतिपरक काव्य भी प्रचुरता से उपलब्ध है जिसमें पद्मनाथ, ठकसी, तुलसीदास, देवीदास, उदैराज, जानकवि, बनारसीदास, सुन्दरदास, वाजिन्द, बांन, रहीम, नरहरि, टोडरमल, बीरबल, गंग आदि महत्त्वपूर्ण कवि हुए। रीतिकाल में नीति काव्य की उपस्थिति प्रभावशाली ढंग से देखी जा सकती है जिसमें सुखदेव कृत 'वाणिज्य नीति', हेमराज का 'उपदेश शतक', वृन्द रचित 'वृन्द-सतसई', गिरधर कविराय की 'कुंडलियाँ', दीनदयाल गिरि कृत 'दृष्टान्त तरंगिणी' और 'अन्योक्ति कल्पद्रुम', आदि रचनाओं को बड़े आदर के साथ स्थान दिया जाता है। रीतिकाल के कवियों में महाकवि वृन्द का नाम नीतिकाव्य की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

कवि वृन्द का जन्म संवत् 1700 में पश्चिमोत्तर भारत के मेड़ता (जोधपुर रियासत) में हुआ। वृन्द सेवग जाति के ब्राह्मण थे। उन्हें वृन्द के अलावा वृन्दावनदास के नाम से भी जाना जाता है। कवि वृन्द ने काशी में रहकर संस्कृत साहित्य, वेदान्त, काव्य-रचना, व्याकरण, छन्दशास्त्र आदि का विद्याध्ययन किया था। कवि वृन्द बादशाह औरंगजेब के शाही राजदरबार में रहे तथा जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह का भी राज्याश्रय कवि को मिला जो स्वयं एक अच्छे कवि थे। इनके अलावा मिर्जा कादरी, अजीमुश्शान, गुरु गोविन्दसिंह के राज्याश्रय में भी रहे। कालान्तर में वे किशनगढ़ में बस गए वहाँ के राजा राजसिंह की राजसभा में वे कविरत्न थे। इन आश्रयदाताओं के साथ रहते हुए कवि ने काशी, दिल्ली, जोधपुर, औरंगाबाद, अजमेर, ढाका, पंजाब और दक्षिण की यात्राएँ की। कवि वृन्द के पिता रूपजी भी एक अच्छे कवि थे।

वृन्द का कृतित्व प्रचुरता के साथ विविधता लिए हुए है- नीतिपरक रचनाओं में-वृन्द सतसई अथवा नीति सतसई अथवा वृन्द विनोद सतसई, भाषा हितोपदेश, श्रृंगार काव्य में-भाव पंचाशिका, नैंन बत्तीसी, अक्षरादि दोहा अथा अंत्याक्षरी, श्रृंगार शिक्षा पवन पच्चीसी, यमक सतसई, वीर काव्य के अन्तर्गत वचनिका अथा रूपसिंह की वार्ता, सत्य स्वरूप रूपक, भक्ति परक काव्य में-सम्मेत शिखर छंद, बारहमासा तथा तत्त्वचिंतन एवं ज्ञानपरक काव्यों के अन्तर्गत-हितोपदेशाष्टक एवं पुष्कराष्टक प्रमुख है।[3]

संख्यापरक ग्रंथ लेखन की परम्परा प्राचीन है। सतसई शब्द संस्कृत के सप्तशती का ही रूपान्तर है जिसका अर्थ है- सात सौ दोहों का संग्रह। कवि वृन्द की नीति सतसई इसी परम्परा का महत्त्वपूर्ण गंथ है। 'वृन्द सतसई में कोरे उपदेशों को स्थान नहीं दिया गया है बल्कि उसमें सूक्तियों में सर्वत्र विदग्धता है। अपने सरस एवं सरल भावों तथा अनोखे दृष्टान्तों के कारण ही इस रचना को जो ख्याति मिली है उतनी ख्याति गोस्वामी तुलसीदास की सतसई को भी प्राप्त नहीं हो सकी।'[4]

वृन्द ने नीति सतसई की रचना ढाका नगर में संवत् 1761 '1704 ई.' में अपने आश्रयदाता अजीमुश्शान के मनोविनोद तथा शिक्षा के लिए की थी जिसका उल्लेख स्वयं कवि ने इन शब्दों में किया है-

संवत ससि रस बार ससि कातिक सुदि ससिबार।
सातैं ढाका सहर मैं उपज्यौ इहै बिचार।।
अति उदार रिझबार जग साह अजीमुस्सान।
सतसैया सुनि वृन्द कौं कीनो अति सनमान।।[5]

डॉ. जनार्दन राव चेलेर द्वारा संपादित वृन्द गंथावली में कुल 714 दोहे संकलित हैं। लोक एवं राजदरबारी जीवन के अपने अनुभवों को नीति एवं सदाचार के रूप में सतसई में कवि वृन्द

ने मुख्य विषय बनाया। 'दृष्टान्त सूक्तिकार का प्रधान गुण है। ये दृष्टांत आज भी गाँव वालों की जबान पर है। उनकी भाषा शुद्ध ब्रजी नहीं है। उस पर फारसी, राजस्थानी और खड़ी बोली का प्रभाव है। वाक्य विन्यास साधु हैं।'[6] वृन्द ने अपनी नीति की बातें दोहा छन्द में कही हैं। दोहा-सोरठा आदि छोटे छन्द मौखिक परम्परा के लिए बड़े ताकतवर रहे हैं। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक काव्य फैलाने में इन छोटे-छोटे छन्दों का बड़ा योगदान रहा है।

'सतसई' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें प्राय: उन्हीं विषयों का उल्लेख नहीं है जिन पर प्राय: नीतिकार लिखा करते हैं, बल्कि अनेक ऐसी बातों की भी चर्चा है जिनका वर्णन प्राय: उपेक्षित रहा है। उनकी सतसई में युगजीवन के साथ ही आम आदमी की दीनता, निर्धनता, उपेक्षा के साथ ही दु:ख एवं दर्द का जितना भावपूर्ण चित्रण हुआ है, उससे अन्य नीतिकार अछूते ही रहे हैं।

कवि वृन्द ने व्यक्ति जीवन से जुड़े-परिवार, राजनीति, अर्थव्यवस्था, धर्म आदि विभिन्न पक्षों पर बहुत ही सुन्दर सूक्तियाँ कही है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम अलग-अलग विषयों पर उनकी नीतिपरक सूक्तियों को बाँट सकते हैं। वैयक्तिक नीति के अन्तर्गत-सत्य बोलना, मीठा बोलना, प्रतिज्ञा का पालन करना, उद्यमशील होना, विद्या बुद्धि-विवेकशील होना जैसे नैतिक गुणों का समावेश किया है जैसे-

जाकौ बुधि बल होत है, ताहि न रिपु कौं त्रास।
धन बूंदें कह करि सकै, सिर पर छलना जास।।[7]

मीठी वाणी के महत्त्व को बताते हुए वृन्द कहते हैं कि आग बुझाने के लिये ईंधन काम नहीं आता वैसे ही क्रोध को शान्त करने के लिए क्रोध बढ़ाने वाली बात कैसे की जा सकती है! वहाँ तो मीठी वाणी ही काम आती है-

रोस मिटै कैसे कहत, रिस उपजावत बात।
ईंधन डाला आग मैं, कैसे आग बुझात।।[8]

वृन्द ने नम्रता, दया, क्षमा के साथ ही साहस एवं धैर्य जैसे सात्विक गुणों की महत्ता पर अधिक प्रकाश डाला है लेकिन उन पर राजकीय वातावरण का प्रभाव अधिक दिखाई पड़ता है। अत: उन्होंने वीरता, बड़प्पन, दान, कुलशीलता जैसे मध्यकालीन सामंती परिवेश की महत्ता को दर्शाने वाले मूल्यों को विशेष रूप से प्रस्तुत किया है। वृन्द का लोक जीवन से गहरा जुड़ाव था। धन-वैभव ही व्यक्ति को लोक में प्रतिष्ठा दिलाता है। अत: उन्होंने धन से प्राप्त गुण, गुण से मान, पिशुन और गुण, तेजस्विता, आत्मविश्वास आदि विषयों का उल्लेख भी सतसई में विशेष रूप से किया है।

पारिवारिक नीति में सपूत-कपूत, माता-पिता की सेवा करना आदि विषयों पर नीतिपरक बातें कवि ने लिखी हैं। सामाजिक नीति के अन्तर्गत-सज्जन-दुर्जन, सत्संगति-कुसंग, मूढ़-विद्वान भेद, स्वामी-सेवक कर्तव्य, वीरों की प्रशंसा, भाग्य-अभाग्य, सुख-दु:ख, ज्ञान-अज्ञान, शत्रुता-मित्रता, लोभ-लालच आदि विषयों को शामिल किया है तथा इन विषयों पर बहुत रोचक सूक्तियाँ मिलती हैं-

श्रवण द्वारा की गई माता पिता की सेवा के प्रसिद्ध उदाहरण से समाज में सेवा जैसे महत्वपूर्ण मूल्य का समर्थन करते हुए कवि का कहना है कि-

स्रबन करी त्यौं कीजिये, मात-पिता की सेव।
काँधे काँबर लै फिर्यो पूज्यौ जैसे देव।।[9]

गूढ़ रहस्य वाली बातें दुष्ट प्रवृत्ति वाले लोगों को नहीं कहनी चाहिए क्योंकि वे उन बातों का रहस्य सर्वत्र उद्घाटित कर देते हैं। इस तथ्य के समर्थन में जल पर तेल की बूँदों के तीव्रता से फैलने का उदाहरण बड़ा ही रोचक बन पड़ा है-

खल जन सौं कहियै नहीं, गूढ़ कबहु करि मेल।
यौं फैलै जग माँहि ज्यौं, जल पर बूँद कि तेल।।[10]

आर्थिक नीति के अन्तर्गत वृन्द ने धन की महत्ता, लक्ष्मी की चंचलता, दान, संतोष आदि सामान्य विषयों के अतिरिक्त धन का सदुपयोग, आय के अनुसार व्यय, बड़ों की समृद्धि से आश्रितों को हर्ष, धन से गुणों की श्रेष्ठता, जुए में सुख-संपदा एवं धन का नाश, धन-मूलक भय आदि विषयों का उल्लेख किया है। इन विषयों पर गंभीरता से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि वृन्द का धन-विषयक दृष्टिकोण स्वस्थ एवं अनुभव सिद्ध था। दीन-हीन व्यक्ति को ही दान देना चाहिये क्योंकि दान की उसे आवश्यकता होती है और उसके महत्व को भी वह समझता है। उसी प्रकार औषधि का सही महत्व रोगी ही जान सकता है-

दान दीन को दीजिये, मिटै दरिद की पीर।
औषध बाको दीजिये, जाके रोग सरीर।।[11]

जिस व्यक्ति का जहाँ स्वारथ पूरा होता है उसको वही अत्यधिक प्रिय लगता है जैसे-चोर को अपने स्वार्थ के कारण चाँदनी रात की अपेक्षा काली अँधेरी रात अधिक सुहाती है

क्योंकि उसके कार्य की सिद्धि अँधेरे में ही भलिभाँति होती है-

जाको जहँ स्वारथ सधै, सोई ताहि सुहात।
चोर न प्यारी चाँदनी, जैसी कारी रात।।[12]

वृन्द भारतीय संस्कृति एवं धार्मिक विचारों से ओतप्रोत कवि थे, इसलिए सतसई में ईश्वर, धर्म, देवता आदि विषयों का उल्लेख मिलता है। दूसरी और वे राजकवि थे इसलिए राजनीतिक विषयों का उल्लेख करने में भी उन्होंने कोई चूक नहीं की है। समय की सबलता, समय से पूर्व ही विपदा के प्रतीकार्थ तैयार रहना, समय के अनुसार रुचि में परिवर्तन, समय के हेर-फेर से ही दु:ख-सुख की प्राप्ति, बुरे समय में बुद्धि की विपरीतता आदि समयाधीन अनेक विषयों का वर्णन उन्होंने सुन्दर ढंग से किया है।

सबल-निर्बल पर विचार करते हुए वृन्द कहते हैं सबल व्यक्ति के सभी सहायक बनते हैं निर्बल के नहीं। हवा भी शक्तिशाली अग्नि को और भड़का देती है वहीं कमजोर दीपक की लौ को बुझा देती है। कवि द्वारा किया गया निम्न निर्बल-सबल विचार उनके अनुभव को ही दर्शाता है-

सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग कौं, दीपहि देत बुझाय।।[13]

अवसर बीतने के बाद किये जाने वाले उद्यम का कोई अर्थ नहीं होता जैसे वर्षा के पानी के बह जाने बाद सेतु निर्माण का कोई महत्व नहीं रह जाता है-

अवसर बीते जतन को, करिबो नहिं अभिराम।
जैसे पानी बह गये, सेतु बंध किहि काम।।[14]

स्पष्ट है कि वृन्द की 'नीति सतसई' में मनुष्य जीवन के अनेक पहलुओं एवं नैतिक बातों की ही विशेष चर्चा है अत: इसे विशुद्ध नीतिकाव्य कहा जा सकता है। सतसई में धर्म, अध्यात्म, उपदेश आदि की अपेक्षा व्यावहारिक बातों पर अधिक दृष्टि डाली गई है। वृन्द के सभी दोहे सुन्दर दृष्टान्तों एवं उदाहरणों से समन्वित है। सतसई में रामायण, महाभारत, पुराणादि की कथाओं से भी उदाहरण प्रस्तुत कर वृन्द ने अपनी विद्वत्ता का परिचय दिया है। विभिन्न नीतियों के समर्थन में वृन्द ने अर्जुन और कृष्ण, मैनाक और उदधि, युधिष्ठिर और नल, भीम और कीचक, अर्जुन और विराट, कृष्ण और सुदामा, राम और विभीषण आदि अनेक प्राचीन पौराणिक चरित्रों, घटनाओं एवं दृष्टान्तों का यथास्थान उल्लेख कर अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है।

वृन्द ने दोहों के रूप में जो सूक्तियाँ एवं सुभाषित कहे हैं उनमें उनका अनुभव तो है ही साथ ही वे नैतिकता की पाठशाला भी है। नीति का कोई क्षेत्र वृन्द की लेखनी से छूटा नहीं है। अत: वृन्द की 'नीति सतसई' अपने आप में एक विशिष्ट रचना है और नीतिपरकता के जो गुण एक सतसई में होने चाहिए, उससे कहीं अधिक नीतिगत बातों का समावेश वृन्द ने इसमें कर दिया है। रूढ़ियों एवं लोकोक्तियों का सुन्दर प्रयोग बड़ी सहजता से कवि ने किया है। इनके द्वारा कही गई सूक्तियाँ ही लोकोक्तियों के रूप में प्रचलित हो गईं एक नीतिकार के रूप में कवि वृन्द की सफलता इस बात से भी है कि उनके दोहे आज भी अशिक्षित ग्रामीणों को कंठस्थ हैं। यह वृन्द की सभी रचनाओं में विशिष्ट एवं श्रेष्ठ ढंग की रचना है।

संदर्भ :

1. शुक्रनीति (सटीक) वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस मुम्बई, अध्याय -1, श्लोक सं. 5
2. निर्गुण भक्ति सागर, Devotional Hindi Literature (Vol-1) & Winand M. CallewaertAnd Bart Op de Beeck, Manohar 1991- P&489
3. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास-डॉ. बच्चनसिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 7/31 अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ.सं. 266
4. दरबारी संस्कृति और हिंदी मुक्तक-डॉ. त्रिभुवनसिंह पृ.सं. 76
5. वृन्द ग्रंथावली- डॉ. जनार्दनराव चेलेर, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-1971 ई. पृ.सं. 114
6. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास -डॉ. बच्चनसिंह पृ.सं. 267
7. वृन्द ग्रंथावली-डॉ. जनार्दनराव चेलेर, पृ.सं. 100
8. वही, पृ.सं. 100
9. वही, पृ.सं. 111
10. वही, पृ.सं. 69
11. वही, पृ.सं. 96
12. वही, पृ.सं. 70
13. वही, पृ.सं. 62
14. वही, पृ.सं. 92

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
111 एफ/4, सेक्टर-3, जयनारायण विश्वविद्यालय आवासीय कॉलोनी
रेसीडेंसी रोड, जोधपुर (राजस्थान)-342011
मोबाइल : 9414883546 ई-मेल : dpsrajpurohit@gmail.com

सिमरन आंटी

— अंजना वर्मा

सिमरन आंटी का दिल करता था कि वे लड़कियाँ आएं और बैठकर इनसे कुछ बातें करें। उनसे थोड़ी बात कर लेने की इच्छा मन में लिए वे कभी लड़कियों को घर से बाहर निकलते देखतीं तो कभी घर में लौटते हुए। बातें करने का समय उनके पास कहाँ था? वे तो अपनी दुनिया में व्यस्त और मस्त थीं। सुबह से लेकर शाम तक काम-काम-काम। पर उन युवा लड़कियों को देखकर उन्हें अपनी जवानी के दिन जरूर याद आ जाते। कभी वे भी युवा थीं। काली सलवार, काली-उजली छींटदार कुर्ती और काला दुपट्टा लेकर जब वे सड़कों से गुजर जातीं तो देखने वालों की नजरें उन पर ठहर जातीं थीं। एक बार एक आदमी ने उनका पीछा किया था तो वे भाग कर किसी अनजाने व्यक्ति के बरामदे में जाकर छुप गई थीं। बड़ी देर तक वहाँ छुपी बैठी रहीं।

सिमरन आंटी-इसी नाम से वे जानी जाती थीं। उनके पति को गुजरे हुए कुछ वर्ष हो गए थे। दोनों बेटों के हजारों मील दूर चले जाने के बाद भी जब तक उनके पति जीवित थे, तब तक उनको कोई चिंता नहीं थी। शौक से रहती थीं। पति रमेश के साथ ही खाते, उठते-बैठते और बातें करते उनका समय बीत जाया करता था। दोनों साथ ही सुबह की सैर पर भी निकल जाते। उम्र साठ से ऊपर होने के बावजूद उनका रूप-रंग सलोना बना हुआ था और बढ़ती उम्र ने अभी तक उनके गुलाबी गालों पर लकीरें खींचने का साहस नहीं किया था।

जीवन की संध्या आते-आते उनके पति चलने-फिरने में असमर्थ होने लगे। बड़ी मुश्किल से उठकर बाथरूम जाते और खाने की मेज तक आ पाते थे। उस समय आंटी ने उन्हें सक्रिय बनाए रखने के लिए हजार उपाय किए। कहीं उनके हाथ-पैर जड़ न हो जाएं और वे बिस्तर पर न पड़ जाएं, इसलिए वे सहारा देकर बाथरूम तक ले जातीं। फिर नहाने में सहायता करतीं। उन्हें तैयार करवा कर और स्वयं तैयार होकर उन्हीं के साथ नाश्ता करतीं। सुबह से लेकर रात तक निरंतर साहचर्य बना रहता। जब तक रमेशजी की साँसें चलती रहीं, तब तक यह दिनचर्या चली और आंटी ने तन-मन से उनका साथ निभाया। पर उनके जाने के बाद यही गहरा साथ उनकी जिंदगी में गहरा एकांत भी छोड़ गया।

दुनिया की होड़ में सदैव आगे रहने वाले उनके दोनों बेटे विदेश में बस चुके थे जिनका यहाँ लौटकर आना संभव नहीं था और सिमरन आंटी का यहाँ से विदेश जाकर रहना भी संभव नहीं था। अतः उनका दुर्निवार अकेलापन उन्हें घेरे रहता था। कभी-कभी सोचती थीं कि बच्चों के लिए इतना सोचा कि बच्चे आगे जाएं, पर यह न सोच पाईं कि जब बच्चे आगे चले जाएंगे तो उनके माता-पिता तो पीछे ही छूट जाएंगे न?

वही हुआ। दो आँखें पाकर भी मनुष्य आधा ही देख पाता है। कुछ समय पहले तक तो पति का साथ बना हुआ था, लेकिन रमेशजी के जाने के बाद एकाकीपन ने उन्हें सदमे में डाल दिया था। दिन लंबे हो गए, रातें और लंबी।

अपने पिता के गुजर जाने की खबर सुनकर दोनों बेटे आए। पर वे चार-पाँच दिनों से अधिक नहीं रह सके। बड़ी वाली बहू तो अपने पति के साथ ही चली गई और छोटी वाली पति के जाने के बाद हफ्ता दिन रहकर चली गईं अपने अंधे कुएँ में वे फिर निस्संग बच गईं।

ऐसे में एक मुन्नी ही थी जिसके होने से घर में एक सरसराहट बनी रहती थी। दो बोल सुनाई पड़ते थे। वही सब कुछ थी उनके लिए। कभी महरी बनती थी, कभी रसोईदारिन बनती, कभी सहेली बनती तो, कभी बिटिया बन जाती। पूरे घर को झाड़ू-पोंछा करके साफ-सुथरा रखना, खाना बनाना और घर

के बाकी सारे काम करना उसी के ज़िम्मे था। खाली समय मिलता तो कहती, 'दादी! लूडो खेलिएगा?'

सिमरन आंटी भी कहतीं, 'ठीक है, बेटा! चल, लेकर आ। खेलूँगी।' तो दोनों बैठ कर लूडो खेला करती थीं। मुन्नी पर जितना प्यार लुटातीं, उतना ही उसके लिए चिंतित भी रहतीं। क्योंकि उससे छेड़खानी करने की फिराक में रहने वाले शोहदों की कमी न थी। उसे बाजार तो कभी नहीं भेजतीं।

उसी मोहल्ले में एक छोर पर उनके भाई सुभाष जी रहते थे जो लगभग रोज ही टहलते हुए चले आते और आकर अकेले में डोलती हुई बहन के साथ समय बिताते। घंटों बैठकर उनसे बातें करते हुए उनके जीवन के दु:ख की किरचें बीनने की कोशिश करते। साथ में खाना खाते और बहन के उदास दिनों को थोड़ी खुशियों से भरकर अपने घर लौट आते। भाई के पास में होने से बहुत भरोसा बना रहता था सिमरन आंटी के मन में। दु:ख और बीमारियों का क्या ठिकाना? कब धावा बोल दें? अब तलछठ में बची हुई जिंदगी की खुशियों के लिए सुख की इतनी कतरनें ही काफी थीं। चौबीसों घंटे तो कोई साथ नहीं दे सकता था, इस बात को वे भी समझती थीं।

सिमरन आंटी अपने बड़े मकान की निचली मंजिल में रहती थीं और ऊपरी मंजिल में एक बड़ा कमरा खाली पड़ा हुआ था। घर में थोड़ी चहल-पहल बढ़ाने के लिए उनके भाई सुभाषजी ने बहन को सलाह दी कि ऊपरी माले को लड़कियों को किराए पर दे दें। चार लड़कियाँ रहेंगी तो कभी-कभार उनसे बातचीत और गपशप भी हो जाया करेगी और उनके ऊपर-नीचे करने, आने-जाने से भी चहल-पहल बनी रहेगी। आंटी को यह प्रस्ताव बहुत पसंद आया और उन्होंने इसके लिए अखबार में इश्तहार निकलवा दिया। कुछ ही महीनों के भीतर एक-एक करके तीन लड़कियाँ रहने के लिए आ गईं जिससे आंटी को लगा कि उनके घर की रौनक लौट आई है।

तीनों लड़कियाँ जॉब करती थीं। सवेरे निकलतीं तो रात को वापस आतीं। सप्ताह के दिनों में तो देखा-देखी भी नहीं हो पाती थीं। फिर बातचीत कहाँ से होती? इधर सिमरन आंटी उनसे बातचीत और गपशप की बचकाना उम्मीद लिए बैठी थीं, पर नाउम्मीदी ही हाथ आती। फिर भी इतना जरूर होता था कि घर से निकलते या वापस आते हुए यदि आंटी दिख जातीं तो लड़कियाँ नमस्कार, हैलो-हाय कह दिया करती थीं। उनमें एक लड़की लखनऊ की थी-नताशा। दो लड़कियाँ पटना की थीं-अंकिता और चाँदनी। सिमरन को तीनों ही लड़कियाँ बड़ी प्यारी लगती थीं और उनका बोलना, बातें करना, सब बहुत अपना-सा लगने लगा था। उन्हें लगता था जैसे कि ये सब उनकी ही बेटियाँ हों। नताशा, अंकिता और चाँदनी को आंटी से बातें करने का समय भले ही नहीं मिलता हो, पर उन सबने उनके सूनेपन को सिर्फ अपनी उपस्थिति से ही इस तरह भर दिया था कि उनकी जिंदगी का रुकता हुआ सफर फिर से शुरू हो गया था।

सिमरन आंटी का दिल करता था कि वे लड़कियाँ आएं और बैठकर इनसे कुछ बातें करें। उनसे थोड़ी बात कर लेने की इच्छा मन में लिए वे कभी लड़कियों को घर से बाहर निकलते देखतीं तो कभी घर में लौटते हुए। बातें करने का समय उनके पास कहाँ था? वे तो अपनी दुनिया में व्यस्त और मस्त थीं। सुबह से लेकर शाम तक काम-काम-काम। पर उन युवा लड़कियों को देखकर उन्हें अपनी जवानी के दिन जरूर याद आ जाते। कभी वे भी युवा थीं। काली सलवार, काली-उजली छींटदार कुर्ती और काला दुपट्टा लेकर जब वे सड़कों से गुजर जातीं तो देखने वालों की नजरें उन पर ठहर जातीं थीं। एक बार एक आदमी ने उनका पीछा किया था तो वे भाग कर किसी अनजाने व्यक्ति के बरामदे में जाकर छुप गई थीं। बड़ी देर तक वहाँ छुपी बैठी रहीं। जब उन्होंने यह देख लिया कि वह आदमी उस मुहल्ले से उन्हें इधर-उधर ताकता हुआ निकल गया है तब वे घबराई हुई अपने घर लौटीं। जब यह वाकया उन्होंने एक दिन चाँदनी और अंकिता को सुनाया तो अंकिता ने कहा, 'आंटी! आप हैं ही इतनी सुंदर! इस उम्र में भी आपके जैसा कोई नहीं दिखता।'

चाँदनी ने कहा था, 'हाँ आंटी! हंड्रेड परसेंट टू।'

दरअसल थीं तो वे लड़कियों की दादी की उम्र की, लेकिन पूरा मोहल्ला उन्हें शायद उनकी सुंदरता और पहनावे- पोशाक के कारण एक पीढ़ी घटाकर आंटी कहता था। इसीलिए तीनों लड़कियाँ भी उन्हें सिमरन आंटी ही बोलती थीं। लड़कियों से बतरस-सुख पाने के लिए सिमरन आंटी ने एक बार उन्हें रविवार के दिन अपने घर पर लंच के लिए बुलाया। उस रविवार को सिमरन आंटी दिन-भर खूब खुश रहीं। दिल हवा मिठाई बना रहा। उसके बाद अक्सर उन सबको खाने पर बुलाने लगीं। धीरे-धीरे उन तीनों को भी आंटी के यहाँ खाने का इंतजार रहने लगा। अपने घर से दूर रहते हुए सुबह-सुबह सीरियल और दूध खाते-खाते बोर हो जाती थीं वे सब। ऐसे में आंटी के डाइनिंग टेबल पर ही उन्हें घर के असली खाने का स्वाद मिलता था।

सुभाष जी भी उन लड़कियों के अंकल हो गए थे, क्योंकि उनसे भी वे तीनों घुलमिल गई थीं। इसका कारण यह था कि खाने पर उन लड़कियों के साथ-साथ सुभाष जी भी रहते ही थे जो अपनी जिंदगी के मजेदार किस्से उन्हें सुनाया करते थे और

लड़कियाँ खूब दिलचस्पी के साथ सुनती थीं। घर से दूर रहते हुए इन लड़कियों को भी घर जैसा माहौल मिल गया था। तीनों ही अपने घर पर फोन करतीं तो बार-बार सिमरन आंटी और सुभाष अंकल की तारीफ करतीं न थकतीं। सिमरन आंटी, सुभाष जी और लड़कियों के बीच तालमेल कुछ ऐसा बैठ गया था कि सभी एक परिवार की तरह घुल-मिल गए थे।

वह अन्य दिनों से अलग एक डरा-सहमा हुआ दिन था, जब चाँदनी, अंकिता और नताशा सिमरन आंटी के साथ लंच लेते हुए बेचैन-सी हो गई थीं। सुभाष अंकल भी आए हुए थे और सबकी बातचीत कोरोना से होने वाली दहशत-भरी खबरों पर केंद्रित थी। सभी अपनी-अपनी बात कह रहे थे और वहीं पर खड़ी होकर मुन्नी भी गौर से उनकी बातों को सुन रही थी। सुन-सुनकर घबरा भी रही थी।

अंकिता ने चिंतित स्वर में कहा, 'क्या होगा अब? कोविड के बढ़ते हुए मामलों को देखकर लोग ऑफिस आना नहीं चाह रहे हैं। डर के मारे लोग घर से नहीं निकलना चाहते।'

चाँदनी ने कहा, 'हाँ आंटी! हमें भी नहीं समझ में आ रहा है कि हम क्या करें? हम रोज खतरा मोल लेकर ऑफिस के लिए बाहर निकल रही हैं।' सुभाष जी ने कहा, 'और इसकी कोई दवा भी नहीं है। इलाज होना ही मुश्किल है।'

नताशा बोली, 'हम लोग तो घर से कितनी दूर हैं। हमारे लिए तो और मुश्किल। उनका क्या कहा जाए जिनको यह बीमारी पकड़ लेती है? ऐसे मरीजों के पास भी कोई नहीं फटकना चाहता।'

सिमरन आंटी ने एक लंबी साँस छोड़ते हुए कहा, 'कितने लोग मर रहे हैं। ख़बरें सुन-सुनकर रूह काँप जाती है। जब इस बीमारी का कारण नहीं मालूम है तो कोई अपने को कैसे बचाए?'

सुभाष जी ने कहा, 'अपनों को भीड़ से बचा कर रखना है, और क्या?'

चाँदनी ने कहा, 'उनका क्या होगा जिन्हें इतनी भीड़ के बीच ही रहकर काम करना है? आखिर क्या करें लोग? बिना काम किए तो जिंदगी चल नहीं सकती।'

अंकिता बोली, 'पर सब समझ रहे हैं इसकी भयंकरता को। बॉस भी ऑफिस जाने के लिए बहुत दबाव नहीं डालता। कहता है कि तुम घर से काम कर सकती हो तो घर से कर लो।'

नताशा बोली, 'जो नजदीक-पास वाले हैं, वे तो अपने घर चले भी गए हैं। कुछ लोग तो अपने गाँव से ही काम कर रहे हैं।'

चाँदनी ने कहा, 'हम लोग क्या करें? समझ में नहीं आ रहा है। लगता है कि हमें भी घर चले जाना चाहिए।'

यह सुनते ही सिमरन आंटी चौंक गईं। इन लड़कियों के वापस जाने के विषय में तो उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था। अपने घर में उनके रहने का एहसास क्यों अपनी बेटियों के होने के एहसास जैसा था उनके लिए? वे भूल गई थीं कि ये किसी और की बच्चियाँ हैं और कभी भी उनका रैन बसेरा छोड़कर अपने शहर चली जाएंगी या कोई और किराए का घर ढूँढ लेंगी। इसीलिए जब घर लौटने की बात उठी तो उनका दमकता हुआ चेहरा बुझ गया।

वे बोल पड़ीं, 'तुम चली जाओगी तो तुम्हारी जॉब का क्या होगा बेटा?'

चाँदनी ने जवाब दिया, 'वह सब ऑनलाइन मैनेज हो जाएगा, आंटी! उसकी तो कोई चिंता ही नहीं है। जो चिंता है वह कोविड को लेकर है।'

अंकिता बोली, 'इससे होने वाली मौत भी बहुत दु:खद होती है। कोई अपना भी पास नहीं आता। मेरे तो रोम-रोम काँप उठते हैं।' सुभाष जी ने बात को हल्का बनाते हुए कहा, 'अच्छा, इतना भी घबराने की जरूरत नहीं है। चिंता से स्वास्थ्य और भी खराब हो जाएगा।' वे अपनी बहन के दिल में दहशत पैदा करवाना नहीं चाहते थे।

लड़कियों ने इसी तरह बातें करते हुए खाना खत्म किया और चली गईं। उनके जाने के बाद सुभाष जी भी चले गए। और किसी दिन लड़कियाँ खाना खाकर ऊपरी माले पर जाती थीं तो उनके पैरों की धमधमाहट, बातचीत और हँसी की मिली-जुली आवाज नीचे तक सुनाई देती थी। आज ऐसा कुछ नहीं हुआ। आज इतनी खामोशी से वे ऊपर गईं कि पैरों से आहट भी नहीं हुई।

सब के जाने के बाद सिमरन आंटी घर में अकेली बच गईं। बिछावन पर सोने गईं तो उनका दिल घबरा रहा था। तरह-तरह के ख्याल उनके दिमाग में उठ रहे थे। विदेश में बच्चे कैसे होंगे? कहीं कोई कोविड का शिकार न हो जाए। उनको कोरोना हो गया तो कौन देखेगा?

इसी ऊहापोह में उन्होंने मुन्नी से कहा 'आज अपनी खाट मेरी बगल में लगा ले। पता नहीं मन कैसा हो रहा है! यह दुनिया में क्या हो रहा है! इंसान कितना बेबस हो गया है! ओह!'

दूसरे दिन सुभाष जी आए तो देखा दीदी टीवी की खबरों पर नजर गड़ाए बैठी हैं। उन्होंने आते ही टीवी बंद कर दी और कहा, 'यह सब मत देखा करो दीदी! अच्छी-अच्छी बातें सोचो। और अभी तो मैं आया हूँ। मुझसे बातें करो।'

सिमरन आंटी के चेहरे को चिंता के कोहरे ने बेनूर बना दिया था और आँखों में खौफ की छाया उतर आई थी। सुभाष जी ने

उनका मन बदलने के लिए अपने कॉलेज के दिनों की बातें शुरू कर दीं। जान-बूझकर हँसी-भरे प्रसंग सुनाते रहे। तब जाकर आंटी कुछ सामान्य हो पाईं।

इसके बाद चंद रोज गुजरे थे कि अचानक एक दिन अंकिता और चाँदनी आंटी के पास आईं। आकर उन्हें किराया देते हुए कहा कि वे दोनों सुबह वाली गाड़ी से अपने घर चली जाएंगी।

यह सुनकर सिमरन आंटी चौंक गईं। बोलीं, 'अचानक? अचानक क्यों जाना हो रहा है तुम दोनों का?'

'अचानक नहीं आंटी। आप तो जान ही रही हैं कि कोरोना के कारण माहौल कैसा हो गया है? सब लोग अपने-अपने घर भाग रहे हैं। पता चला है कि लॉकडाउन भी होने वाला है। इसलिए हम जा रही हैं।' अंकिता बोली। 'तो..फिर कब... आओगे...बेटे?' आंटी थरथराते स्वर में पूछ बैठीं। 'पता नहीं आंटी।..घर पहुँच कर फोन से बता दूँगी आपको।'

'क्या नताशा भी जा रही है?'

'हाँ आंटी, वह भी कल शाम को चली जाएगी।' चाँदनी ने कहा फिर दोनों ने हाथ जोड़कर नमस्ते की और वहाँ से चली गईं।

थोड़ी देर बाद नताशा भी आई और उसने आंटी का किराया चुकाया और कहा, 'आंटी!...मैं कल शाम को जा रही हूँ।'

'हाँ, अभी-अभी मुझे पता चला। बेटे! तुम लौटोगी कब?'

'कह नहीं सकती।...चलती हूँ आंटी, नमस्ते!'

तीनों लड़कियों के जाने के बाद सिमरन आंटी के दिल की धड़कनें बढ़ गईं मुन्नी ने फोन करके सुभाष अंकल को बुला लिया। वे समझ गए कि हताशा के कारण उनकी तबीयत बिगड़ गई है। आकर उन्होंने बहन से इस तरह बातचीत की कि उनका डर दूर हो जाए। उस रात को वे बहन के घर पर ही रुक गए और सुबह उठकर मुन्नी को अच्छी तरह ख्याल रखने के लिए कहकर अपने घर चले गए।

तीनों लड़कियों के जाने के बाद ऊपरी मंजिल में ताला बंद हो गया। सुबह में सुभाष जी के घर चले जाने के बाद मुन्नी अपने कामों में व्यस्त हो गई और पूरे घर में फिर से अटूट सन्नाटा छा गया। सिमरन आंटी ने किसी तरह अपने शरीर को बिस्तर से उठने के लिए मजबूर किया। आज कुछ भी करने की इच्छा नहीं हो रही थी। उनकी आँखों में आँसू भी आ गए, पता नहीं क्यों? अपनी बेबसी के कारण या उन बच्चियों के चले जाने के कारण? मुन्नी नाश्ता बना कर ले आईं लेकिन खाने की इच्छा ही नहीं हुईं थोड़ा-सा खाकर छोड़ दिया। मुन्नी के बहुत कहने पर किसी तरह दो चम्मच और मुँह में डाल पाईं।

दो-तीन दिन बीते होंगे कि उनका मन लड़कियों से बात करने के लिए बेचैन हो उठा तो उन्होंने बारी-बारी से तीनों को कॉल किया और खूब खुश होकर बातें करती रहीं। इस बातचीत के कुछ दिनों बाद ही लॉक डाउन का एलान हो गया जिसके साथ ही शहर निर्जन हो गया। रास्तों पर धूल उड़ने लगी। अपना जाना-पहचाना शहर एक भुतहा बस्ती में तब्दील हो गया। हर पल किसी खतरे की आशंका से सिमरन आंटी का दिल धड़का करता था। कभी खिड़की से बाहर सूनी सड़क को देखतीं तो कभी खबरें सुनतीं। कभी तरह-तरह की आशंकाओं से ग्रस्त हो जातीं तो कभी चुपचाप बैठकर विस्फारित नेत्रों से शून्य ताकती रहतीं।

घर से बाहर निकलने पर पाबंदियों के कारण सुभाष जी का भी आना कम हो गया। जगह-जगह पुलिस खड़ी रहने के कारण कोई निकले भी तो कैसे? शाम को दो घंटों के लिए तालाबंदी उठाई जाती तो उसी बीच आते और हाल-चाल पूछ कर चले जाते।

मनुष्य अपने घरों में उसी तरह छुप गया था जिस तरह जानवर कंदराओं में छुपे रहते हैं। मानव के मकानों में दुबकते ही जानवर घबराकर जंगलों से बाहर निकल आए और दूरदराज के इलाकों में दिखाई देने लगे। सिमरन आंटी ने यह दृश्य टीवी पर देखा तो चिल्लाने लगीं, 'अरी मुन्नी...सुन!...अरी मुन्नी!...कहाँ गई?...सुन!...इधर आ।'

मुन्नी किचन से छोड़ती हुई सिमरन आंटी के पास आई और बोली, 'क्या हुआ दादी? क्या हुआ? आप इस तरह क्यों घबरा उठी हैं?' किसी अनहोनी के भय से मुन्नी की भी साँसें फूलने लगी थीं।

'देख मुन्नी! सारे जानवर जंगलों से निकल आए हैं। किस तरह शहरों की ओर बढ़ रहे हैं। इन कुछ दिनों में ही दुनिया कैसे बदल गई?...पता नहीं क्या होने वाला है?...सब तो...मुझे छोड़ कर...चले गए...मुन्नी! अब तू मुझे छोड़कर ना जाना।...तू ही मेरी बेटी है! तू छोड़कर ना जाना, मेरी बच्ची!'

यह कहकर सिमरन आंटी मुन्नी से चिपटकर रोने लगीं। मुन्नी ने कहा, 'दादी! मैं सचमुच आपकी बेटी हूँ। आप चिंता क्यों करती हैं? मैं आपको छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगी। आप चुप हो जाइए। मैं तो आप ही के पास हूँ।'

यह कह कर मुन्नी उनके आँसुओं को पोंछने लगी।

❖

ई-102, रोहम इच्छा अपार्टमेंट, मोगनहल्ली विद्या मंदिर स्कूल के निकट, बैंगलुरू-560103 मोबाइल : 8210777500
ईमेल: anjanaverma03@gmail.com

इन्द्रधनुष

— रोचिका अरुण शर्मा

कार्यक्रम स्थल पर जिस किसी की भी नजर उस पर पड़ती, उनकी निगाहों में आश्चर्य उतर आता। कुछ लोग निहारिका को घूर-घूर कर देखते हुए कुछ खुसर-फुसर भी कर रहे थे, मां की नजरें उन लोगों पर टिकी थीं, मन में भय था कि सोच रहे होंगे क्या आज पति के मरने का जश्न है जो इतनी सज-धज कर आई है। घबराहट में उसने बोतल से पानी पीया और कुछ ठंड़े छींटे अपने मुंह पर मारे। तभी अविनाश का नाम पदक के लिए पुकारा गया। निहारिका स्टेज पर गई उसके नाम का पदक लेकर उसे चूमते हुए बोली यह चमचमाता हुआ पदक मेरे माथे का टीका है, यह जिस लाल रिबन में बंधा है वह मेरा मंगलसूत्र है। ये हर समय मुझे याद दिलाते रहेंगे कि मेरा अविनाश अमर है और जैसा कि वे स्वयं चाहते थे जो कार्य वे अधूरा छोड़ गए उनका इकलौता पुत्र उसे पूरा करेगा। मुझे एक फौजी की वीरंगना होने पर गर्व है।

काली घटाएं घिर आईं थीं, दस वर्षीय नन्हीं अपनी माँ की उंगली थामे अपने घर के बागीचे में ठंडी फुहारों का आनंद लेती हुई रंग-बिरंगी तितलियों को पकड़ने की कोशिश में छोड़-भाग करने लगी थी।

"माँ देखो न ये तितलियाँ कैसे झप्प से अपने रंगीन परों को खोलती-बंद करती हैं, कितने आकर्षक हैं इनके रंग, काश मैं तितली होती माँ, इस फूल से उस फूल मंडराती, उनका रस ले कर दूर गगन में उड़ जाती और इन सलेटी बदलियों को पार कर इन्द्रधनुष पर जा कर बैठ जाती, इन्द्रधनुष के रंग चुरा कर अपने परों में भर लेती।"

कितना सुन्दर लगता है न जब बारिश के मौसम में चटख धूप में अचानक से आसमान में न जाने कहाँ से इन्द्रधनुष निकल आता है।

नन्हीं की माँ अपनी लाडली की अठखेलियाँ देख फूली न समाती।

युवा होती नन्हीं को नियोन रंग के कपड़े एवं जूलरी उसे बहुत भाते, उसकी चाल-ढाल में नृत्य एवं संगीत बसा था, खिलखिला कर जब हंसती तो ऐसा लगता जैसे न जाने कितने सितार एक साथ सुर में सुर मिला कर बज उठे। अब उसे निहारिका नाम से पुकारा जाने लगा था।

एक दिन रिश्ते की एक चाची के घर गई तो उसका फौजी भाई उसे देखते ही उस पर रीझ गया। चंद दिनों में उसने अपना हाल-ऐ-दिल निहारिका व अपनी बहिन को सुना दिया।

फिर क्या चट-मंगनी और पट ब्याह। कुछ महीने बीते अविनाश की पोस्टिंग कश्मीर हो गई।

जल बिन मीन सी हालत थी मायके में भी निहारिका की, वह अविनाश के मैसेज व फोन की राह देखती रहती। कभी जब फोन पर अविनाश से बात होती तो तितली के परों की तरह झप्प से पलकों को झपका अपनी रुलाई को रोक लेती।

आज वह अनायास ही चहक कर अपनी माँ के गले लग गई।

क्यूँ इतनी प्रसन्न नजर आ रही हो नन्हीं क्या अविनाश आ रहा है? माँ ने उसके थिरकते कदमों को देख कर पूछा।

नहीं माँ मैं अपने परों को उड़ान दे अपने इन्द्रधनुष के पास जा रही हूँ, मैं कश्मीर जा रही हूँ माँ, अविनाश ने वहाँ मेरे रहने की अनुमति लेकर व्यवस्था भी कर ली है। उस ने अपना सूटकेस तैयार किया और कुछ ही दिनों में विमान पर सवार हो बदलियों संग उड़ान भरने लगी और सोच रही थी कि चटख धूप आए और इन्द्रधनुष के दर्शन हो सकें, उसे जा कर छू ले।

कश्मीर पहुँच अपने अविनाश का सानिध्य पा वह किसी चंचल हिरणी सी कुलाचें भरने लगी थी। हरी-भरी वादियों में लदे फूलों की रंगत उसके कोमल गालों पर उभर आई थी। सर्दी में बर्फ देख वह फिर से नन्हीं बन जाती, रुई के सफेद फाहों सी बर्फ को आसमान से गिरते देखती तो हथेलियों में भर लेने की चाह में खुले आसमाँ तले वह गिलहरी सी फुदक-फुदक कर यहाँ से वहाँ लुकती-छुपती रहती।

ठण्ड लग जाएगी तुम्हें, ज्यादा देर खुले में न रहो, अविनाश ने खिड़की खोल कर बाहर झांकते हुए उसे पुकारा।

"फौजी की पत्नी हूँ किसी से नहीं डरती, ठण्ड मुझे क्या लगेगी, मैं ठण्ड को लग जाउंगी, मुझे यह स्नो फॉल बहुत पसंद है, जी चाहता है सदा के लिए यहीं रह जाऊं" निहारिका खिलखिला पड़ी।

एक वर्ष कब बीत गया कुछ मालूम ही न हुआ और निहारिका ने एक बेटे को जन्म दिया।

अविनाश ने उसे गोद में लिया और बोला "फौजी नंबर वन बनेगा ये"।

"सुनो निहारिका कल को मैं रहूँ न रहूँ इसे तुम देश सेवा के लिए फौजी ही बनाओगी वादा करो" अविनाश ने निहारिका की आँखों में झाकते हुए वादा लिया।

कितना समय हुआ मायके नहीं गई, वहाँ सभी हमारे छोटे फौजी को देखने को लालायित हैं। फोन पर माँ-पापा पूछते ही रहते हैं कब झलक दिखाएगी हमें नाती की?

पूरे एक वर्ष का होने को आया अब हमारा बेटा अविनाश।

"मैं एक महीने के लिए मायके हो आती हूँ" एक दिन निहारिका ने अविनाश से मनुहार करते हुए कहाँ

हाँ-हाँ क्यूँ नहीं?

एक महीने बाद यहाँ लौट कर आऊँगी और हम इसके जन्मदिवस पर पार्टी देंगे।

यहाँ क्यूँ?

मैं भी थोड़े दिनों बाद छुट्टी ले कर आ जाऊंगा, वहीं पूरे परिवार के साथ हम इसका जन्मदिन मनाएंगे। मेरे माता-पिता से भी मिल लूंगा। अब उनकी भी तो उम्र हो चली है।

"जैसा तुम उचित समझो अविनाश" निहारिका ने उसके काँधे पर अपना सर टिका दिया था।

एक महीना कैसे बीता पता ही नहीं चला। अविनाश फ्लाईट से अपने घर जयपुर पहुँचने वाला था।

घर में सब उलटी गिनती गिन रहे थे कि खबर आई "कश्मीर में लैंड माइंस से ब्लास्ट हुआ और उसके बाद आतंकियों एवं सेना के अफसरों में मुठभेड़ हुई"। अपनी आदतानुसार निहारिका के पिताजी खबरों को चैनल बदल-बदल कर देख रहे थे। जब कभी ऐसी खबरें आतीं उनका दिल दहल जाता। आखिर उनके दामाद को भी तो जान का खतरा हो सकता है।

"क्यूँ फिक्र करते हो निहारिका के पापा सब ठीक होगा, ईश्वर का भरोसा रखो" निहारिका की माँ ने आज फिर उन्हें हिम्मत बंधाई थी।

वे रात भर करवटें बदलते रहे और सुबह जब चाय पीते वक्त टी.वी. ऑन किया उनके हाथ कंपकंपाने लगे और कप हाथ से छूट गया।

कप के टूटने की आवाज सुन कर निहारिका की मां रसोई से छोड़ी हुई आई, देखा निहारिका के पिताजी कुर्सी पर एक तरफ लटके पड़े थे, पूरा बदन पसीने-पसीने हुआ था।

"निहारिका बेटी डॉक्टर को फोन तो कर शायद तेरे पिताजी को कुछ होश नहीं, कुर्सी पर लटके से पड़े हैं" अपने पति की

ऐसी हालत देख निहारिका की मां को स्वयं बेहोशी सी आने लगी थी।

निहारिका ने मां को पानी पिलाया और कहा "मां आप अपने आप को तो संभालो।"

थोड़ी ही देर में माँ-बेटी पिताजी के पास अस्पताल में बैठी थीं।

तभी निहारिका के मोबाईल पर फोन आया और मालूम हुआ अविनाश आतंकवादियों से हुई एक मुठभेड़ में शहीद हो गया। उसकी नजर अस्पताल के कमरे में लगे टी.वी. पर पड़ी। उसके पति के शहीद होने की खबर टी.वी. पर ब्रेकिंग न्यूज में थी।

उफ्फ्फ! सुबह से यह खबर दिखाई जा रही है, शायद पापा इसीलिए.....ओह ये क्या किया तूने ईश्वर, वह फफक कर रो पड़ी।

पापा को भी डॉक्टर बचा न सके।

निहारिका कौन से दु:ख में रोए और किस के साथ रोए अब तो कोई सहारा ही नहीं रह गया था जिंदगी में।

दो बुरी खबरें देख-सुन कर माँ तो स्वयं ही निढाल सी हो गई थी।

पिता के अंतिम संस्कार की तैयारी चल रही थी कि अविनाश की तिरंगे में लिपटी पार्थिव देह भी उनके घर पूरे सैनिक सम्मान के साथ पहुँच गई।

कैसे सहन करे, क्या करे? माँ को संभाले या स्वयं को?

पर संभालना तो होगा, पहले स्वयं को फिर मां को भी। आखिर इकलौती बेटी है परिवार की। निहारिका ने अपने हृदय को कड़ा कर स्वयं को चट्टान सा मजबूत कर लिया था।

इससे दुखद और क्या होगा कि उसने अपने एक वर्षीय पुत्र को गोदी में लेकर दो अर्थियों को कंधा दिया था। अपने पति को पूरे फौजी सम्मान के साथ विदा कर वह स्वयं को गौरवान्वित महसूस कर रही थी। वहीं पिता को अंतिम विदा कर बेटे का फर्ज अदा कर रही थी।

सास-ससुर से इजाजत माँगी "क्या मैं कुछ दिन अपनी माँ के संग रह लूं? उस बेचारी का मेरे सिवा दुनिया में कोई नहीं।"

वे भी क्या कहते उन पर क्या कम दु:ख का पहाड़ टूटा था? फिर भी निहारिका की माँ की स्थिति से भी वाकिफ थे।

जैसा तुम उचित समझो बेटी, अब अविनाश तो रहा नहीं। फिर भी हम दोनों पति-पत्नी तो एक दूसरे को संभाल लेंगे तुम्हारी माँ को शायद तुम्हारी ज्यादा जरूरत है।

रोज रात को तकिए का गिलाफ नम हो जाता पर निहारिका मां को भनक भी न होने देती और अगली सुबह नहा-धो कर पूरा श्रृंगार करती। मां के हाथ में चाय का प्याला थमा कर स्वयं भी वहीं बैठ अपने बेटे के साथ खेलती, हंसती, खिलखिलाती, मुस्कुराती।

लेकिन उसकी ये खिलखिलाहट उसका श्रृंगार आस-पास के लोगों के मन में खटकने लगा था। उसकी माँ उसे समझाती "नहीं बेटी दुनिया को यह सब अच्छा नहीं लगता कि पति के न रहने पर तुम ये श्रृंगार करो, उसका शोक व्यक्त करने की बजाय पहले की तरह जिंदगी जिओ।

बेटी थोड़ा संयत व्यवहार करो, दुनिया के सामने दिखावा भी जरूरी है। समाज नहीं स्वीकारता कि एक विधवा श्रृंगार करे, हँसे, खिलखिलाए। अभी तो दो माह ही हुए हैं हमारे पतियों को गए।

माँ मैं तो स्वयं ही तुम्हें कहने वाली थी कि पिताजी के जाते ही तुमने चूड़ियाँ क्यूँ उतार दीं? पिताजी को तो तुम्हारी चूड़ियों से भरी गोल-गोल कलाइयां खूब सुन्दर लगती थीं।

बेटी हम जहाँ रहते हैं वहाँ के रीति-रिवाज और रस्में भी निभाने पड़ते हैं हमें।

पर क्यूँ माँ? हमारे जीवन पर हक तो हमारा है न।

नहीं बेटी ऐसा नहीं होता, कल ही मोहल्ले की औरतों को कहते सुना कि निहारिका में पति के जाने के बाद कोई बदलाव नहीं आया। कल को यह बात तुम्हारे ससुराल तक पहुँची तो अनर्थ हो जाएगा।

मुझे किसी की फिक्र नहीं मां, मैं एक फौजी की पत्नी हूँ, हर डर, हर खौफ का सामना करना जानती हूँ। यदि मेरे ससुराल वालों ने कुछ कहा तो मैं उनसे भी बात करूंगी।

अभी कुछ दिन बीते थे कि सास ने अपने पोते से मिलने आने की मंशा जता दी। आखिर अविनाश के बाद वही तो उसकी आखिरी निशानी है। उसमें अपने बेटे की छवि देख-देख कर जीवन काट लेना चाहते है वे भी।

पूरे मान-सम्मान संग निहारिका एयर-पोर्ट से सास-ससुर को घर लाई।

बेटी निहारिका अविनाश को पदक से सम्मानित किया जाएगा। वैसे तो हम तुम्हें नहीं टोकते, तुम हमारी बेटी जैसी ही हो किंतु लोक-लाज तो हमें भी निभानी ही पड़ती है।

बहिन जी आप समझाइए न निहारिका को निहारिका की सास ने उसकी माँ की तरफ आस भरी नजरों से देखा।

मैं आप दोनों माँ से कह देती हूँ मैं अपने सुहाग चिह्न नहीं उतारूंगी। मेरा पति आतंकियों से मुठभेड़ में मारा गया है। वह डर कर वहाँ से भागा नहीं, उसने आतंकियों के सामने समर्पण भी नहीं किया बल्कि चार को मार कर शहीद हुआ है।

मैं अपने बेटे से उसके पिता के शहीद होने का गर्व और गुमान नहीं छीन सकती। मैं एक वीरांगना हूँ और अविनाश अमर है।

उसकी माँ व सास दोनों ने जैसे मौन धारण कर लिया था क्या करतीं दोनों माएं। एक अपने बेटे को जीवित रखना चाहती थी तो दूसरी अपने दामाद को। पर दुनिया कहाँ समझती है किसी के मन के भाव? उसे तो अपने नियम-कायदों पर चलने वाले ही पसंद आते हैं।

आखिरकार वह दिन आ ही गया। आज अविनाश को पदक मिलने वाला है, निहारिका सुबह मुंह-अँधेरे ही जाग गई, श्रृंगार किया, माथे पर लाल टीका, हाथों में लाख की चूड़ियाँ पहन स्टेज पर पहुँच गई।

कार्यक्रम स्थल पर जिस किसी की भी नजर उस पर पड़ती, उनकी निगाहों में आश्चर्य उतर आता।

कुछ लोग निहारिका को घूर-घूर कर देखते हुए कुछ खुसर-फुसर भी कर रहे थे, मां की नजरें उन लोगों पर टिकी थीं, मन में भय था कि सोच रहे होंगे क्या आज पति के मरने का जश्न है जो इतनी सज-धज कर आई है। घबराहट में उसने बोतल से पानी पीया और कुछ ठंडे छींटे अपने मुंह पर मारे।

तभी अविनाश का नाम पदक के लिए पुकारा गया। निहारिका स्टेज पर गई उसके नाम का पदक लेकर उसे चूमते हुए बोली यह चमचमाता हुआ पदक मेरे माथे का टीका है, यह जिस लाल रिबन में बंधा है वह मेरा मंगलसूत्र है। ये हर समय मुझे याद दिलाते रहेंगे कि मेरा अविनाश अमर है और जैसा कि वे स्वयं चाहते थे जो कार्य वे अधूरा छोड़ गए उनका इकलौता पुत्र उसे पूरा करेगा। मुझे एक फौजी की वीरंगना होने पर गर्व है।

उसकी माँ जमीन में गड़े जा रही थी, क्या ऊल-जलूल बोल रही है लड़की, कम से कम आज तो दिखावा कर लेती कि तू अपने पति की याद में तड़पती-कलपती है।

किंतु निहारिका के ससुर का सीना गर्व से फूल गया था।

बोले "अविनाश की माँ अविनाश ने अपने ही जैसी निर्भीक और निडर लड़की पसंद की, ब्याह होते ही उसी के साथ कश्मीर चली गई थी ये। मुझे तो अपनी बहु का स्वभाव आज ही समझ आया, इसकी चूड़ियों के रंगों में इन्द्रधनुष के सातों रंग खिल उठेंगे, इसके माथे के टीके में सितारे टिमटिमाएंगे। जिसमें हम अपने अविनाश को मुस्कुराते हुए देखेंगे और फिर अपने देश के लिए मर-मिटने वाला एक नया फौजी तैयार करेंगे।"

❖

5lh] oksjkfoyk] ikapoha ysu] viksftV xksihukFk xkMZu eSfjt gkWy
U;w bLdkWu VsEiy] vkWfQlj] vukjdyh] batkcDde] psUubZ&600115
eksckby % 9597172444] bZ&esy % sgtarochika@gmail.com

सांस्कृतिक मूल्यों की युगानुरूप व्याख्या और हिंदी कविता

— कविता भाटिया

व्यक्तित्व, संस्कृति और समाज के संबंधों को स्पष्ट करती कवि अज्ञेय की 'नदी के द्वीप' नामक कविता अत्यंत महत्वपूर्ण है। नदी जिस तरह द्वीप के उभार, कूल को गढ़ती है, उसके बाहरी एवं भीतरी रूपकारों को गढ़ती है, ठीक वैसे ही संस्कृति व्यक्तित्व की रूपरेखा, चरित्र और मूल्यबोध को गढ़ती है। अज्ञेय संस्कृति, समाज और व्यक्तित्व के जिस संबंध को भारतीय आदर्श मानते हैं उसे उनकी 'यह दीप अकेला' कविता में भी देखा जा सकता है। कवि नागार्जुन अपनी कविताओं में संस्कृति से जुड़े प्रतीकों और मिथकों को उठा एक नई सांस्कृतिक चेतना निर्मित करते है। 1971 में पटना के बेलछी गाँव में कुर्मी भूस्वामियों द्वारा तेरह हरिजनों को जिंदा जलाए जाने के विरोध में उन्होंने 'हरिजन गाथा' लिखी। यह कविता सामाजिक विषमता, अन्याय और शोषण के विरुद्ध खुली गवाही के तौर पर थी।

संस्कृति एक शक्तिशाली अवधारणा है। उसकी जड़ में मिथक भी है और ऐतिहासिक अनुभव की जातीय स्मृतियाँ भी। वह समुदाय और समाज की संरचना को प्रभावित कर उसकी रीति-नीतियों का नियमन करती है और उसे दिशा बोध एवं मूल्य बोध भी देती है। संस्कृति प्राय: उन गुणों का समुदाय समझी जाती है जो व्यक्ति को परिष्कृत और समृद्ध बनाते है। जिस संस्कृति में युग की मांग के अनुसार विकसित और रूपांतरित होने की क्षमता नहीं होती वह पिछड़ जाती है। भारतीय संस्कृति की उदारता और समन्वयवादी गुणों ने अन्य संस्कृतियों को समाहित तो किया है, किंतु अपने अस्तित्व के मूल को भी सुरक्षित रखा है। इसकी प्रमुख विशेषताओं में आध्यात्मिकता एवं भौतिकता का समन्वय, अनेकता में एकताग्रहणशीलता, लचीलापन एवं सहिष्णुता, वसुधैव कुटुम्बकम, लोकहित और विश्व कल्याण है। इसी के साथ किसी भी देश की सामाजिक प्रथाएँ, व्यवहार, आचार-विचार, पर्व-त्योहार तथा सामुदायिक जीवन का संपूर्ण ढांचा ही संस्कृति की नींव पर खड़ा रहता है।

साहित्य और संस्कृति का परस्पर अटूट संबंध है। मनुष्य अपनी रचनात्मक अनुभूति को संगीत, नाटक, चित्रकला तथा अन्य विधाओं के जरिए व्यक्त करता है और इनमें भी कविता हमारी संस्कृति का सबसे अधिक संवेदनशील, प्रयोगात्मक और मुखर हिस्सा है। तभी तो कवि अपनी पुरातन संस्कृति से जुड़ते हुए युगानुरूप अपने समय की समस्याओं को संस्कृति के आइने में देखते हुए नई सांस्कृतिक चेतना का निर्माण करता है।धर्म व्यक्तिगत होता है, जबकि संस्कृति सामूहिक होती है। वह धर्म और संप्रदाय से ऊपर मनुष्यता के सूत्र जोड़ने वाली शक्ति है। हमारे अधिकांश भक्त कवि लोक संस्कृति से आए थे। लोक संस्कृति से जुड़े होने के कारण ही वे सत्ता और शास्त्र के दृष्टिकोण का अतिक्रमण कर सके, उसके पार देख सके। विवेकानंद, अपने धर्म पर गर्व करते हैं—इस गर्व का राजनैतिक रूप से पराधीन समाज के लिए बहुत अधिक अर्थ है। यह स्वाभिमान अपनी जातीय और सांस्कृतिक अस्मिता के साथ राष्ट्रिय स्वाभिमान से जुड़ता है।

हमारे हिंदी साहित्य में आरंभ से ही भारतीय सांस्कृतिक प्रवृतियाँ मिलती है। हमारे चेतना संपन्न साहित्यकार

यथास्थितिवादी नहीं है। उन्होंने जड़ सांस्कृतिक परंपराओं, सामाजिक रूढ़ियों धार्मिक पाखंडों और मनुष्य को बाँटने वाली प्रवृत्तियों का निरंतर विरोध किया। वे सामाजिक परिवर्तनों के आकांक्षी रहे हैं। संत कवियों ने वर्ण व्यवस्था और देवत्ववादी संस्कृति के स्थान पर साधारण जन की संस्कृति और उसके जीवन को महत्त्व दिया। उन्होंने जाति और वर्ण की श्रेष्ठता पर तीखे व्यंग्य किए। ब्राह्मणों के मुक्ति और मोक्ष के सिद्धांतों को निरर्थक बताया तथा यज्ञ, तीर्थ, पुजारी, पुरोहितों को भ्रमित करने वाले समुदाय के रूप में चित्रित किया।

किसी भी देश की सभ्यता और संस्कृति उसकी अस्मिता का द्योतक होती है। सांस्कृतिक अस्मिता के अंतर्गत सदियों से सहेजी हुई उसकी परंपराएँ, रीति-रिवाज, विचार, आस्थाएँ, मूल्य और मान्यताएँ शामिल होती है।अपनी जड़ों की ओर

लौटने और अपनी विस्मृत संस्कृति को पहचानने की जरूरत औपनिवेशिक शक्तियों के आक्रमण के समय उत्पन्न हुईं ब्रिटिश सत्ता सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक स्तर पर ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक स्तर पर भी भारतीय अस्मिता का दोहन कर रही थी। ऐसे विषम समय में समाज सुधारकों और क्रांतिकारियों के साथ साहित्यकारों ने भी पस्त और पराधीन जनता को उद्‌बुद्ध कर उसे भारतीय इतिहास और संस्कृति के विस्मृत पृष्ठों की याद दिला भारतीय गौरव से परिचित कराया और राष्ट्रीय जागरण की भावनाओं का उद्‌घोष किया। विवेकानंद, रामकृष्ण परमहंस, दयानंद सरस्वती और गाँधी ने देशवासियों को पश्चिमी सभ्यता को नकार कर अपनी सभ्यता और संस्कृति अपनाने पर बल दिया। इस संदर्भ में चिंतक आनंद कुमार स्वामी का मानना है कि 'युगों पुराने जिन विचारों, विश्वासों, मूल्यों, संस्कृति और संस्थाओं ने भारतीयों के जीवन को अर्थ और दिशा दी थी, उनके प्रति भारतीयों के विश्वास को ब्रिटिश शासकों ने खोखला कर दिया था। उपनिवेशवाद ने सिर्फ आर्थिक, राजनीतिक और सैन्य क्षेत्रों पर ही प्रहार नहीं किया बल्कि इसका एक लक्ष्य लोगों पर वैचारिक प्रभुत्व भी कायम करना था'।

ऐसे ही चुनौतीपूर्ण समय में हिंदी साहित्य के कवि समाज द्वारा भी अपनी संस्कृति के प्रति गहन चिंता व्यक्त की गईं नवजागरण काल में भारतेंदु से लेकर द्विवेदीयुगीन कवि मैथिलीशरण गुप्त तथा छायावादी कवि प्रसाद और निराला से लेकर समकालीन कवियों में केदारनाथ सिंह, कुंवरनारायण और राजेश जोशी तक ने किसी न किसी रूप में सांस्कृतिक मूल्यों को पहचाना तथा क्षय होती हई संस्कृति, अपनी राष्ट्रीयता और निज भाषा के प्रति चिंता भी व्यक्त की। दिवेदी युगीन कवि मैथिलीशरण गुप्त का दर्शन अहिंसा पर आधारित है। वह गाँधीवादी नैतिकता से प्रभावित होते हैं और अपनी रचना 'भारत भारती' में देश के गौरवशाली अतीत और पतनशील संस्कृति पर चिंता व्यक्त करते हैं। छायावादी काव्य में प्राचीन दर्शन एवं अध्यात्म की पर्याप्त भूमिका रही। यहाँ उसका एक विशेष संदर्भ औपनिवेशिकता को चुनौती देना रहा। पश्चिम में यह प्रचार कि भारतीय दर्शन, साहित्य और धर्म कुछ विशेष नहीं है, उसकी सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था भी सभ्य, सक्षम और पर्याप्त नहीं है—को चुनौती देने के क्रम में अपनी दार्शनिक और आध्यात्मिक परंपरा का प्रयोग किया गया जो अपनी खोई हुई अस्मिता के विचार का एक रूप माना जा सकता है। छायावादी प्रसाद ने भी उपनिषदों, शैव, बौद्ध और सूफी दर्शन का गहरा अध्ययन किया था जिसका प्रभाव उनकी चिंतन धारा पर भी पड़ा। उनकी 'अशोक की चिंता' नामक कविता तो बौद्धों के दु:खवाद और करुणा से प्रभावित है। उनके नाटकों का मूल स्वर ही भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रीय चेतना है। कविवर पंत गाँधीवादी विचारों के पश्चात अरविंद दर्शन से प्रभावित होते है। जिसमें कवि पूर्ण मानवीय विकास चाहता है। भौतिक जीवन दर्शन को वह एकांगी स्वीकार करते हुए अंतर्बाह्य विकास को

महत्त्व देते हैं। वर्ष 1942 के उपरांत उनकी अधिकांश रचनाएँ जैसे 'रजत शिखर' शिल्पी तथा अतिमा' आदि में अरविंद दर्शन से प्रभावित मानवतावादी संबंधी रचनाओं का बाहुल्य है। एक नए परिप्रेक्ष्य में रामकथा को लेकर 'राम की शक्ति पूजा' रचने वाले कवि निराला ने रामकृष्ण परमहंस, टैगोर तथा विवेकानंद के चिंतन के प्रभाव स्वरूप उनकी रचनाओं में सामाजिक रूढ़ियों का विरोध, विपन्नों के प्रति करूणा व सहानुभूति तथा सामाजिक शोषण व भेदभाव के प्रति आक्रोश मिलता है। मुक्तिबोध के यहाँ यथार्थ उन्हें ऐसी दृष्टि देता है जिसकी सहायता से वह जीर्ण आदर्शों को तोड़ फेंकते है और बदली हुई परिस्थतियों के अनुरूप कर्तव्य बोध की सृष्टि करते है—'लो हित-पिता को घर से निकाल दिया/जन मन करूणा-सी माँ को हंकाल दिया/स्वार्थ के टेरियार कुत्तों को पाल लिया.../विवेक बखार डाला स्वार्थों के तेल में/ आदर्श खा गए! ...' समकालीन कवि अरुण कमल अपने मूल्यों, संस्कारों और संस्कृति से कटने के कारण आज के मनुष्य की परिवर्तित स्थिति को देखते हुए चिंतित है 'पेड़ को पत्थर बनने में लगा है हजार वर्ष/आदमी देखते-देखते पत्थर बन रहा है'। इसी के व्यापक संदर्भ में वरिष्ठ कवि केदारनाथ सिंह की संक्षिप्त कविता गहरे अर्थबोध से भरी है जो चिंता और आकांक्षा दोनों को एक साथ व्यक्त करती है—'उसका हाथ मैंने / अपने हाथ में लेते हुए सोचा / दुनिया को हाथ की तरह / गर्म और सुंदर होना चाहिए'। यहाँ हाथ का गर्म होना समूची सृष्टि में उस गर्माहट भरे प्यार की आकांक्षा है जो 'सर्वे भवन्तु सुखिना, सर्वे सन्तु निरामया' की भावना से उपजा है।

आज जबकि भोगवादी संस्कृति जंगल की आग की तरह फैल रही है, तो हम पश्चिमी जीवन शैली को आदर्श मान हम अपनी आस्थाओं, मूल्यों और अपनी सांस्कृतिक और जातीय पहचान को निर्धारित करने वाली परंपराओं से निरंतर कटते जा रहे है। पश्चिमी विचारक एडवर्ड. डबल्यू. सईद का इस संदर्भ में मानना है कि 'हमने अपने को कभी शायद इतना विखंडित, तीक्ष्ण रूप से पराजित और पूर्ण रूप से इतना क्षुद्र महसूस नहीं किया था जितना आज इस बात को लेकर करते है कि हमारी असली सांस्कृतिक अस्मिता क्या है।' कवि राजेश जोशी अपनी 'संयुक्त परिवार' कविता में कहते है 'बाबा को जानता था सारा शहर/पिता को भी चार मोहल्ले के लोग जानते थे/मुझे नहीं जानता मेरा पड़ोसी मेरे नाम से/अब सिर्फ एलबम में रहते है/परिवार के सारे लोग एक साथ/टूटने की प्रक्रिया में क्या-क्या टूटा है/कोई नहीं सोचता'। यहाँ आधुनिक जीवन शैली के कारण सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों के बिखराव को व्यक्त करते हुए कवि की विश्वास, आत्मीयता, बंधुत्व और आपसी सौहार्द को बचाए-बनाए रखने की चिंता स्पष्ट उजागर है। एक ऐसे दौर में जहाँ आधुनिक कविता भूमंडलीकरण के द्वंद्व से ग्रस्त है और बाजार की चमक-दमक के बीच आम जन के वजूद की तलाश जारी है वहाँ लीक से हटकर चलने वाले कवि कुंवर नारायण की कविताएँ अपने मिथकों और मानकों के साथ आम जन को गरिमापूर्ण ढंग से लेकर चलती है। कवि जयशंकर प्रसाद के बाद इतिहास, मिथक व संस्कृति के भारतीय संदर्भ को आधुनिक जीवन दृष्टि के अनुरूप व्याख्यायित करने वाले वे आधुनिक हिंदी कविता के सबसे बड़े कवि है। उनकी 'आत्मजई' कृति में बुद्धि के महत्त्व की स्वीकृति एवं समाज की रूढ़ियों के विरुद्ध व्यक्ति की साहसिकता का प्रतीक नचिकेता आधुनिक मनुष्य के अंर्तद्वंद्व तथा उद्वेलन का प्रतीक है जो पुरातन मान्यताओं तथा रूढ़ि संस्कारों को नकारता है। उसका अपने पिता से मतभेद न केवल पुरानी और नई पीढ़ी के संघर्ष का प्रतीक है वरन उन दृष्टिकोणों का भी, जिन्हें हम आज के जीवन में पाते हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में वेदों, पुराणों व अन्य धर्म ग्रंथों से उद्धरण दिए है। अयोध्या को लेकर चल रही कलुषित राजनीति के बीच बहुत मार्मिक कविताएँ लिखी गईं लेकिन उन्होंने राम की करुणा को समकालीन समय की विडंबना के साथ जोड़कर एक नया पाठ तैयार किया। 'तुम्हारे बस की नहीं / उस अविवेक पर विजय / जिसके दस बीस नहीं / अब लाखों सिर, लाखों हाथ है/अयोध्या इस समय/ तुम्हारी अयोध्या नहीं/ योद्धाओं की लंका है/ 'मानस' तुम्हारा 'चरित' नहीं/चुनाव का डंका है।

व्यक्तित्व, संस्कृति और समाज के संबंधों को स्पष्ट करती कवि अज्ञेय की 'नदी के द्वीप' नामक कविता अत्यंत महत्वपूर्ण है। नदी जिस तरह द्वीप के उभार, कूल को गढ़ती है, उसके बाहरी एवं भीतरी रूपकारों को गढ़ती है, ठीक वैसे ही संस्कृति व्यक्तित्व की रूपरेखा, चरित्र और मूल्यबोध को गढ़ती है। अज्ञेय संस्कृति, समाज और व्यक्तित्व के जिस संबंध को

भारतीय आदर्श मानते हैं उसे उनकी 'यह दीप अकेला' कविता में भी देखा जा सकता है। कवि नागार्जुन अपनी कविताओं में संस्कृति से जुड़े प्रतीकों और मिथकों को उठा एक नई सांस्कृतिक चेतना निर्मित करते है। 1971 में पटना के बेलछी गाँव में कुर्मी भूस्वामियों द्वारा तेरह हरिजनों को जिंदा जलाए जाने के विरोध में उन्होंने 'हरिजन गाथा' लिखी। यह कविता सामाजिक विषमता, अन्याय और शोषण के विरुद्ध खुली गवाही के तौर पर थी। 'खान खोदने वाले सौ-सौ/मजदूरों के बीच पलेगा/युग की आंचों में फौलादी/सांचे सा वहीं ढलेगा'। याद कीजिए, जैसे कृष्ण को उसे उनके जन्म स्थान से दूर भेज दिया गया था वैसे ही कलुआ को भगा देने की बात कही गई है। क्योंकि उसकी जान को खतरा है जो भविष्य का नायक बनकर उभरेगा और अमानवीय ताकतों से लड़कर आम जन का उद्धार करेगा। यहाँ सीधे सीधे मिथक का प्रयोग न करके नई सांस्कृतिक चेतना की निर्मिति की गई है। यह प्रतीक भर न होकर संस्कृति की नई व्याख्या है।

आजादी से पहले नेताओं द्वारा जनता को सुखी, स्वतंत्र और आदर्श 'रामराज्य' का स्वप्न दिखाया गया था। उसमें उसकी मानवीय आकांक्षा और सांस्कृतिक विरासत का मेल था। पर वह कल्पना साकार नहीं हो सकी। आजादी से पहले रामराज्य का सपना जनता की प्रेरक शक्ति था वह आजादी के बाद जीवन का सबसे बड़ा व्यंग्य बन गया। 'रामराज्य में अबकी रावण नंगा होकर नाचा है/सूरत-सकल वही है, भैया बदला केवल ढांचा है/भारत माता के गालों पर कसकर लगा तमाचा है।' यहाँ कवि ने परोक्षत: औपनिवेशिक सत्ता के जीवित होने का संकेत दिया है। 'रामराज्य' का तत्कालीन संदर्भ पुराकथा से जोड़ने वाला प्रेरक बना है। जनता के हमदर्द की हैसियत से नागार्जुन सांस्कृतिक जीवन के इन प्रतीकों की भावशक्ति को भली प्रकार पहचानते है। राजनीतिपरक और व्यंग्यपरक कविताओं में उनकी पुराकथाओं का उपयोग करने वाली अंर्तदृष्टि को देखा जा सकता है। कवि ने अपनी अन्य कविता 'खुरदरे पैर' में विष्णु अवतार वामन कथा को आधार बनाया है। वामन अवतार में विष्णु ने तीन पग में पूरी धरती को माप लिया था। इस मिथक की तुलना नागार्जुन तीन पहियों की रिक्शा को खींचते उन पैरों से करते है, जो आजीविका कमाने के लिए घंटों के हिसाब से लगातार धरती का फासला नापते हैं। कवि की दृष्टि में इन पैरों की महत्ता वामन के पैरों से अधिक है। 'दे रहे थे गति/रबड़ विहीन ठूंठ पैडलों को/चला रहे थे/एक नहीं, दो नहीं, तीन-तीन चक्र/कर मात त्रिविकर्म वामन के/पुराने पैरों को/नाप रहे थे धरती का अनहद फासला। 'सिंदूर तिलकित भाल' कविता में कवि घर-परिवार से दूर अपनी पत्नी का सिंदूर तिलकित भाल याद करता है। कवि ने पत्नी के लिए सिंदूर तिलकित भाल का बिम्ब चुनकर कलात्मक कल्पना का ही परिचय नहीं दिया, बल्कि अपने प्रेम को भारत विशेषकर उत्तर भारत की सांस्कृतिक विशिष्टता के माध्यम से पारिभाषित भी किया। सिंदूर विवाहित स्त्री के सुहाग का प्रतीक है। यह संस्कृति की एक रूढ़ि भर नहीं है, वह संबंधों की प्रगाढ़ता का प्रतीक चिन्ह भी है। वास्तव में संस्कृतियों में बहुत से रीति-रिवाज है जो मिथक के साथ जुड़ते है। मिथकीय तर्क में किसी आदिम प्रक्रिया को सिर्फ दोहराना भर नहीं है बल्कि उसके सहारे फिर से नवीन हो जाना है।

विदेशों में अपनी जड़ों और संस्कृति से कटे हुए प्रवासी भारतीयों की मानसिक स्थिति को उजागर करती यह पंक्तियाँ अत्यंत मार्मिक है 'अमेरिका की चमक-दमक में भी/वो गिरमिटिया मजदूर/पढ़ता है दुर्गा सप्तपदी/दिन शुरू करने के पहले/इसलिए जिंदा है आदमी/कहीं भी रहता है/उसके संस्कार रखते है उसे जिंदा/सब कुछ डूब भी जाता है तो भी/संस्कार कभी नहीं डूबते' (अंजना संधीर, वर्तमान साहित्य-प्रवासी साहित्य महाविशेषांक)

नि:संदेह स्पष्ट है कि कवि अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए अपनी परंपराओं और संस्कृति से तादात्म्य स्थापित करता है और साथ ही युगानुकूल उनकी व्याख्या भी प्रस्तुत करता है। इसी कर्म में समाज के लिए जो जीवंत और सार्थक है, उन्हें परिष्कृत रूप में आकार देता है। उसे क्षय होते मूल्यों और संस्कृति की चिंता भी है तो यह आशा भी कि संस्कृति और पुरातन जीवंत परंपरा ही समाज की संरक्षक रही है और रहेगी।

❖

हिंदी विभाग, मिरांडा हाउस
24/68ए, प्रथम तल, तिलक नगर, दिल्ली-110018
मोबाइल : 9868144889, ई-मेल : kavitabhatia14@gmail.com

आदिवासी जनजीवन का 'पार' कहाँ

— डॉ. दीपक कुमार पांडेय

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विस्थापन शब्द की गूँज जिस कारण से सप्तम स्वरों में सुनाई दे रही है, वह कारण है—'विकास परियोजनाएं'। विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापित होने वालों विस्थापितों में सर्वाधिक संख्या आदिवासियों की है। 'नदीम हसनैन' के अनुसार—"विकास और विस्थापन के मामले में प्रभावित होने वालों में सबसे बड़ी संख्या स्पष्टत: जनजातियों और उन लोगों की है जो ग्रामीण क्षेत्रों के सीमान्त पर सदियों से प्राकृतिक संसाधनों पर आश्रित थे और उन्हीं पर उनकी गुजर-बसर आधारित थी। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि जनजातियों की संख्या देश की कुल संख्या की 8 प्रतिशत है, फिर भी विस्थापितों का लगभग 50 प्रतिशत हिस्सा इन्हीं का है।" यह समस्या आदिवासियों के सामने वैदिक काल से रही है। वे पहले भी विस्थापित होते रहे हैं और आज भी हो रहे हैं। उनका विस्थापन शताब्दियों से जारी है।

आदिवासी जनजीवन सदियों से गैर-आदिवासियों के लिए आकर्षण का विषय रहा है। उनके रीति-रिवाज, आचार-विचार पर निरंतर शोध होता रहा है। प्रत्येक सरकार उनके जीवन स्तर में सुधार हेतु नई-नई योजनाओं का शुभारंभ करती आई हैं। ये योजनाएँ यथार्थ के धरातल पर कम और कागजों पर अधिक मजबूत नजर आती हैं। यही कारण है कि आदिवासी हितों के उन्नयन हेतु प्रायोजित हजारों योजनाओं के बावजूद भी देश का सबसे गरीब, अशिक्षित और पिछड़ा हुआ समाज आदिवासियों का ही है। आजादी प्राप्ति के सात दशकों के बाद भी सरकारें उन्हें मुख्यधारा में शामिल नहीं कर पाई हैं। विडंबना तो यह है कि भूमंडलीकरण के लोक-लुभावन वादों के बीच उन्हें बेतरतीब ढंग से उजाड़ा भी जा रहा है। दरअसल बहुसंख्यक आदिवासी समुदाय देश के उन स्थानों पर निवास करते हैं जो कि प्राकृतिक संसाधनों से युक्त हैं। इसलिए पूंजीपति वर्गों की खनिजभक्षी भूख को शांत करने के लिए सरकारें आदिवासियों को साम-दाम-दंड-भेद इत्यादि नीतियों के द्वारा विस्थापित कर दे रही हैं। विस्थापित आदिवासी अपनी जमीनों से उजड़कर दर-ब-दर की ठोकरें खाने को अभिशप्त हैं। एक तरह उनकी संस्कृति से अपदस्थ होने को वो विवश हैं तो दूसरी तरफ आजीविका के पारंपरिक स्त्रोतों से भी विलग हो रहे हैं। ऐसे में वे या तो भूखे मरने को अभिशप्त हैं या फिर हथियार उठाने को विवश हैं। इस उपक्रम से ही आदिवासी क्षेत्रों में नक्सलवाद की समस्या नासूर बनती जा रही है जिसके मूल में प्राकृतिक संसाधनों की लूट और आदिवासी विस्थापन निहित है।

'विस्थापन' शब्द का शंखनाद हमें बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में प्रखर रूप से सुनने को मिलता है। इसका कारण यह था कि इसी समय हमारे देश में भूमंडलीकरण ने पदार्पण किया था। पूरे विश्व को एक करने की अवधारणा को प्रदर्शित करने वाला यह शब्द मूलत: आर्थिक हितों पर ही केंद्रित है। यही कारण है कि भूमंडलीकरण के साथ तीन बातें एक साथ शुरू हुईं। वे हैं-निजीकरण, विनिवेशीकरण और उदारीकरण। "निजीकरण से तात्पर्य वैयक्तिक निवेश के संबंध में राज्य की नियामकता की समाप्ति से है। व्यापार की जगह बाजार की दशाओं का नियंत्रण स्थापित हो जाता है।"[1] इस नियंत्रण के स्थापित होते ही पूंजीपति वर्गों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों की

बेहिसाब लूट प्रारम्भ हो जाती है। फलतः प्राकृतिक संसाधनों पर निवास करने वाले निवासियों के हक से उनका टकराव होना प्रारम्भ होता है और यहीं से विस्थापन की प्रक्रिया उद्‌भूत होती है। वस्तुतः 'विस्थापन' किसी भी व्यक्ति या वस्तु के अपने मूल स्थान से हटकर अन्य स्थान पर बस जाने की प्रक्रिया होती है। यह प्रक्रिया प्राकृतिक कारणों-बाढ़, सूखा, भू-स्खलन, अकाल आदि के साथ-साथ मानवीय कारणों-बेरोजगारी, भुखमरी, गरीबी, विकास परियोजनाओं आदि के कारण भी घटित होती है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विस्थापन शब्द की गूँज जिस कारण से सप्तम स्वरों में सुनाई दे रही है, वह कारण है—'विकास परियोजनाएं'। विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापित होने वालों विस्थापितों में सर्वाधिक संख्या आदिवासियों की है। 'नदीम हसनैन' के अनुसार—"विकास और विस्थापन के मामले में प्रभावित होने वालों में सबसे बड़ी संख्या स्पष्टतः जनजातियों और उन लोगों की है जो ग्रामीण क्षेत्रों के सीमान्त पर सदियों से प्राकृतिक संसाधनों पर आश्रित थे और उन्हीं पर उनकी गुजर-बसर आधारित थी। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि जनजातियों की संख्या देश की कुल संख्या की 8 प्रतिशत है, फिर भी विस्थापितों का लगभग 50 प्रतिशत हिस्सा इन्हीं का है।"[2] यह समस्या आदिवासियों के सामने वैदिक काल से रही है। वे पहले भी विस्थापित होते रहे हैं और आज भी हो रहे हैं। उनका विस्थापन शताब्दियों से जारी है। बस केवल रूप या तरीका बदल गया है। इस संदर्भ में 'रमणिका गुप्ता' लिखती हैं कि—"देश में आदिवासियों की मुख्य समस्या विस्थापन रही है। वे पहले भी खदेड़े जाते रहे हैं, आज भी खदेड़े जा रहे हैं। ये खदेड़ना सदियों से चालू है, बस केवल रूप या तरीका बदल गया है।"[3] पहले विस्थापन साम्राज्यवादी नीतियों के फलस्वरूप हो रहा था, आज विस्थापन विकासवादी नीतियों के फलस्वरूप हो रहा है।

दरअसल विकास उस स्थिति का नाम है जो व्यक्ति या समाज की वर्तमान स्थिति में अभिवृद्धि से प्राप्त होती है। इस उपक्रम में ही देश को द्रुतगति से विकसित देशों की श्रेणी में खड़ा करने के लिए राज्य एवं केंद्र की सरकारों द्वारा निरंतर विकास योजनाओं का उद्‌घाटन और क्रियान्वयन किया जाता रहा है। विकासवादी नीतियों के अंतर्गत ही जल-विद्युत एवं सिंचाई परियोजनाओं हेतु बनने वाले छोटे-बड़े बाँधों के कारण बहुसंख्यक आदिवासियों का विस्थापन लगातार जारी है। अत्यधिक सुविधाभोगी होते समाज को आज सबसे ज्यादा आवश्यकता है बिजली की। इस बिजली-आपूर्ति हेतु न केवल बड़े अपितु हजारों छोटे बाँधों का भी निर्माण किया जा रहा है जिसकी भेंट लाखों आदिवासी चढ़ रहे हैं। 'हरिराम मीणा' के शब्दों में—"केवल बाँध परियोजनाओं की वजह से भारत की करीब 50 से 70 लाख आदिवासी जनसंख्या का विस्थापन हुआ है।"[4] सन् 1975 ई. में तत्कालीन प्रधानमंत्री 'इंदिरा गाँधी' जी ने एक ऐसी ही विकास परियोजना 'राजघाट बाँध' का शिलान्यास किया था जिसके कारण बहुसंख्यक 'राउत' आदिवासियों का विस्थापन हुआ था। यह परियोजना उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश

की संयुक्त परियोजना थी। बेतवा नदी पर बनने वाले इस बाँध से आदिवासी जनजीवन में क्या परिवर्तन हुआ था! इस परिप्रेक्ष्य को ही संवेदनात्मक ढंग से 'वीरेंद्र जैन' ने अपने उपन्यास 'पार' में अभिव्यक्त किया है।

उपन्यास के प्रारंभ में ही इस बात की पुष्टि की गई है कि आदिवासी जनजीवन विकट परिस्थितियों से परिपूर्ण है। न तो उनके पास तन ढंकने को मुकम्मल कपड़े ही हैं और न ही पेट भरने को दो जून की रोटी ही है। इस विडंबना से पार पाने के लिए जब वे अपने खेरे/पाट/गाँव इत्यादि की सीमा को पार कर दूसरे गैर-आदिवासी गाँव पहुँचते हैं तो उन्हें—"ऐसे खदेड़ते हैं गाँव वाले, जैसे खेत में सियार की घुसपैठ पर उसे खदेड़ा जाता है।"[5] इस खदेड़ने के पीछे का कारण आदिवासियों के प्रति गैर-आदिवासियों का हेय नजरिया है। दरअसल, गैर-आदिवासियों द्वारा आदिवासियों को इंसान ही नहीं समझा जाता है। इस समझ के कारण उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। 'पार' उपन्यास में इस तथ्य को बेहद संवेदनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। 'राउत' आदिवासियों के साथ होने वाले ऐसे ही अमानवीय व्यवहार और गैर-आदिवासियों के हेय दृष्टिकोण को रेखांकित करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है कि गैर-आदिवासियों ने "राउत देखा कि लतियाया। जब तक राउत को यह भान होता है कि उससे गाँव वालों की नजर में आने का गुनाह हो चुका है, वह उनके पाँवों में लोटा अधमरा हो चुकता है।"[6] ऐसा इसलिए होता है क्योंकि प्राय: गैर-आदिवादियों द्वारा जंगल में रहने वाले और जंगली होने का भेद नहीं समझा जाता है जबकि दोनों में संदर्भगत और भावगत पर्याप्त भिन्नता होती है।

इस भेद को न समझने के कारण ही प्राय: आदिवासियों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। पहले तो कोई भी विकास परियोजना हो, गुजरती उनकी ही जमीन से है। दूसरे, उनका विस्थापन सतत रूप से चलता ही रहता है। तीसरा, उन्हें न तो उचित मुआवजा ही मिलता है और न ही सहज पुनर्वास ही मिलता है। चौथा, उनके क्षेत्र में ही कूड़ा-कचड़ा या मलबे का निस्तारण किया जाता है जिससे जीवन नारकीय हो जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो विकास रूपी समुद्रमंथन से निकलने वाले अमृत का पान तो प्राय: गैर-आदिवासी करते हैं किंतु उससे निकलने वाले विष का पान करने को आदिवासी ही अभिशप्त होते हैं। उपन्यास के अंतर्गत बेतवा नदी पर बनने वाले राजघाट बाँध से उद्भावित विष का पान करने के लिए किस तरह वहाँ के आदिवासी अभिशप्त हैं, इसका मार्मिक चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है कि—"मूसर खेरे में बाढ़ आ गई थी बिन बरसात, जिसमें मूसर खेरा डूब गया था। जमूसर गाँव डूब गया था। मूसर के राउत कहीं बिला गए थे। वह बाढ़ नहीं थी। राजघाट पर काम के दौरान पानी न पहुँचे इसलिए नदी को जमूसर से कुछ पहले छेंक दिया है। इसीलिए जमूसर में, मूसर में और कई गाँव खेरों में पानी जा पहुँचा था। इसीलिए डूब गए वे गाँव, वे खेरे।"[7]

इससे भयानक त्रासदी यह है कि जो गाँव और खेरे डूब गए थे, उनके निवासियों को न तो कोई मुआवजा ही मिला और न ही पुनर्वास मिला। किंतु कागजी कार्यवाही में मुआवजे और पुनर्वास की यह प्रक्रिया पूर्ण हो चुकी थी। इस झूठे दावे के खिलाफ अपना आक्रोश प्रकट करता हुआ उपन्यास का पात्र 'माते' कहता है कि—"मुआवजा क्या सिर्फ कागजों में बाँटने से बँट जाता है? यहाँ जो मुआवजे की बाट जोह रहे हैं ये झूठे हैं क्या! बेईमान हैं! कहीं अंत से आकर बस गए हैं! सरकार को मूरख बनाने! धोखे से कलदार पाने! इन्हें मुआवजा दे दिया होता तो ये यहाँ रहते ही काहे को!"[8] इस प्रकार आदिवासियों के लिए विकास योजनाएँ वरदान के स्थान पर अभिशाप ही साबित होती रही हैं। पहले योजना के क्रियान्वयन हेतु उन्हें उजाड़ा जाता है। फिर क्रियान्वयन के उपक्रम में फिर उन्हें उजाड़ा जाता है और पुन: किसी अन्य योजना के क्रियान्वयन हेतु फिर उन्हें उजाड़ा जाता है। उपन्यास के परिदृश्य से देखें तो यह चित्र स्पष्ट रूप से हमारी आँखों के समक्ष चलायमान हो जाता है। पहले 'राजघाट बाँध' बनाने के लिए आदिवासियों को उनकी जमीनों से विस्थापित किया जाता है फिर बाँध निर्माण के क्रम में पुन: उन्हें उनकी जमीनों सहित डुबाया जाता है और अंतत: बाँध टूटने पर फिर उन्हें विस्थापित किया जाता है। इतना ही नहीं अभयारण्य के नाम पर पुन: राउत आदिवासियों को उजाड़े जाने की योजना सरकार ले आती है। इस योजना पर आक्रोश और क्षोभ प्रकट

करता हुआ उपन्यास का पात्र 'माते' कहता है कि—"यहाँ लडैई में बनाएँगे अभयारण्य। जानवरों को बसाएँगे यहाँ। हमें खदेड़ेंगे।"[9] ऐसा ही आक्रोश और क्षोभ हमें 'रणेन्द्र' के उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' में भी देखने को मिलता है। उपन्यास के अंतर्गत ग्लोबल गाँव का एक बड़ा देवता है वेदांग। इस देवता की यह मंशा है कि कोयलबीघा अंचल के बॉक्साइट को निकालकर यही रिफाइन किया जाए। इसके लिए उसे कोयलबीघा अंचल के कई सौ एकड़ की जमीन चाहिए थी। फलस्वरूप कंपनी में शेयर निर्धारित होने के पश्चात 'भेड़िया अभयारण्य' की योजना अंचल में उतर आई। इस योजना से 22 असुर ग्रामों सहित कुल 37 वन-ग्रामों को उजड़ना पड़ता है। इस उजड़ने के दर्द को रूपायित करता हुआ उपन्यास का पात्र 'रूमझुम असुर' देश के प्रधानमंत्री को चिट्ठी लिखता है कि—"महोदय, शायद आपको पता हो कि हम असुर अब सिर्फ आठ-नौ हजार ही बचे हैं। हम बहुत डरे हुए हैं। हम खत्म नहीं होना चाहते। भेड़िया अभयारण्य से कीमती भेड़िए जरूर बच जाएँगे श्रीमान्। किंतु हमारी जाति नष्ट हो जाएगी। सच कहें तो हम बिना चेहरे वाले इनसान होकर जीना नहीं चाहते श्रीमान्। हमें बचा लीजिए श्रीमान्। हमारी आखिरी आस आप ही हैं।"[10]

इस प्रकार आदिवासियों का विस्थापन सतत रूप से जारी है। इस सतत विस्थापन से उनका वह सब कुछ छूटता जा रहा है जिसके बल पर सदियों से वो जिंदा थे। उनकी सामूहिकता, सहयोगिता, संस्कृति चिन्ह आदि सब कुछ धूमिल होते जा रहे हैं। अस्तित्व और अस्मिता का घनघोर संकट उन पर मंडरा रहा है। आदिवासी चिंतक एवं लेखिका 'निर्मला पुतुल' के शब्दों में—"विस्थापन से हमारे प्राकृतिक वातावरण, सामाजिक संरचना तथा धार्मिक आस्था में बिखराव आता गया। इस बिखराव को हम झेल नहीं पाए और जीवित रहने के लिए हमें अपनी दुनिया से पलायन करना पड़ा। जीवित रहने के लिए हमारा संघर्ष इतना कठिन हो गया कि हमें अपनी भाषा, धर्म एवं सामाजिक संस्कार से समझौता करना पड़ा। आज हम हरेक कदम पर अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहे हैं।"[11] और ऐसा हो रहा है देश को द्रुतगति से विकास पथ पर अग्रसित करने की अंधाधुंध होड़ में। जिसके गुबार-बवंडर में यह भी नहीं देखा जा रहा है कि जिस विकास योजना को हम क्रियान्वित कर रहे हैं वो लाभदायक या प्रासंगिक है भी या नहीं। इस विवेकहीनता पर ही खेद प्रकट करता हुआ उपन्यास का पात्र 'रामदुलारे' कहता है कि—"आखिर ऐसी योजनाओं से लाभ क्या, जो सदियों में पूरी हों! और जब पूरी हों तब हमारी जरूरतें इतनी भी पूरी न कर सकें कि हम एक दशक भी चौन से रह पाएँ।"12 आज आवश्यकता इस बात की है कि हम उपन्यास में निहित इस स्वर को सुनें और अपने देश के विकास में इस मंतव्य को आत्मसात करते हुए आगे बढ़ें। ऐसा करने से न केवल श्रम-संसाधनों का उचित उपयोग सुनिश्चित हो सकेगा अपितु इस देश का मूलवासी भी अस्तित्व और अस्मिता के संकट से मुक्त हो जाएगा।

संदर्भ :

1. सिंह, शिवबहाल (2010) विकास का समाजशास्त्र, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृष्ठ संख्या 170।
2. हसनैन, नदीम (2016) जनजातीय भारत, जवाहर पब्लिशर्स ऐंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 206।
3. गुप्ता, रमणिका (संपादक) (2008) आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 10।
4. मीणा, हरिराम, विस्थापन की समस्या। अरविंदाक्षन, ए. (संपा.) बहुवचन, जुलाई-सितंबर 2011, अंक : 30, पृष्ठ संख्या 32।
5. जैन, वीरेंद्र (2012) पार. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 30।
6. जैन, वीरेंद्र (2012) पार. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 30।
7. जैन, वीरेंद्र (2012) पार. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 35।
8. जैन, वीरेंद्र (2012) पार. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 98।
9. जैन, वीरेंद्र (2012) पार. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 97।
10. रणेन्द्र (2013) ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 84।
11. पुतुल, निर्मला, विस्थापन और आदिवासी महिला शर्मा, विशाला कोल्हारे, दत्ता (संपा.) (2016), आदिवासी साहित्य एवं संस्कृति, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 198।
12. जैन, वीरेंद्र (2012) पार. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 134।

❖

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
पंजाब केंद्रीय विश्वविद्यालय, बठिण्डा
घुद्दा कैम्पस-151401 (पंजाब) मोबाइल : 9452695687
ई-मेल : deepakpandeypcb29@gmail.com

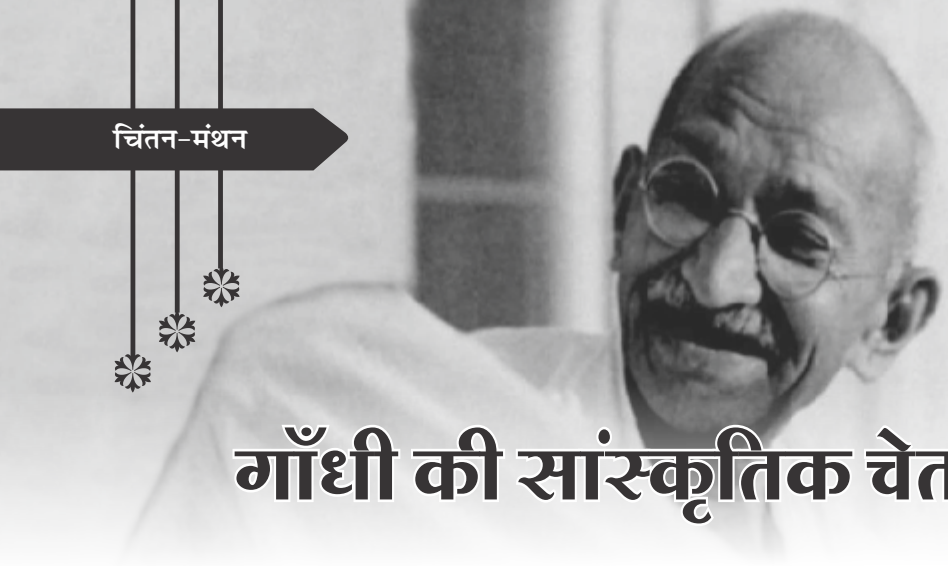

गाँधी की सांस्कृतिक चेतना एवं राष्ट्रवाद

— राजीव गुप्ता

गाँधी ने भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अलग अलग प्रकार से भारतीय विविधताओं को अपना मजबूत हथियार बनाकर अंग्रेजों के खिलाफ सफल उपयोग किया। यहाँ पर यह जानना दिलचस्प है कि दक्षिण अफ्रीका की विशिष्ट परिस्थितियों के कारण विभिन्न धर्मों, समुदायों और वर्गों के लोग गाँधी द्वारा चलाए जा रहे आंदोलनों में एक जुट खड़े हुए। गाँधी आजीवन जिस हिंदू मुस्लिम एकता की आवश्यकता और संभावना को मानते रहे, उसका आधार निश्चय ही दक्षिण अफ्रीका के उन आंदोलनों में था जिनमें मुसलमान व्यापारी अधिक सक्रिय थे। यहाँ हमें इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि वर्ष 1909 में गाँधी ने हिंद स्वराज में लिखा कि भारत का वास्तविक शत्रु अंग्रेजी राज नहीं है अपितु समग्र आधुनिक सभ्यता है।

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है—यह एक सत्य है, परंतु जब हम पश्चिमी यूरोप से लेकर जापान तक विश्व के अन्य देशों को देखते हैं तो पाते हैं कि भारत पूरे गोलार्ध में सबसे प्राचीन एवं टिकाऊ लोकतंत्र है, यह एक दूसरा सत्य है। तीसरी बात यह है कि जब हम संसार की प्राचीन सभ्यताओं जैसे चायनीज सिविलाइजेसन्स, मैसोपोटामियन, बेबीलोनियन, ग्रीस, इजिप्ट, इंका, माया, एस्ट्रेक, रोमन एंपायर को देखते हैं तो पाते हैं कि संसार की सबसे प्राचीन सभ्यता भारत की सभ्यता है। चौथी बात यह है कि विस्तारवादी नीतियों का पालन करने वाले किसी भी देश की तरह भारत ने कभी भी किसी अन्य देश पर आक्रमण कर उसे अपने देश में नहीं मिलाया। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भारतीय संस्कृति की प्रकृति सर्व समन्वयवादी है अर्थात् जो भारत में आया उसे भारतीय संस्कृति ने अपने अंदर समाहित कर लिया। पारसी, अपनी जमीन से खत्म हो गए, बचे हैं तो सिर्फ भारत में। जब इजराइल बना तो ज्यूज्स ने जब अपना इतिहास लिखा तो उसमें लिखा कि मात्र भारत ही ऐसा देश था जहाँ पर उनके साथ किसी भी प्रकार का अत्याचार और भेदभाव नहीं किया गया। आज संसार की (हालांकि उसमें विवाद है) सबसे पुरानी चर्च केरल के मालाबार तट पर स्थित है। संभवत: इस्लाम में 72 फिरके हैं और भारत में लगभग सभी 72 फिरके हैं। 'नेशन' के संबंध में पश्चिमी देशों और भारत के द्वारा दी गई परिभाषा में मौलिक अंतर है। पश्चिमी देश 'नेशन' को राजनीतिक और भौगोलिक दृष्टिकोण से परिभाषित करते हैं जबकि भारत के 'नेशन' मात्र जमीन का एक टुकड़ा नहीं है अपितु यह एक जीवंत चेतना है। एक उदाहरण से समझने का प्रयास करते हैं, भारत के किसी भी हिस्से में खड़े होकर यदि भारत की संस्कृति के प्रतीक यदि कोई वैष्णव भक्त भगवान राम और कृष्ण का नाम लेता है तो वह उत्तर में अयोध्या से लेकर सुदूर दक्षिण में रामेश्वरम् तक और मथुरा से लेकर पश्चिम में गुजरात के द्वारकाधीश तक जुड़ जाता है। यदि कोई शैव भक्त भगवान शिव का नाम लेता है तो वह भारत के अनेक राज्यों में स्थित प्रसिद्ध बारह ज्योतिर्लिंगों से जुड़ जाता है, यदि शक्ति की उपासना करने वाला कोई भक्त माता का नाम लेता है तो वह भी भारत के उत्तर में वैष्णव देवी से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी और पूरब में कामाख्या देवी समेत अनेक राज्यों में स्थित प्रसिद्ध कुल बावन में से चालीस से अधिक शक्तिपीठों से जुड़ जाता है। भारतीय मान्यता में गुरु वृहस्पति की गति पर नासिक, उज्जैन,

हरिद्वार और प्रयाग में लगने वाले चार महाकुंभों में करोड़ों-करोड़ों लोग अपनी-अपनी आस्था की डुबकी लगाने के लिए जाते हैं।

भारत की इसी सांस्कृतिक चेतना को गाँधी अपनी पुस्तक हिंद स्वराज में परिभाषित करते हुए लिखते हैं, "जो सभ्यता हिंदुस्तान ने दिखाई है, उस सभ्यता को पाने में दुनिया में कोई नहीं पहुँच सकता। जो बीज हमारे पुरखों ने बोए हैं, उनकी बराबरी कर सके ऐसी कोई चीज देखने में नहीं आई। रोम मिट्टी में मिल गया, ग्रीस का सिर्फ नाम ही रह गया, मिस्र की बादशाही चली गई, जापान पश्चिम के शिकंजे में फँस गया और चीन का कुछ भी नहीं कहा जा सकता। लेकिन गिरा-टूटा जैसा भी हो, हिंदुस्तान आज भी अपनी बुनियाद में मजबूत है। जैसा रोम और ग्रीस गिर चुके हैं, उनकी किताबों से यूरोप के लोग सीखते हैं। उनकी गलतियाँ वे नहीं करेंगे ऐसा गुमान रखते हैं। ऐसी उनकी कंगाल हालत है जबकि हिंदुस्तान अचल है, अडिग है। यही उसका भूषण है। हिंदुस्तान पर आरोप लगाया जाता है कि वह ऐसा जंगली, ऐसा अज्ञान है कि उससे जीवन में कुछ फेरबदल कराए ही नहीं जा सकते। यह आरोप हमारा गुण है, दोष नहीं। अनुभव से जो हमें ठीक लगा है, उसे हम क्यों बदलेंगे? बहुत से अकल देने वाले आते जाते रहते हैं, पर हिंदुस्तान अडिग रहता है। यह उसकी खूबी है, यह उसका लंगर है।"

मध्यप्रदेश के विदिशा बेसनगर में स्थित एक शिलालेख पर लिखा है, 'मैं हेलोडोरस ग्रीक का रहने वाला हूँ, भारत में आकर परम भागवत वैष्णव हो गया'। उस समय जो शक आए जिसमें देववर्मन है, इत्यादि सब शैव हो गए। कनिष्क और मिहिरकुल बहुत बर्बर एवं क्रूर था, वह बौद्ध हो गया, कैडफिसस बौद्ध हो गया तो विमकैडफिसस तो शैव हो गया। ईसा पूर्व 300 से लेकर 7वीं शताब्दी तक विजेता के रूप में ग्रीक यवन, शक, हूण, कुषाण लोग भारत में आए, ये बर्बर एवं शक्तिशाली थे, भारत का बहुत बड़ा भाग इन्होने जीत लिया था और मगध एवं उज्जैन तक पहुँच गए थे, ये सब विजयी लोग थे परंतु भारत में ऐसी कौन सी बात थी जिसके कारण ये लोग भारत में विलीन हो गए और आज न कोई शक, हूण, कुषाण है। संसार के लिए यह एक अद्‌भुत आश्चर्य था कि भारतीय संस्कृति का एक हारा हुआ समाज एक विजेता समाज को अपने अंदर पचा गया। कौन सी ऐसी बात थी जो हारे हुए भारत के समाज को जागृत किए हुए थी और इस राष्ट्र को मरने नहीं दे रही थी? इसका उत्तर है भारत के चारों दिशाओं में नानक, कबीर, रैदास, चैतन्य, ज्ञानेश्वर, तुकाराम, नामदेव, शंकरदेव, दामोदरदेव, वश्वेश्वर, कंबन इत्यादि अनगिनत लोग थे जो बिजली की चमक की तरह भारत को जागृत रख रहे थे और ये लोग राजनीतिक नहीं थे। पता नहीं इन्हें कौन संचालित करता था क्योंकि राजा रजवाडे तो समाप्त जैसी स्थिति में थे, मंदिर तो ध्वस्त थे, शासन प्रशासन हिंदुओं के हाथ में नहीं लेकिन भारत का जागरण जारी था। यह भारत का अध्यात्म था। धर्म और ईश्वर के प्रति निष्ठायुक्त श्रद्धा ही आध्यात्मिकता कहलाती है और एक बार स्वामी विवेकानंद ने कहा था, भारतीय राष्ट्र कभी मर नहीं सकता है और उस समय तक अमर रहेगा जब तक उसके लोग आध्यात्मिकता को नहीं छोड़ देते हैं।

भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान गाँधी ने भारत की विविधता को ध्यान में रखकर 'सत्य और अहिंसा' नामक अचूक एवं प्रभावी हथियार से अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर बाध्य कर दिया। गाँधी ने अपने 'सत्य और अहिंसा' नामक हथियार से अविश्वसनीय एवं कल्पना से परे 'नमक' जैसी साधारण सी सर्वग्राही खाद्य वस्तु को केंद्रित कर अंग्रेजों के विरुद्ध आंदोलन खड़ा कर दिया और अपने रचनात्मक कार्यक्रम 'चरखा' से भारत की करोड़ों जनता को भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ दिया। चरखे के संबंध में गाँधी कहते थे कि सूत कातकर खादी पहन पहनाकर स्वदेशी धर्म पूरा पालन हुआ मान लेते हैं, वे बड़े मोह में डूबे हुए हैं। खादी सामाजिक स्वदेशी की प्रथम सीढ़ी है, वह स्वदेशी धर्म की आखिरी हद नहीं है। ऐसे खादीधारी देखे गए हैं जो और सब चीजें परदेशी खरीदते हैं। वे स्वदेशी धर्म का पालन नहीं करते। वे तो सिर्फ चालू बहाव में बह रहे हैं। स्वदेशी व्रत का पालन करने वाला हमेशा अपने आसपास निरीक्षण करेगा और जहाँ जहाँ पड़ोसियों की सेवा की जा सके, यानी जहाँ जहाँ उनके हाथ का तैयार किया हुआ जरूरत का माल होगा, वहाँ दूसरा छोड़कर उसे लेगा। फिर भले ही स्वदेशी चीज पहले पहल महँगी और कम दरजे की हो। व्रतधारी उसको सुधारने की कोशिश करेगा। स्वदेशी खराब है इसलिए कायर बनकर वह परदेशी का इस्तेमाल करने नहीं लग जाएगा। लेकिन स्वदेशी धर्म जानने वाला अपने कुएँ में डूब नहीं जाएगा। जो चीज

स्वदेश में नहीं बनती हो या बड़ी तकलीफ से बन सकती हो, वह परदेश के द्वेष के कारण अपने देश में बनाने लग जाए तो उसमें स्वदेशी धर्म नहीं है। स्वदेशी धर्म पालने वाला परदेशी का द्वेष कभी नहीं करेगा। इसलिए पूर्ण स्वदेशी में किसी का द्वेष नहीं है। वह संकुचित धर्म नहीं है। वह प्रेम में से अहिंसा में से निकला हुआ सुंदर धर्म है। गाँधी आगे कहते हैं, "मैं जितनी बार चरखे पर सूत निकालता हूँ उतनी ही बार भारत के गरीबों का विचार करता हूँ। भूख की पीड़ा से व्यथित और पेट भरने के सिवा और कोई इच्छा न रखने वाले मनुष्य के लिए उसका पेट ही ईश्वर है। उसे जो रोटी देता है वही उसका मालिक है। उसके द्वारा वह ईश्वर के भी दर्शन कर सकता है। ऐसे लोगों को, जिनके हाथ पैर सही सलामत है, दान देना अपना और उनका दोनों का पतन करना है। उन्हें तो किसी न किसी तरह के धंधे की जरूरत है और वह धंधा जो करोड़ों लोगों को काम देगा, केवल हाथ कताई का ही हो सकता है। इसलिए मैंने कताई को प्रायश्चित या यज्ञ बताया है। और चूँकि मैं मानता हूँ कि जहाँ गरीबों के लिए शुद्ध और सक्रिय प्रेम है वहाँ ईश्वर भी है, इसलिए चरखे पर मैं जो सूत निकालता हूँ उसके एक एक धागे में मुझे ईश्वर दिखाई देता है। मेरा पक्का विश्वास है हाथ कताई और हाथ बनाई के पुनरुज्जीवन से भारत के आर्थिक और नैतिक पुनरुद्धार में सबसे बड़ी मदद मिलेगी। करोड़ों आदमियों को खेती की आय में वृद्धि करने के लिए कोई सादा उद्योग चाहिए। बरसों पहले वह गृह उद्योग कताई था और करोड़ों को भूखों मरने से बचाना हो तो उन्हें इस योग्य बना पड़ेगा कि वे अपने घरों में फिर से कताई जारी कर सकें और हर गाँव को अपना ही बुनकर फिर से मिल जाए। जब मैं सोचता हूँ कि यथार्थ किए जाने वाले शरीर श्रम का सबसे अच्छा और सबको स्वीकार्य रूप क्या होगा, तो मुझे कताई के सिवा और कुछ नहीं सूझता। मैं इससे ज्यादा उदात्त और ज्यादा राष्ट्रीय किसी दूसरी चीज की कल्पना नहीं कर सकता कि प्रतिदिन एक घंटा हम सब कोई ऐसा परिश्रम करें, जो गरीबों को करना ही पड़ता है और इस तरह उनके साथ और उनके द्वारा सारी मानव जाति के साथ अपनी एकता साधें। भगवान की इससे अच्छी पूजा की कल्पना नहीं कर सकता कि उसके नाम पर मैं गरीबों के लिए गरीबों की ही तरह परिश्रम करूँ। चरखा दुनिया के धन का अधिक समानतापूर्ण बँटवारा सिद्ध करता है। मैं.... चरखे के लिए इस सम्मान का दावा करता हूँ कि वह हमारी गरीबी की समस्या को लगभग बिना कुछ खर्च किए और बिना किसी दिखावे के अत्यंत सरल और स्वाभाविक ढंग से हल कर सकता है। इसलिए चरखा न केवल निरुपयोगी नहीं है, बल्कि वह एक ऐसी आवश्यक चीज है जो हर एक घर में होनी ही चाहिए। वह राष्ट्र की समृद्धि का और इसलिए उसकी आजादी का चिह्न है। चरखा व्यापारिक युद्ध की नहीं, व्यापारिक शांति की निशानी है। उसका संदेश संसार के राष्ट्रों के लिए दुर्भाव का नहीं, परंतु सद्भाव का और स्वावलंबन का है।

गाँधी ने भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अलग अलग प्रकार से भारतीय विविधताओं को अपना मजबूत हथियार बनाकर अंग्रेजों के खिलाफ सफल उपयोग किया। यहाँ पर यह जानना दिलचस्प है कि दक्षिण अफ्रीका की विशिष्ट परिस्थितियों के कारण विभिन्न धर्मों, समुदायों और वर्गों के लोग गाँधी द्वारा चलाए जा रहे आंदोलनों में एक जुट खड़े हुए। गाँधी आजीवन जिस हिंदू मुस्लिम एकता की आवश्यकता और संभावना को मानते रहे, उसका आधार निश्चय ही दक्षिण अफ्रीका के उन आंदोलनों में था जिनमें मुसलमान व्यापारी अधिक सक्रिय थे। यहाँ हमें इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि वर्ष 1909 में गाँधी ने हिंद स्वराज में लिखा कि भारत का वास्तविक शत्रु अंग्रेजी राज नहीं है अपितु समग्र आधुनिक सभ्यता है। गाँधी का मानना था कि केवल राजनीतिक स्वराज पा लेने का अर्थ होगा 'अंग्रेजों के बिना अंग्रेजी राज'। उनका मानना था कि सांप्रदायिकता तो अंग्रेजों की विनाशकारी नीतियों का परिणाम है और यह 'आधुनिक' प्रक्रिया की उपज हैं देश की बढ़ती हुई आर्थिक, राजनीतिक और प्रशासनिक एकता। 19वीं सदी के अंत तक राष्ट्रवाद के साथ साथ संप्रदायवाद ने भी अपना सिर उठाया। कालांतर में यही संप्रदायवाद भारतीय जनता और राष्ट्रीय आंदोलन की एकता के लिए सबसे बड़ा खतरा बना। हमें नहीं भूलना चाहिए कि संप्रदायवाद एक विचारधारा है और सांप्रदायिक दंगे इस विचारधारा के अनेक परिणामों में से एक परिणाम है। इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि भारत में हिंदू, मुसलमान, सिख और ईसाई समेत सब अलग अलग और विशिष्ट समुदाय हैं। किसी धर्म के मानने वालों के धार्मिक

हित ही नहीं बल्कि उनके हित भी समान होते हैं। गाँधी ने भारत राष्ट्र की ऐसी छवि प्रस्तुत किया जिसका समर्थन दादाभाई नौरोजी और गोपालकृष्ण गोखले भी करते थे। गाँधी का मानना था कि राष्ट्रीयता धर्म का पर्याय नहीं है। इसलिए हिंदुओं, मुसलमानों, पारसियों और ईसाइयों को मिलकर रहना होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गाँधी ने भारतीय सांस्कृतिक विरासत की एकता के विभिन्न प्रतिमानों को केंद्र में रखकर अंग्रेजों के खिलाफ भारत की जनता को भारतीय स्वतंत्रता से जोड़ दिया और उसके कारण भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की प्रकृति राष्ट्रवादी हो गई जो कि पश्चिम देशों के द्वारा दी गई राष्ट्रवाद की परिभाषा से बिल्कुल भिन्न थी। हालांकि राष्ट्रवाद एक ऐसी अवधारणा है जो एक राज्य में रहने वाले लोगों के मध्य एकता स्थापित करती है। इस प्रकार की किसी भी अवधारणा का अर्थ उसकी विशेष राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों में ही समझा जा सकता है। बेनेडिक्ट एंडरसन के अनुसार राष्ट्र और राष्ट्रवाद संबंधी प्रश्नों पर अनेक विचारक एक दूसरे की ओर पीठ करके अलग अलग दिशाओं में अमूर्त सिद्धांत खोजते हैं बजाय इसके कि एक दूसरे के साथ मिलकर इस समस्या को समझें। सबसे आश्चर्य की बात यह है कि जो विद्वान राष्ट्रवाद की ऐतिहासिक वैधता, यथार्थता और राजनीतिक औचित्य को पूरी तरह स्वीकार करते हैं, वे भी इसे आविष्कृत या निर्मित परंपरा मानते हैं। पारंपारिक राष्ट्रवादी धारणा में राष्ट्रवाद की भूमिका को 'जगाने वाला' माना जाता है अर्थात् राष्ट्रवाद ने राष्ट्रों को उनकी गहरी नींद से झकझोर कर जगा दिया। फ्रांसीसी विद्वान अर्नेस्ट रेनान ने 1882 में राष्ट्र को परिभाषित किया कि राष्ट्र मनुष्यों का ऐसा समूह है जो अपनी इच्छा, चेतना और सामूहिक स्मृति के कारण इकट्ठा हुए हैं। रेनान के द्वारा दी गई राष्ट्र की परिभाषा के अंतर्गत कई राष्ट्र और अराष्ट्र (क्लब, चोरों का दल, छात्रावास या विश्वविद्यालय में रहने वाले छात्र) भी आ जाते हैं। वर्ष 1912 में जोसेफ स्टालिन ने रेनान के द्वारा दी गई राष्ट्र की परिभाषा को परिष्कृत करते हुए कहा कि राष्ट्र ऐसा मानव समूह है जो सांझा भू भाग पर रहता हो, जिसकी भाषा, आर्थिक जीवन और संस्कृति में समानता हो। यहीं पर वर्ष 1983 में अर्नेस्ट गेलनर हमें बताते हैं कि राष्ट्रों की सबसे बेहतर समझ 'राष्ट्रवादी भावना' से पाई जा सकती है। आमतौर पर यह माना जाता है कि राष्ट्र से राष्ट्रवाद पैदा होता है, जबकि सच्चाई यह है कि राष्ट्रों का निर्माण राष्ट्रवाद के आधार पर होता है। अर्थात् राष्ट्र, राष्ट्रवाद की विचारधारा से निर्मित होते हैं। यहाँ यह बता पाना बहुत ही कठिन कार्य है कि पहले राष्ट्र आया या राष्ट्रवाद आया। राष्ट्र और राष्ट्रवाद का संबंध बहुत कुछ मुर्गी और अंडे के बीच के संबंध जैसा है। इस तरह राष्ट्र की परिभाषा तीनों कारकों—इच्छा (रेनान), संस्कृति (स्टालिन) और विचारधारा (गेलनर) को मिला देने से पूरी हो जाती है। इसे हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि छोटे छोटे समुदायों की एक बड़ी संख्या बड़े समुदाय की एक छोटी संख्या में तब्दील होना शुरू हो गई, अर्थात् राष्ट्रवाद के अगुआ सिद्धांतकार बेनेडिक्ट एंडरसन के अनुसार राष्ट्र एक 'परिकल्पित समुदाय' है। भारतीय राष्ट्रवाद प्रजातीय या धार्मिक की अपेक्षा क्षेत्रीयता के आधार पर था। अर्थात् जो कोई भी भारत की भूमि पर रहता था, उसे राष्ट्रीय समुदाय का सदस्य माना गया। स्टालिन की राष्ट्रवाद की परिभाषा (समान संस्कृति और समान भाषा) के उलट यहाँ पर न तो कोई समान संस्कृति थी और न ही कोई समान भाषा थी।

भारतीय संदर्भ यदि हम राष्ट्रवाद को समझने का प्रयास करें तो पाएँगे कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति इस मौलिक बात को जानता है कि सारा सामाज एक है। भारतीय समाज विभाजन को नहीं मानता है। मैं और वे की जगह ये 'हम' की बात करता है। भारत की कोई भी प्रार्थना एकवचनीय नहीं है अपितु यह बहुवचनीय है। 'सर्वे भवंतु सुखिनः' और 'वसुधैव कुटुम्बकम'. ..यह भारत की मौलिक बात है, यह विभाजनकारी नहीं है अपितु यह सर्वग्राही है। भारत में कोई यह नहीं कहता है कि जो इस पंथ को नहीं मानेगा, वह नरक में जाएगा और जो मानेगा वह स्वर्ग में जाएगा अपितु भारतीय मूल का प्रत्येक मत पंथ यह मानता है कि अपने अपने कर्मों के आधार पर सब स्वर्ग में ही जाएँगे। 'एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति' यही एक पूर्ण सत्य है जिसे ऋग्वैदिक काल के किसी ऋषि ने लिख दिया और मात्र इस एक वाक्य ने भारतीय संस्कृति को चिर चिरंतर बनाकर इसे स्वीकारोक्ति की पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। विष्णु पुराण में उल्लेखित है, 'वह भारतभूमि धन्य है जिसकी प्रशंसा के गीत देवता गाते हैं। यह भूमि स्वर्ग और अपवर्ग के समान बनी है, जिस पर देवता लोग

भी मनुष्य के रूप में जन्म लेते हैं'। प्रो. हुमायूँ कबीर कहते हैं कि भारतीय संस्कृति की कहानी, एकता, समन्वय, समाधानों एवं प्राचीन परंपराओं के पूर्ण संयोग की उन्नति की कहानी है। भारत की परंपरागत संस्थाएँ जैसे धर्म, महाकाव्य, साहित्य, दर्शन, संस्कार, रीति रिवाज आज भी कुछ परिवर्तन के साथ विद्यमान हैं। भारत की इतनी विविधताओं के बाद भी समष्टि से व्यष्टि का मौलिक चिंतन ही भारतीय एकता का मूल सिद्धांत है जिसे 'विविधता में एकता' के रूप में परिभाषित किया जाता है। विश्व में भारत भाषाई विविधता वाला पहला देश है और भाषाई विविधता इतनी अधिक है कि एक बार चर्चिल ने भारत को जातियों और भाषाओं का अजायबघर तक कह दिया था। सर हर्बर्ट रिजले के अनुसार, 'भारत में दर्शक को भौतिक और सामाजिक क्षेत्रों में भाषा, आचार और धर्म में जो विविधता दिखाई देती है, उसकी तह में कश्मीर से कन्याकुमारी तक एक आंतरिक एकता है। यह वह एकता है जो रक्त, वर्ण, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा, आचार विचार, वेशभूषा आदि भेदभावों का प्रतिरोध कर भारत को सर्वश्रेष्ठ और उन्नत राष्ट्र बनाती है'। ध्यान देने योग्य बात है कि भारत की संस्कृति समंवयवादी है और 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर अभी तक भारत से उसका एक जिला तक अलग नहीं हुआ है। अत: भारत के राष्ट्र की कल्पना को समझने के लिए भारत के दर्शन को समझना आवश्यक है। संक्षेप में, गाँधी हमेशा भारतीय चिंतन को तत्कालीन परिस्थिति एवं आवश्यकतानुसार उसे अपने शब्दों में कहकर उसकी व्याख्या करते थे जिसे भारतीय जनमानस बहुत ही सहजता से उसका अनुपालन करता था परिणामत: राष्ट्रवाद की भावना का विकास हुआ। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारत के राष्ट्रवाद की परिकल्पना पश्चिम के देशों से बहुत भिन्न है।

❖

शोधार्थी (इतिहास)
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल, मध्यप्रदेश
मोबाईल : 09811393406

रचनाकारों से अनुरोध

- कृपया अपनी मौलिक और अप्रकाशित रचना ही भेजें।
- कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप करवाकर भेजें। ई-मेल द्वारा प्रेषित रचना यूनिकोड में टंकित करें या रचना के साथ टंकित फॉन्ट अवश्य भेजें।
- कृपया लेख, कहानी एक से अधिक और कविता आदि तीन से अधिक न भेजें अन्यथा निर्णय नहीं लिया जा सकेगा।
- रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हो। अधिकतम शब्द-सीमा 3000।
- रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन-परिचय भी प्रेषित करें।
- रचना के अंत में अपना पूरा नाम, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।
- रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियाँ भी भेज सकते हैं।
- यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं, वर्तनी को कृपया भली-भाँति जाँच लें।
- यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।
- रचनाएँ किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएँगी। अत: प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।
- स्वीकृत रचनाएँ यथासमय प्रकाशित की जाएँगी।
- आप अपने सुझाव या प्रतिक्रिया कृपया pohindi.iccr@nic.in पर प्रेषित कर सकते हैं।

पारसी रंगमंच की अभिनेत्रियाँ

— डॉ. आशा

पारसी नाटक कंपनियों की अभिनेत्रियों के लिए नृत्य और गायन में पारंगत होना अपरिहार्य था। इसी के चलते मुख्य रूप से उस समय नाचने-गाने का पेशा करने वाली महिलाओं (वेश्याओं को भी) को अभिनेत्री के रूप में नियुक्त किया जाता था। नाटक देखने वाले तत्कालीन समय के अधिकांश दर्शक इन अभिनेत्रियों को उसी रूप में देखना चाहते थे जैसी कि वे वास्तविक जीवन में थीं। इसीलिए सीता-सावित्री तक की भूमिका में भी लटक-मटक दिखलाना स्वाभाविक चलन हो गया था। पारसी रंगमंच अपनी संरचना में ही अतिरंजित था। अभिनेत्रियों को भी इसी के अनुरूप कार्य करना पड़ता था। हालाँकि बाद में आने वाली कुछ अभिनेत्रियों ने इस अतिरंजना को तोड़ते हुए स्वाभाविक और संवेदनशील अभिनय की शुरुआत की।

लगभग एक सौ पचहत्तर वर्षों की दीर्घ अवधि तक भारत के विभिन्न शहरों-कस्बों की जनता पर छाये रहने वाले पारसी रंगमंच को असाहित्यिक और असभ्य कहते हुए उसका सही मूल्यांकन न करने की एक पूर्वाग्रह पूर्ण धारणा लम्बे समय तक हिंदी रंगमंच में चली। विशुद्ध रूप से मनोरंजन प्रधान और अधिकाधिक पैसा कमाने की प्रवृत्ति होने के बावजूद पारसी रंगमंच के ऐतिहासिक महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। इसीलिए डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, डॉ. सोमनाथ गुप्त जैसे विद्वानों ने गहन शोध करते हुए हिंदी रंगमंच की विकास-यात्रा में पारसी रंगमंच के महत्वपूर्ण स्थान को अपनी पुस्तकों के माध्यम से रेखांकित करने की कोशिश की। इनके साथ डॉ. अज्ञात, डॉ. बलवंत गार्गी, डॉ. दशरथ ओझा, डॉ. चंदूलाल दुबे जैसे रंग-चिंतकों ने भी इस दिशा में काम किया। पं. राधेश्याम कथावाचक, नारायण प्रसाद बेताब, आगा हश्र कश्मीरी जैसे नाटककारों, मास्टर फिदा हुसैन, अमृत केशव नायक, जयप्रकाश सुंदरी जैसे अभिनेताओं पर भी कुछ पुस्तकें सामने आयीं। इस सीमित सामग्री में पारसी रंगमंच में काम करने वाली अभिनेत्रियों के विषय में बहुत कम चर्चा देखने को मिलती है।

वस्तुतः हिंदी प्रदेश के अधिकांश लोक-नाट्यों के समान पारसी रंगमंच में भी शुरुआत से लेकर कई वर्षों तक स्त्री चरित्रों का अभिनय पुरुष कलाकार ही किया करते थे जिनमें बाल गंधर्व से लेकर, मास्टर फिदा हुसैन, जय सुंदरी जैसे कलाकारों ने काफी ख्याति अर्जित की थी। कहा जाता है कि उस समय के संभ्रांत परिवारों की स्त्रियाँ जय सुंदरी जैसे कलाकारों से स्त्रियोचित कुशल भाव-भंगिमाओं, आचरण-व्यवहार का प्रशिक्षण भी लिया करती थीं। "आरंभ में पारसी जनता रंगमंच पर स्त्रियों के अभिनय की घोर विरोधी थी। कैखुशरू कावरा जी ने स्त्री-जाति की स्वतंत्रता का स्वर ऊँचा करने पर भी, अभिनेत्रियों को रंगमंच पर लाने का विरोध किया था और इस संबंध में उन दिनों 'रास्त-गोफ्तार' आदि पत्रों में इस विषय पर पर्याप्त विवाद चला था।"[1] पारसी रंगमंच पर स्त्रियों को लाने का सबसे पहला प्रयास दादी भाई पटेल ने किया था। वे दो मुसलमान महिलाओं को हैदराबाद से लाये थे। पारसी थिएटर के विशिष्ट जानकार श्री वीरचंद धरमसी, सत्यदेव त्रिपाठी को दिए गए एक साक्षात्कार में बताते हैं कि 1873 में पारसी थिएटर के दादी भाई पटेल पहली बार मुंबई से बाहर हैदराबाद में अपनी कंपनी का टूर लेकर गए। इस टूर से आते समय दादी पटेल चार गाने वाली अभिनेत्रियों को भी साथ लेकर आए और उन्हें मंच

पर अभिनेत्रियों के रूप में उतारा भी। पहली बार स्त्रियों को मंच पर उतारने के इस निर्णय का काफी असर हुआ। उपरोक्त साक्षात्कार में आगे धरमसी बताते हैं कि "घोषणा हुई कि चार बेगमें मंच पर उतरेंगी। दो उतरीं भी-सब्ज परी व लाल परी की भूमिकाओं में। इनके शोज कैसे रहे, क्या फर्क पड़ा...आदि की नाट्यचर्चा से अधिक इसकी सामाजिक-चर्चाएँ गर्म हुईं. इन बेगमों के आने को लेकर 'विक्टोरिया' की बुनियादी समिति के तीन सदस्य—फरामजी दलाल, कावसजी कोहिदारु एवं फरामजी मोदी ने कंपनी छोड़ दी।"[2] दादी भाई पटेल द्वारा लाई गयीं इन महिलाओं में से एक लतीफा बेगम नृत्य में भी पारंगत थी। अपने नृत्य के बल पर वह खासी चर्चित हो गयी थी। एक दिन दर्शकों में से ही कोई एक अमीरसज्जन इन्हें अचानक अपने घर ले गया।

स्त्रियों के मंच पर उतरने की पहली कोशिश को लेकर हुई उपरोक्त प्रतिक्रिया ने निश्चित रूप से इस पहल को ठेस पहुँचाई किंतु उसी समय पारसी थिएटर में कुछ ऐसे लोग भी थे जो कलात्मक सोच रखते थे और ये मानते थे कि स्त्री-चरित्रों की भूमिका पुरुषों की बजाय स्त्रियों द्वारा ही करवानी चाहिए। ऐसे लोगों में एक थे—खुसरोजी काबरा, जिन्होंने रंगमंच-कला के हित में बुद्धिजीवी स्तर पर स्त्रियों की मंचीय भागीदारी का स्वागत किया था। "पारसी थिएटर में अभिनेत्रियों ने कई बार द्वार खटखटाए, पर हमारी नैतिक-सामाजिक मर्यादाएँ (बंदिशें) ऐसी थीं, कि यह बज्रकिवाड़ जाकर खुला सन् 1892 में जब 'विक्टोरिया' ने हिंदुस्तानी में 'हरिश्चंद्र' खेला।"[3]

डॉ. सोमनाथ गुप्त ने 'पारसी रंगमंच : उद्भव और विकास' में प्रारंभिक अभिनेत्रियों में अमीरजान और मोतीजान का उल्लेख भी किया है जो नृत्य की अपेक्षा गायन में अधिक कुशल थीं। लतीफा बेगम की तरह अमीरजान से भी किसी मुसलमान व्यापारी ने निकाह कर लिया। दादीभाई पटेल के इस कदम की देखा-देखी, दर्शकों को आकर्षित करने के लिए अन्य कंपनियों ने भी स्त्रियों के लिए अपने दरवाजे खोलने शुरू कर दिए। इसी क्रम में बालीवाला की विक्टोरिया कंपनी में भी मिस गौहर, मिस मलका और मिस फातिमा को भी गाने और नाचने के लिए शामिल कर लिया गया। शुरू-शुरू में सभी कंपनियों ने स्त्रियों को मुख्य भूमिका निभाने के लिए नहीं दी किंतु धीरे-धीरे अधिकाधिक दर्शकों को लुभाकर पैसा कमाने की चाह के फलस्वरूप प्रधान भूमिकाओं में भी महिलाओं द्वारा अभिनय करने का चलन हो ही गया। केवल न्यू अल्फ्रेड कंपनी ने सोराबजी ओग्रा और उनके बाद राधेश्याम कथावाचक के निर्देशकीय कार्यकाल में अभिनेत्रियों को शामिल करने से परहेज रखा। 1930 के बाद इस कंपनी में अभिनेत्रियों का प्रवेश हो गया।

पारसी रंगमंच पर कई अभिनेत्रियों ने अपने काम की वजह से चर्चा पाई। मुख्य अभिनेत्री के रूप में पहले-पहल मिस मेरीफैंटन (कुछ विद्वानों ने फैंटम शब्द प्रयुक्त किया है) का उल्लेख मिलता है। ऐम्प्रेस नाटक मंडली में काम करने वाले कावसजी खटाऊ ने मिस फैंटन को मंच पर लाने का प्रस्ताव रखा लेकिन कंपनी के मालिक जहांगीर खम्भाता ने दादी भाई पटेल के अनुभवों का जिक्र करते हुए इस कार्य के लिए मना कर दिया। उनके मना करने का एक और कारण यह था कि उस समय बिलकुल निचले दर्जे की कंपनियों में ही औरतों को छुट-पुट भूमिका दी जाती थी। ऐसी कंपनियों के नाटकों को देखने संभ्रांत वर्ग के लोग बिलकुल नहीं जाते थे। किंतु, खम्भाता की असहमति के बावजूद कावसजी फैंटन को स्टेज पर लेकर आए और असफल ही रहे। आगे चलकर 1890 के दशक के मध्य में अल्फ्रेड थिएट्रिकल कंपनी के नानाभाई राणीना ने मानिकजी मास्टर को प्रोप्राइटर और कावसजी खटाऊ तथा मुहम्मद अली को पार्टनर बनाकर मेरी फैंटन को बाकायदा मंच पर उतारा। "पहले छोटे-छोटे नाटक किए। फैंटन का गुजराती उच्चारण अच्छा था। भाषा पर अच्छा कंट्रोल था। भोली गुल व गामड़ेनी गोरी नाटक हुए। इसी गामड़ेनी गोरी में नायक बने एक और भावी महान थियेटरिस्ट अमृत केशव नायक। मेरी फैंटन को मेहरबाई के नाम से जाना गया।"[4] फैंटन ने अल्फ्रेड थिएटर कंपनी, खटाऊ की अल्फ्रेड थिएटर कंपनी व विक्टोरिया थिएटर कंपनी में काम किया। सोमनाथ गुप्त ने भी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण काम इन्हीं का माना है-"मेरी फैंटम ने अनेकों नाटकों में काम किया। 'तालिब' के हरिश्चंद्र में उसने जोगिन का पार्ट किया था। जिस प्रकार गुजराती में भोलीगुल की भूमिका में उसे सफलता प्राप्त हुई थी, उसी प्रकार जोगिन की भूमिका में भी वह खूब चमकी। कावसजी और मैरी का विवाह हो गया परन्तु अंत में दोनों की निभी नहीं। मैरी ने अनेकों मंडलियों में जाकर काम

किया और अंत में अस्पताल में उसकी मृत्यु हो गयी। अपने समय की वह निस्संदेह एक सफल, आकर्षक और लोकप्रिय अभिनेत्री थी।"[5]

मेरी फैंटन के बाद प्रसिद्धि प्राप्त करने वाली अभिनेत्रियों में मिस गौहर का उल्लेख मिलता है। गौहर ने बालीवाला की विक्टोरिया नाटक मंडली से अभिनय की शुरुआत की। बाद में अन्य कई मंडलियों में काम किया। सन् 1928 में 'विशाल भारत' में पारसी रंगमंच के प्रसिद्ध नाटककार तुलसीदत्त 'शैदा' ने 'हिंदी रंगमंच' नामक लेख लिखा जिसमें उन्होंने पारसी रंगमंच के अभिनेता और अभिनेत्रियों का परिचय भी दिया है। इस लेख में उन्होंने पारसी रंगमंच की मशहूर अभिनेत्री मिस गौहर और मिस शरीफा को भी शामिल किया है। मिस गौहर के बारे में लिखते हुए तुलसीदत्त 'शैदा' कहते हैं कि उन्होंने बारह वर्ष की उम्र में ही मिस्टर बालीवाला की 'दी पारसी विक्टोरिया थिएट्रिकल कंपनी' में मुंशी ताल्बी बनारसी के 'सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र' नाटक में अप्सरा की भूमिका निभाई थी। शारीरिक सौंदर्य और अभिनय की चातुरी के बल पर ये दर्शकों को आकर्षित करने में कामयाब रही। बकौल तुलसीदत्त 'शैदा' पारसी थिएट्रिकल कंपनी के डायरेक्टर मिस अमृतलालजी की शिष्य बनने के बाद मिस गौहर के काम में नया रंग पैदा होने लगा। यहाँ इन्होंने कई महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वाह किया। इसके बाद मिस गौहर ने मिस्टर खटाऊ की अल्फ्रेड थिएट्रिकल कंपनी में काम किया। यहाँ भी इन्होंने बढ़िया काम किया। अंत में मिस गौहर पारसी ऐलफिन्सटन थिएट्रिकल कंपनी में रहीं और यहाँ भी अपने काम से खासी चर्चा बटोरी। "मेरे लिखे 'श्रीकृष्ण-चरित' में श्री राधिका का पार्ट इतने अच्छे ढंग से किया कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जब कभी किसी नाटक में आपका पार्ट होता, रंगशाला दर्शकों से खचाखच भर जाती। प्रकृति ने आप में भावुकता कूट-कूटकर भर दी थी। ड्रामे की खूबसूरती और अलंकारमय भाषा के लालित्य को आप समझती थीं। स्त्री होने पर भी पुरुष का पार्ट इस ढंग से करती थीं कि उसे देखकर दर्शकों के पेट में हँसते-हँसते बल पड़ जाते थे। अधिक क्या कहें, हिंदी रंग-मंच की आप महारानी थीं।"[6] अभिनेत्री गौहर 1896-98 के आस-पास थिएटर की दुनिया में प्रविष्ट हुई। गौहर ने 'बज्मेफानी' में सोसन, 'मारे आस्तीन' में बिजली, 'चन्द्रावली' में चन्द्रावली, 'शाहीदेनाज' में सईदा, 'असीरे हिर्स' में महजबी आदि भूमिकाओं में प्रभावशाली अभिनय से प्रसिद्धि पाई।[7]

इन अभिनेत्रियों के अलावा मिस फातिमा बालीवाला की विक्टोरिया नाटक मंडली में काम करती थी। मिस मलका और मिस खातून ने पहले विक्टोरिया मंडली में तथा बाद में अन्य कई मंडलियों में काम किया। इनके साथ ही सोमनाथ गुप्त ने मिस गुलनार, मिस बिजली, मिस कमली, मिस गुलाब, मिस गंगा, मिस उम्दाजान, मिस जमीला, मिस कज्जन, मुन्नीबाई आदि के नामों का भी उल्लेख किया है। मुन्नी बाई के विषय में डॉ. अज्ञात ने लिखा है—"मुन्नीबाई ने अपने संवाद-कौशल एवं भावपूर्ण अभिनय के द्वारा सभी सामाजिकों को रस-विभोर कर दिया। सम्राट जार्ज पंचम ने प्रसन्न होकर मुन्नीबाई को स्वर्ण-पदक प्रदान किया।"[8] मुन्नीबाई अल्फ्रेड थिएटर की मुख्य अभिनेत्री थी। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल की 'पारसी हिंदी रंगमंच' पुस्तक के अनुसार अल्फ्रेड थिएटर में लीलाबाई नामक नर्तकी भी थीं। फलकुमारी कोरेंथियन कंपनी की एक शाखा केशरी थिएटर की हास्य अभिनेत्री थी। सरस्वती देवी खटाऊ थियेट्रिकल कंपनी की मुख्य अभिनेत्री थी। "पारसी थियेट्रिकल कंपनी की प्रसिद्ध हीरोइन यही थीं। इस कंपनी के मालिक और निर्देशक फरदुन ईरानी ने जो कुछ भी यश प्राप्त किया था उसके मूल में इसी अभिनेत्री का नाम है। चरित्र-अभिनय में यह अत्यधिक उल्लेखनीय थीं।"[9] सुशीलाबाई और रोशनआरा अल्फ्रेड थिएटर की अभिनेत्रियाँ थी। रामदुलारी मिनर्वा थिएटर और उत्तरकाल की कंपनियों की अभिनेत्री थी। राजमणी कोरेंथियन, केशरी कंपनी और कावसजी थिएटर की नायिका और गायिका रहीं। शकुन्तला देवी भी उत्तरकाल की कंपनियों की हीरोइन रहीं।[10]

एक अन्य महत्त्वपूर्ण अभिनेत्री मिस शरीफा के बारे में तुलसीदत्त 'शैदा' ने ये शब्द लिखे हैं—"मिस गौहर के बाद यदि इस समय कोई भावुक अभिनेत्री हिंदी रंगमंच पर देखी जाती है, तो वह आप ही हैं। भाषा और भाव पर आपका अधिकार है और यदि आपको स्व. गौहर की छायामूर्ति कहा जाए तो बेजा न होगा, क्योंकि आप भी अपने हाव-भाव से जनता के हृदय पर जबरदस्त प्रभाव डालती हैं। 'पतिभक्ति' में लीलावती, 'आँख के नशे' में कामलता और 'भीष्म-प्रतिज्ञा' में अम्बा का पार्ट

देखकर आपके विषय में यही कहना पड़ता है कि आप में भी Born artist (स्वाभाविक कलाविद्) के चिह्न पाए जाते हैं।"[11] मिस शरीफा ने मैडन कोरान्थियन कंपनी के आगा हश्र लिखित 'आँख का नशा' और 'दिल की प्यास' नाटकों में अपने अभिनय से अभूतपूर्व सफलता और चर्चा पायी थी। मिस शरीफा की पुत्री हुस्न बानो ने भी पारसी रंगमंच में बतौर अभिनेत्री काम किया। ये मास्टर फिदा हुसैन की समकालीन थीं। इन्होंने मुंबई में आकर फिल्मों में भी काम किया था।[12]

अभिनेत्री पेशेंस कूपर भी पारसी रंगमंच की चर्चित अभिनेत्री रहीं। ये नृत्य भी अच्छा कर लेती थीं। सन् 1926-27 में मैडन कोरान्थियन कंपनी में इनके रहने का उल्लेख मिलता है। वहाँ ये एंग्लो इंडियन लड़कियों को नृत्य सिखाती थीं। इन्होंने नृत्य की शिक्षा मास्टर चम्पा लाल से ली थी। इस कंपनी के साथ पेशेंस कूपर ने देश के विभिन्न भागों का दौरा करते हुए खूब नाम कमाया। अभिनेत्री जोहरा भी अपने काम के कारण चर्चित रहीं। जोहरा ने 'असीरेहिर्स' में हसीना, 'शाहीदेनाज' में नाजनीन, 'चन्द्रावली' में कमलावती के साथ 'लैला', आँख का नशा' में शरीफा, 'सांवरिया', 'गौहरेजन्जीर', 'हरिश्चंद्र', 'यहूदी की लड़की', 'जहरी सांप' इत्यादि नाटकों में मुख्य भूमिकाएँ की। अभिनेत्री मुन्नी ने विक्टोरिया थिएटर कंपनी में 'हरिश्चंद्र', 'गोपीचन्द्र', 'नूरजहाँ', 'विक्रमविलास', 'लैलोनहार' आदि नाटकों में काम किया। इसके बाद मुन्नी ने 'मादन थिएटर कंपनी' में 'सीता वनवास', 'गणेश जन्म', 'कृष्ण सुदामा', 'पारसी बालम', 'दिल की प्यास', 'आँख का नशा' आदि नाटकों में काम किया। 'लैलोनहार' नाटक में मुन्नी ने कई वर्षों तक काम किया।

कनकलता चटर्जी पारसी रंगमंच की अपेक्षाकृत आधुनिक अभिनेत्री कही जाती हैं। एक संस्मरण में उन्होंने पारसी रंगमंच में अपने अनुभवों के बारे में बताया है—"बचपन से ही मुझे अभिनय का शौक रहा लेकिन इस शौक को कलाकार का रूप देने का मौका नहीं मिल पाया। निम्न मध्यवर्गीय परिवार की कड़ी पाबंदियाँ मुझ पर लागू थीं। पर, कलाकार बनने का नशा था और अंततः अपने परिवार से विरोध कर मैंने पारसी थिएटर ज्वाइन कर लिया और लम्बे अरसे तक मैं इस थिएटर से जुड़ी रही।"[13] कनकलता ने पारसी रंगमंच में अपने कैरियर की शुरुआत कोलकाता के मिनर्वा थिएटर से की। इस थिएटर में मास्टर फिदा हुसैन से कनकलता ने हिंदी भाषा, नृत्य, गायन, शारीरिक मुद्राओं के साथ संवाद-वाचन और अभिनय सीखा। कनकलता ने 'झांसी की रानी', 'काला-गोरा', 'नैनी वाय कुम्हायरो', 'लव-कुश' आदि नाटकों में काम किया। कनकलता ने मूनलाइट थिएटर में भी काम किया। कनकलता ने अपने प्रयासों से 'श्रीमा जात्रा कंपनी' भी शुरू की किंतु सफल नहीं हो पाई। रंगमंच में काम करने वाले कलाकारों को, विशेषतः अभिनेत्रियों को उचित सम्मान न मिलने की पीड़ा कनकलता ने भी झेली। वे कहती हैं—"एक पुरानी अभिनेत्री होने के नाते मुझे जो सम्मान और आर्थिक सहयोग मिलना चाहिए वह हमें नहीं मिलता है।"[14]

पारसी रंगमंच की आधुनिक अभिनेत्रियों में सीतादेवी का नाम भी आता है जो कोलकाता के मूनलाइट थिएटर की प्रमुख अभिनेत्री थीं। वे गायिका भी बहुत अच्छी थी। मुख्यतः बांग्ला रंगमंच से जुड़ाव होते हुए भी वे हिंदी रंगमंच की लोकप्रिय अभिनेत्री थीं। इन्होंने लम्बे समय तक मूनलाइट थियेटर में काम किया। आगा हश्र कश्मीरी के नाटक 'सीता बनवास' में इनके द्वारा निभाई गई सीता की भूमिका उन दिनों खूब चर्चित और प्रशंसित हुई थी। मास्टर फिदा हुसैन कोलकाता मूनलाइट थियेटर की सफलता के पीछे सीता देवी जैसे कलाकार का होना भी मानते हैं—"मूनलाइट में सीता की वजह से, खूब जमकर ड्रामे बोलने वाली थी। सो खूब चले ड्रामे। मूनलाइट के चलने का सबसे बड़ा कारण यह था।"[15] मूनलाइट थियेटर में अन्य कई अभिनेत्रियाँ अमीना खातून, कमला गुप्ता आदि भी थीं जिनके अभिनय और गायन कला की तारीफ उस समय होती थी। अमीना खातून के बारे में कहा जाता है वे कव्वाली बहुत अच्छी गाती थी। इन्होंने 'हीर रांझा' में हीर, 'पूरण भगत' में सौतेली माँ लूना आदि भूमिकाएँ कीं। बाद के दिनों में इन्होंने अपनी कव्वाली पार्टी बना ली थी। "बड़ी टॉल फिगर और बड़ी लंबी चौड़ी आवाज थी उसकी। 'नयी मंजिल' में भी वही थी हिरोइन। दूसरी और लड़कियाँ थीं बहुत सारी पर मेन वही थी। 'नल दमयंती' में कमला गुप्ता थी उड़ीसा की रहने वाली बहुत बढ़िया गला था उसका और बहुत ही सुन्दर लड़की थी, उसको लिया हिरोइन। बड़ी अच्छी लड़की थी। दमयंती उसको बनाया था। जैसे कमला झारिया की आवाज थी उस तरह की उसकी आवाज थी। बहुत बढ़िया आवाज थी।"[16] अंगूरबाला भी आधुनिक

अभिनेत्रियों में से थीं। वे पारसी नाटकों में गायन और अभिनय का काम करती थीं। उनका मूल नाम प्रभावती था, सुरीले गायन के कारण उनका नाम अंगूरबाला पड़ गया। अंगूरबाला ने जित प्रसाद, उस्ताद राम प्रसाद मिश्र और काजी नजरुल इस्लाम के सान्निध्य में अपनी गायन कला का विकास किया। पारसी थियेटर छोड़ने के बाद वे पूर्णत: संगीत से जुड़ गईं। संगीत-साधना के कारण वे आकाशवाणी की सम्मानित गायिका रहीं। पारसी रंगमंच में काम करने वाली अभिनेत्रियों में एंग्लो इंडियन नर्तकी मिस मौली का नाम भी आता है। इन्होंने मास्टर फिदा हुसैन की नरसी थियेटर कंपनी में काम किया। हीराबाई एम्पायर थियेट्रिकल कंपनी में काम करने वाली अभिनेत्री थीं। सुल्ताना कॉमिक नाटकों की सुप्रसिद्ध नायिका थीं। बाद में इन्होंने दुखांत नाटकों में भी काम किया। इन्हें मास्टर फिदा हुसैन ने एक अभिनेत्री के रूप में तैयार किया था।[17]

कोलकाता का मूनलाइट थियेटर काफी लम्बे समय तक पारसी रंगमंच के नाटक मंचित करता रहा। इस थियेटर में कई अभिनेत्रियों ने लम्बे समय तक काम किया जिनमें सुंदरी दिलरूबा बेगम, अकीला बेगम, आशा रानी, उषा रानी, दुर्गा लामा, सुशीला देवी, लता बोस, चंदा रानी, रानी उर्वशी, कुमारी प्रतिमा, कुमारी दीपू, मुन्ना रानी, शांता देवी, मिस मलका, मिस नीलम, मिस ललिता, मिस शहजादी, कृष्णा कुमारी, मिस मीरा शील आदि प्रमुख रहीं।[18]

पुरुष-प्रधान कलाकारों वाले पारसी रंगमंच में महिलाओं के लिए अपने अभिनय की जमीन तलाशना अत्यंत दुष्कर था। एक ओर रंगमंच में काम करने वाली महिलाओं के प्रति समाज की संकीर्ण सोच और अस्वीकार का भाव, तो दूसरी ओर स्त्री-चरित्र निभाने वाले स्थापित पुरुष कलाकारों का नकारात्मक रवैया। इन कारणों के चलते रंगमंच में प्रविष्ट होने पर भी अभिनेत्रियों को पुरुष कलाकारों को मिलने वाले मेहनताने की तुलना में बहुत कम राशि पर संतोष करना पड़ा। वहीं कई प्रकार के सामाजिक-पारिवारिक और मानसिक संघर्ष झेलने पड़े। (ध्यातव्य है कि दो दशक पहले तक हिंदी सिनेमा की अभिनेत्रियों को अभिनेताओं की तुलना में कम मेहनताना मिलता था) इसी संदर्भ में मराठी रंगमंच की पहली अभिनेत्री कमलाबाई का उल्लेख करते हुए मृणाल पांडे लिखती हैं—"कमलाबाई गोखले ने 'सिने विजन' पत्रिका में छपे साक्षात्कार में कहा है कि शुरू-शुरू में उनको निरुत्साहित कर भगाने की बड़ी कुटिल चेष्टाएँ उन कलाकारों ने कीं, जिनकी रोजी-रोटी को असली महिला गायिकाओं से खतरा पैदा हो रहा था। पुरुषों द्वारा आजमाए कई कालातीत आजमूदा नुस्खों को : रंग-पार्श्व में महिला की एंट्री को रोकना, उनके मेकअप रूम का दरवाजा छेंककर खड़े रहना आदि आजमाए गए, पर कमाकर आर्थिक रूप से स्वाश्रयी बनने पर आमादा ये महिलाएँ भी डटी रहीं। वे जो डेरेदार तवायफें नहीं कस्बिनें या कम नामचीन संगीत-घरानों के पिछवाड़े से निकलकर आई थीं, उनके लिए तो रंगमंच ही वह इकलौता ठौर बचता था जहाँ उतरकर अपने गायन और अभिनय से वे चार पैसे और शोहरत कमा सकती थीं। भले ही अंग्रेजी तहजीब के असर से मध्यवर्ग इन गवनहारियों को बहुत आदर से नहीं देखता था, पर उनके सम्मानित पूर्व संरक्षक, रजवाड़े और जमींदार भी अब इसी नई विधा को आश्रय देने लगे थे। लिहाजा शिक्षा के अभाव और समाज के कठोर रुख के चलते इन बदनाम मानी जाने वालियों का एक बड़ा पुरसाहाल पारसी थिएटर बनता गया और उससे जुड़कर कई असमय बुझने की कगार पर खड़ी महिला प्रतिभाएँ चमक उठीं।"[19]

पारसी नाटक कंपनियों की अभिनेत्रियों के लिए नृत्य और गायन में पारंगत होना अपरिहार्य था। इसी के चलते मुख्य रूप से उस समय नाचने-गाने का पेशा करने वाली महिलाओं (वेश्याओं को भी) को अभिनेत्री के रूप में नियुक्त किया जाता था। नाटक देखने वाले तत्कालीन समय के अधिकांश दर्शक इन अभिनेत्रियों को उसी रूप में देखना चाहते थे जैसी कि वे वास्तविक जीवन में थीं। इसीलिए सीता-सावित्री तक की भूमिका में भी लटक-मटक दिखलाना स्वाभाविक चलन हो गया था। पारसी रंगमंच अपनी संरचना में ही अतिरंजित था। अभिनेत्रियों को भी इसी के अनुरूप कार्य करना पड़ता था। हालाँकि बाद में आने वाली कुछ अभिनेत्रियों ने इस अतिरंजना को तोड़ते हुए स्वाभाविक और संवेदनशील अभिनय की शुरुआत की। "पारसी थिएटर के तीनों बड़े नाटक-लेखक भी बड़ी महिला गायिकाओं के लिए खास रोल लिखकर उनकी प्रतिभा को उभारने में लगातार सहयोग देते रहे थे। इसमें आगा हश्र काश्मीरी प्रमुख थे।"[20] पं नारायण प्रसाद 'बेताब' और पं राधेश्याम कथावाचक ने भी अभिनेत्रियों की अभिनय-कला को

निखारने में योगदान देते हुए उन्हें अपने नाटकों में बड़ी भूमिकाएँ दीं। किंतु अभिनय का यह नया दौर शुरू-भर ही हुआ था कि सिनेमा के उद्‌भव ने पारसी रंगमंच की गति में एक प्रकार से रोक-सी लगा दी।

भारत में पहले-पहल मूक सिनेमा और फिर बोलती फिल्मों के चलन ने पारसी थियेटर कंपनियों को इतना नुकसान पहुँचाया कि कुछ ही वर्षों में लगभग सभी कंपनियाँ बंद हो गयीं। इन कंपनियों के मालिक सिनेमा में पैसा लगाने लगे। शुरुआती दौर की कुछ फिल्मों में पारसी थियेटर की अभिनेत्रियों को भी काम मिला। किंतु धीरे-धीरे अभिनेत्रियाँ गुमनामी के अँधेरे में खो गयीं। चर्चित अभिनेत्री मिस शरीफा की पुत्री हुस्न बानो ने फिल्मों में काम किया था। मिस कज्जन और मिस कूपर ने पारसी नाटककार नारायणप्रसाद बेताब द्वारा लिखित 'जहरी सांप' फिल्म में प्रमुख भूमिकाएँ निभाईं। आगा हश्र कश्मीरी के नाटक 'बिल्वमंगल उर्फ सूरदास' पर 1920 के आस-पास बनी फिल्म में कुमारी गौहर ने चिंतामणि की भूमिका की थी। 1922 में बनी 'नूरजहाँ', 'पत्नी प्रताप', 'पति भक्ति' आदि फिल्मों में पेशंस कूपर ने अभिनय किया था। बल्कि 'पति भक्ति' में तो पेशंस कूपर ने दोहरी भूमिका की थी। ये सारी फिल्में मूक थी। शुरुआत की कुछ बोलती फिल्मों में भी पारसी रंगमंच की अभिनेत्रियों को काम मिला। मादन थियेटर्स लिमिटेड की आगा हश्र के नाटक पर आधारित 'शीरीं फरहाद' में कज्जन बाई ने काम किया। आगा हश्र के 'बिल्वमंगल' पर चौथे दशक में पुनः फिल्म बनी, इस बार पेशंस कूपर और कुमारी कज्जनबाई ने मुख्य स्त्री चरित्रों की भूमिका अदा की। हश्र के ही 'यहूदी की लड़की' पर बनी फिल्म में यहूदी की लड़की की भूमिका रतनबाई ने निभाई थी।[21] अपनी गायकी के लिए मशहूर बेगम अख्तर फिल्मों में आने से पहले (1930 के दशक में) पारसी नाटकों में अख्तरी फैजाबादी के नाम से अभिनय किया करती थीं।

कहना न होगा कि यदि पारसी रंगमंच पर महिलाओं का प्रवेश न हुआ होता तो हिंदी सिनेमा में भी महिलाओं की प्रविष्टि में देरी होती क्योंकि खुद दादा साहब फाल्के ने 'राजा हरिश्चंद्र' में रानी तारामती का रोल एक कम उम्र के लड़के से ही करवाया था जिसके पीछे तथाकथित 'सभ्य' समाज का दबाव काम कर रहा था। बाद में यह दबाव हल्का हुआ, महिलाएँ आयीं और रजत-पट पर छायीं भी।

संदर्भ :

1. गुप्त सोमनाथ, पारसी थियेटर : उद्‌भव और विकास, पृष्ठ-194, लोक भारती प्रकाशन : इलाहाबाद, संस्करण : 2015
2. रंग प्रसंग-13, पृष्ठ-21
3. वही, पृष्ठ-34
4. वही, पृष्ठ-27
5. गुप्त सोमनाथ, पारसी थियेटर : उद्‌भव और विकास, पृष्ठ 195-196
6. आनंद महेश, रंग दस्तावेज-2, पृष्ठ-38-39, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय : दिल्ली, संस्करण : 2007
7. रंग प्रसंग-13, पृष्ठ-35
8. डॉ, अज्ञात, भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास, पृष्ठ-140
9. लाल लक्ष्मीनारायण, पारसी हिंदी रंगमंच,पृष्ठ-136, राजपाल एंड संज, दिल्ली
10. वही
11. आनंद महेश, रंग दस्तावेज-2, पृष्ठ-40
12. अग्रवाल प्रतिभा (सं) मास्टर फिदा हुसैन : पारसी थियेटर में पचास वर्ष, पृष्ठ-38
13. रंग प्रसंग-13, पृष्ठ-71
14. वही, पृष्ठ-31
15. अग्रवाल प्रतिभा (सं), मास्टर फिदा हुसैन : पारसी थियेटर में पचास वर्ष, पृष्ठ-60
16. वही, पृष्ठ-53
17. वही, परिशिष्ट
18. मूनलाइट थियेटर, कोलकाता के विभिन्न नाटकों के पोस्टर, सौजन्य : नटरंग प्रतिष्ठान
19. पांडेमृणाल, ध्वनियों के आलोक में स्त्री, 'पारसी थिएटर में गायिका अभिनेत्रियाँ' लेख, पृष्ठ-119, राधाकृष्ण प्रकाशन : दिल्ली, संस्करण 2015
20. वही, पृष्ठ-120
21. आनंद महेश, रंग दस्तावेज-1, पृष्ठ-465-466

❖

हिंदी विभाग, अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
आई-5/81, ग्राउंड फ्लोर, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089
ई-मेल : drasha.aditi@gmail.com

भारत का आर्मेनियाई समुदाय

— माने मकर्तच्यान

आर्मेनियाई व्यापारियों के लिए यूरोपीय कम्पनियों के साथ प्रतिस्पर्धा चुनौतीपूर्ण थी किन्तु "अपने काम में दक्ष और भारत सहित विश्व भर में फैले संपर्कों की बदौलत आर्मेनियाई अपने व्यापार को एक अरसे तक बचाए रखने में सफल रहे। और वे यूरोपीय कंपनियों को टक्कर देने लगे..." यूरोपीय कंपनियों से मिल रही चुनौती के बावजूद भारतीय या आर्मेनियाई व्यापार का संसार सुरक्षित रहा। किन्तु ब्रिटिशों द्वारा सत्ता हासिल करने के बाद मौजूदा व्यावसायिक जगत कितना डावाँडोल होने वाला था, तब इसका अंदाजा किसी को नहीं था। बदलते व्यापारिक, राजनीतिक और सैन्य समीकरण में परंपरागत व्यापार और व्यापारियों पर संकट के गहरे बादल मंडराने लगे।

भारत और आर्मेनिया के बीच सहस्त्राब्दियों पुराने संबंध रहे हैं। यहाँ आ बसी आर्य महाजाति की सभ्यता में आदिम आर्मेनियाई संस्कृति की झलक भी देखी जा सकती है। दोनों देशों के संबंधों पर लिखित पहला उल्लेख ग्रीक इतिहासकार जेनफन (431-355 ई.पू.) के 'साईरोपीडिया' (370 ई.पू.) में पाया जाता है। आर्मेनियाई इतिहासकारों ने भी दोनों देशों के घनिष्ठ व्यापारिक संबंधों पर विस्तार से चर्चा की है। इन इतिहासकारों में मोव्सेस खोरेनात्सी (5वीं), येगिशे (5वीं), अगाथांगेगोस (5वीं), आरिस्ताकेस लास्तिवेर्त्सी (11वीं), स्तेफानोस ओर्बेल्यान (13वीं) आदि नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

7वीं ईसवीं में केरल में स्थाई आर्मेनियाई बस्तियाँ अस्तित्व में आ गई थीं। आठवीं शताब्दी में थॉमस कैना नामक आर्मेनियाई व्यापारी सह राजनयिक ने मालाबार में आकर वहाँ के राजा से व्यापार में अनेक विशेषाधिकार प्राप्त किए और क्रैंगनोर के पास एक वाणिज्यिक शहर भी बसाया। केरल और दक्षिणी इलाकों से होने वाले रत्नों, मसालों और उत्तम वस्त्रों के व्यापार में आर्मेनियाइयों की सम्मानजनक हिस्सेदारी रही।

16वीं शताब्दी में सम्राट अकबर की उदार और मैत्रीपूर्ण नीतियों से आकर्षित हो भारत में भारी संख्या में आर्मेनियाई व्यापारी आकर बसने लगे थे। वे कंदहार, काबुल, लाहौर, सूरत, दिल्ली, आगरा, मुरादाबाद से लेकर चिनसुराह, चंदननगर, कलकत्ता और मद्रास तक फैल गए। यूरोप और दक्षिण एशिया के अनेक देशों के साथ उनके वाणिज्यिक संबंध पहले से ही थे। आर्मेनिया के औटोमन और फारसी साम्राज्य के अधीन हो जाने के बावजूद, काले और भूमध्य सागर में अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर प्रवासी आर्मेनियाई व्यापारियों का वर्चस्व बना रहा। "भूमार्ग से होने वाले व्यापार के जोखिमों को मापने में आर्मेनियाइयों को दक्षता हासिल थी। उन व्यापारियों में कुछ ऐसे थे जिनकी समृद्धि और हैसियत की तुलना लंदन और एम्स्टर्डम के सफलतम व्यापारियों से की जाती थी।"[1]

वस्तुतः आर्मेनियाइयों को जमीनी और समुद्री मार्गों पर समान रूप से व्यापार में महारत हासिल थी। आर्मेनियाई व्यापारी दूसरे पारंपरिक व्यापारी समुदायों जैसे यहूदी, यूनानी, अरब से इस मामले में अधिक साहसी और भिन्न थे कि वे वाणिज्यिक अवसर की तलाश में सपरिवार ऐसी किसी नई जगह पर बस जाने का जोखिम मोल लेने से पीछे नहीं हटते थे जहाँ उन्हें सम्मान मिलता हो। इसका मुख्य कारण यह था कि 14वीं शताब्दी में अंतिम साम्राज्य के पतन के बाद आर्मेनियाई राष्ट्र का सदियों तक अपना संप्रभु राज्य नहीं रहा था। उनके लिए चाहे इस्फहान हो, अलेप्पो हो या फिर हुगली या ढाका, सभी समान थे। जहाँ व्यापार के साथ-साथ अपनी पहचान के लिए उन्हें अनुकूल परिस्थितियाँ मिलीं, उन्होंने घर बसा लिया।

जर्मन दार्शनिक इमानुएल कांट अपनी पुस्तक 'एंथ्रोपोलॉजी फ्रॉम ए प्रेग्मेटिक पॉइंट ऑफ व्यू' में आर्मेनियाई व्यापारिक समुदाय

के चरित्र का विश्लेषण इस प्रकार करते हैं। "अन्य ईसाई लोगों के मुकाबले आर्मेनियाइयों में एक विशेष प्रकार की व्यावसायिक भावना प्रबलता से बसती है जो इस तार्किक और उद्यमी जाति की भिन्न उत्पत्ति को इंगित करती है। वे उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम तक प्राचीन काल से सभी महाद्वीपों की यात्रा करते रहे हैं और हर जगह मिलने वाले सभी लोगों से अपना शांतिपूर्ण स्वागत करवा लेने की क्षमता रखते हैं। इससे साबित होता है कि आधुनिक यूनानियों के अधीर और चिपकू स्वभाव के मुकाबले वे कितने श्रेष्ठ हैं।"[2]

आर्मेनियाइयों के भारत से आयात-निर्यात के मार्ग दूसरे व्यापारियों से अलग थे और भारतीय व्यापारियों की भाँति इनके व्यापार के तौर-तरीके भी पुराने और पारंपरिक थे। ये यूरोपीय ढंग के बड़े कॉर्पोरेशन नहीं थे।[3] बल्कि अधिक से अधिक प्राइवेट लिमिटेड कंपनियाँ या पार्टनरशिप फर्म हुआ करती थीं। इनके प्रतिष्ठानों में परिवार के सदस्यों और भारतीय मित्रों की ही साझेदारी हुआ करती थी और इनमें बाहरी लोग शरीक नहीं किए जाते थे। जबकि अपने-अपने राज्यों से समर्थन प्राप्त डच, फ्रांस और इंग्लैंड की ईस्ट इण्डिया कंपनियों की भारत में जबरदस्त सैन्य व राजनीतिक महत्वाकांक्षाएँ थीं। उनके इरादे भारत को अपना उपनिवेश बनाने के थे। इसी कारण उनमें प्रतिस्पर्धा भी चरम पर थी। और आर्मेनियाई कंपनियों की तुलना में उनका चरित्र भिन्न था। इन यूरोपीय कंपनियों ने छल-बल द्वारा व्यापार के भिन्न क्षेत्रों पर एकाधिकार जमा लिए। ये वाणिज्यिक और सैन्य शक्ति को सुदृढ़ कर अपनी सुरक्षा के बहाने से किलों का निर्माण करने लगे। यहाँ इस ऐतिहासिक तथ्य का उल्लेख अनुचित नहीं होगा कि आर्मेनियाई व्यापारी खोजा वाजिद को भेजे गए पत्र में बंगाल के नवाब सिराजुद्दोला ने लिखा था कि "बंगाल में आर्मेनियाई लोग भी तो विदेशी हैं परन्तु उन्होंने किसी भी किले का निर्माण नहीं किया और मुगल सरकार के संरक्षण में व्यापार किया।"[4]

बहरहाल, ध्यातव्य है कि 16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक अनेक आर्मेनियाई भारतीय कुलीन समाज में अपनी जगह बना चुके थे और यहाँ की न्याय व्यवस्था, वाणिज्य और राजनीति में प्रभावशाली हैसियत रखने लगे थे। अरबी, फारसी सहित रूसी, फ्रेंच, अंग्रेजी आदि भाषाओं में निपुण अनेक आर्मेनियाई मुगल दरबार में कुशल दुभाषिये और अनुवादकों की जिम्मेदारी भी संभालते थे। उन्होंने यूरोपीय राजनयिकों के साथ हो रहे अनुबंधों के निष्पादन में बड़ी भूमिका निभाई। अकबर ने आर्मेनियाइयों को अपने दरबार में उच्च पदों पर भी नियुक्त किया था। अकबर की फारस से आई ईसाई रानी मरियम हो या मुगल दरबार के मुख्य न्यायाधीश खोजा अब्दुल हाई या फिर अकबर के दत्तक पुत्र मिर्जा जुलकरनैन सभी मूलत: आर्मेनियाई थे। आर्मेनियाइयों ने मुगल सम्राट अकबर का विश्वास जीत लिया था। अकबर ने आर्मेनियाइयों को माल के आयात-निर्यात के लिए प्रतिबंध मुक्त कर दिया था। इन्हें उन प्रान्तों में व्यापार फैलाने की छूट मिल गई थी जहाँ कोई अन्य विदेशी नहीं जा सकता था।[5]

गौरतलब तथ्य यह भी है कि 18वीं शताब्दी में बंगाल के दो प्रमुख आर्मेनियाई सौदागरों खोजा इजराइल सरहद और खोजा वाजिद की बंगाल के व्यावसायिक जगत पर लम्बे अरसे तक तूती बोलती रही। मुगल दरबार में इनके परामर्श का बड़ा महत्व था। सूरत में खोजा मीनास और मद्रास में पेत्रूस उस्कान[6] ने सामाजिक और व्यापारिक गतिविधियों में उल्लेखनीय भूमिका निभाई।

आर्मेनियाई व्यापारियों के लिए यूरोपीय कम्पनियों के साथ प्रतिस्पर्धा चुनौतीपूर्ण थी किन्तु "अपने काम में दक्ष और भारत सहित विश्व भर में फैले संपर्कों की बदौलत आर्मेनियाई अपने व्यापार को एक अरसे तक बचाए रखने में सफल रहे। और वे यूरोपीय कंपनियों को टक्कर देने लगे..."[7] यूरोपीय कंपनियों से मिल रही चुनौती के बावजूद भारतीय या आर्मेनियाई व्यापार का संसार सुरक्षित रहा। किन्तु ब्रिटिशों द्वारा सत्ता हासिल करने के बाद मौजूदा व्यावसायिक जगत कितना डावाँडोल होने वाला था, तब इसका अंदाजा किसी को नहीं था। बदलते व्यापारिक, राजनीतिक और सैन्य समीकरण में परंपरागत व्यापार और व्यापारियों पर संकट के गहरे बादल मंडराने लगे।

31 दिसंबर, 1600ई. को ब्रिटिश महारानी एलिजाबेथ प्रथम ने अंग्रेज व्यापारियों की एक नवगठित कंपनी को पूर्व से व्यापार हेतु एकाधिकार प्रपत्र प्रदान किया। व्यापारियों की यह कंपनी जल्द ही 'ईस्ट इण्डिया कंपनी' कहलाने लगी।

"तीस हजार पाउंड अर्थात उन दिनों तीन लाख रुपये का मूलधन, चार जहाज और एक छत वाली छोटी नौका लेकर 1601 ई. में ईस्ट इण्डिया कंपनी का प्रथम वाणिज्य अभियान शुरू हुआ।"[8] भारत में इस कंपनी को अपना व्यापार स्थापित करने के लिए अन्य यूरोपियन कंपनियों से प्रत्यक्ष टक्कर लेनी पड़ी जिसमें धीरे-धीरे उन्होंने अन्य सभी को पछाड़ दिया। मुगल शासन के बाद भारत के बड़े भूभाग पर कोई ताकतवर सैन्य शक्ति नहीं बची थी और कंपनी को वाणिज्य व राजनीतिक प्रसार दोनों की ही छूट मिली हुई थी। अनुकूल परिस्थितियों का उपयोग कर ब्रिटिशों ने धूर्ततापूर्ण और आक्रामक रणनीति के बूते अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया।

ब्रिटिशों ने व्यापारिक अनुबंध करने में आर्मेनियाइयों से अनुवादक, दुभाषिये, वकील और पैरोकार बनने का आग्रह किया। साथ ही दरबार में आर्मेनियाइयों के परिचय और प्रभाव से उनकी

मदद करने का निवेदन भी किया। बदले में उन्होंने आर्मेनियाइयों को अपने जहाजों के इस्तेमाल की छूट दी। ऐतिहासिक रूप से ऐसे महत्वपूर्ण अनेक फरमान दिलाने में मध्यस्थों व दूतों के रूप में कुछ आर्मेनियाई खोजाओं की भी भूमिका रही।

अंग्रेजों ने सन् 1650 ई. में हुगली में आकर नदी के तट पर बंदरगाह बनाने की अनुमति प्राप्त करने और जमीन खरीदने के उद्देश्य से आर्मेनियाई खोजा सरहद को दूत नियुक्त कर ढाका भेजा। ब्रिटिशों को विश्वास था कि मुगल नवाब को मनवाने के लिए खोजा इजराइल सरहद से बेहतर और कोई नहीं हो सकता था। "रुपया बहाने पर नवाब साहब से सब तरह के काम करवाए जा सकते हैं, यह बात खोजा सरहद साहब से छिपी नहीं थी। सौगात और नगद मिलाकर सोलह हजार रुपये नवाब अजिमुस्सान को भेंट किए गए और ब्रिटिशों ने सुतोनुटी, कलकत्ता और गोविंदपुर तीन ग्रामों को खरीदने की अनुमति प्राप्त कर ली।"[9] 10 नवम्बर 1698 को इन ग्रामों पर विशेषाधिकार पाकर अंग्रेजों ने कलकत्ता की नींव रखी और अपनी प्रेसिडेंसी मद्रास से कलकत्ता स्थानांतरित कर दी। जल्द ही उन्होंने फोर्ट विलियम का निर्माण किया जो उनका सबसे मजबूत गढ़ रहा।

"1713 में अंग्रेजों को फिर से खोजा सरहद की सेवाओं की आवश्यकता पड़ी। इस बार उन्होंने दिल्ली में सम्राट फर्रुख़ सियर के दरबार में सुर्मन शिष्टमंडल (जॉन सुर्मन की अगुआई में) की पैरवी के लिए उनकी मदद ली। खोजा सरहद के कौशल और क्षमताओं का उपयोग करने के लिए अंग्रेजों ने उन्हें 1715 में दिल्ली में इसी शिष्टमंडल का सदस्य नियुक्त किया।"[10] ब्रिटिश 1717 में उस शाही फरमान को प्राप्त करने में सफल रहे जो बंगाल के 'मैग्ना कार्टा' के नाम से मशहूर है। हालाँकि इसे प्राप्त करने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका विलियम हैमिलटन की रही जो एक चिकित्सिक भी थे और जिसने फर्रुख़ सियर की गंभीर व्याधि का सफल उपचार किया था।

यह ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए एक ऐतिहासिक सफलता थी। इस फरमान से न केवल बंगाल में कंपनी के मुक्त व्यापार के विस्तार का मार्ग प्रशस्त हुआ, बल्कि इससे भारतवर्ष के राजनीतिक क्षेत्र में भी ब्रिटिशों की दखलंदाजी का रास्ता खुल गया। यही नहीं, इस प्रपत्र से माल की आवाजाही पर मिले पूर्ण नियंत्रण को कंपनी के अधिकारियों ने अपनी तिजोरियाँ भरने में जमकर भुनाया। बहरहाल, 1665 में पुर्तगालियों द्वारा बंबई को ब्रिटिशों के हवाले कर देने के बाद इंग्लिश कंपनी ने इसे एक बड़े बंदरगाह के रूप में विकसित करने का कार्य आरम्भ किया। इसके लिए ईस्ट इण्डिया कंपनी ने सूरत के प्रमुख व्यापारियों विशेष रूप से आर्मेनियाइयों को बंबई में बसने का आमंत्रण दिया। उन्हें भूमि और अनेक सुविधाएँ आदि देने का वादा भी किया। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सूरत के सबसे प्रतिष्ठित आर्मेनियाई व्यापारी खोजा मीनास जो लाल सागर, फारस की खाड़ी और दक्षिण-पूर्व एशिया के व्यापार में सबसे सक्रिय व्यापारी माने जाते थे, से अंग्रेजों ने खास तौर पर यह पेशकश की थी।[11]

विदित है कि भारत में आने से पूर्व ही मध्य पूर्व में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कंपनी आर्मेनियाई व्यापारियों की सुव्यवस्थित कार्यशैली और वाणिज्यिक कौशल की प्रशंसक बन चुकी थी। यह इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि "1673 में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कंपनी के कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने फारस में अपने लेखाधिकारियों को विशेष रूप से आर्मेनियाई परिवारों के निकट रहने, उनकी भाषा और उनकी व्यापार पद्धति को सीखने का आदेश दिया था।"[12]

दरअसल, मध्य पूर्व में रेशम और सूती वस्त्रों का व्यापार ही था जिस पर कब्जा करने के लिए ब्रिटिश और डच कंपनियों की आँख गड़ी हुई थी। न्यू जुल्फा के आर्मेनियाई व्यापारियों ने दशकों तक फारस-लेवांत[13] के वाणिज्य पर मजबूत पकड़ बना रखी थी। यहाँ इस तथ्य का उल्लेख अनुचित नहीं होगा कि सत्तरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में औटोमन दासता से बचाने का हवाला देकर सफाविद सम्राट शाह अब्बास ने 1604 और 1605 के बीच लगभग 3 लाख आर्मेनियाइयों को आर्मेनिया से विस्थापित कर दिया। आर्मेनिया के नाखिजेवान प्रान्त के प्राचीन जुल्फा शहर के 150000 से अधिक विस्थापित व्यापारियों, बेहतरीन कलाकारों, कुशल कारीगरों, वास्तुकारों, शिल्पकारों आदि के लिए शाह ने राजधानी इस्फहान के समीप एक नगर का निर्माण किया, जिसका नाम नया जुल्फा रखा। यहाँ खघेजा (कुलीन लोग) के नाम से जाने जाने वाले आर्मेनियाई व्यापारियों का एक वर्ग उभरा, जिन्हें फारस के शाह ने एशिया और यूरोप के बीच रेशम व्यापार का एकाधिकार प्रदान किया। भारत विशेष रूप से बंगाल में आ बसे अधिकांश आर्मेनियाई सौदागर न्यू जुल्फा से ही आए थे।

न्यू जुल्फा के आर्मेनियाई फारसी कच्चे रेशम को भूमध्य सागर से लेवांत तक ले जाते थे और वहां इसे यूरोपीय व्यापारियों को नकद और कपड़ों के बदले बेच देते थे। ब्रिटिश चाहते थे कि इस मार्ग को बदलकर उसे फारस की खाड़ी की तरफ मोड़ दिया जाए जिससे कि यह व्यापार उनके हाथों में सिमट जाए। लेकिन इसमें उन्हें सफलता हाथ नहीं लगी।[14]

जब ब्रिटिशों की मंशा विफल हुई तब ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कंपनी ने आर्मेनियाइयों के साथ साझेदारी करनी चाही।[15] न्यू जुल्फा के प्रतिष्ठित व्यापारी खोजा फानूस कलंतर ने अपने अधिकार क्षेत्र

का अतिक्रमण करते हुए आर्मेनियाई 'राष्ट्र' की तरफ से ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कंपनी के साथ 22 जून, 1688 को लंदन में एक समझौते पर दस्तखत किया।[16] जिसमें फारस और भारत में रह रहे आर्मेनियाइयों को अनेक विशेषाधिकार प्रदान किए गए। बदले में लिखा गया कि सदियों से चले आ रहे अपने पारंपरिक व्यापारिक मार्ग को बदलते हुए आर्मेनियाई ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कंपनी को इस्फहान से अपने रेशम और कपड़े के व्यापार के एक बड़े हिस्से के प्रबंधन की अनुमति दे देंगे। लेकिन यह समझौता कागजी ही साबित हुआ क्योंकि नए जुल्फा का आर्मेनियाई व्यापारी समुदाय ब्रिटिश कंपनी के साथ न सिर्फ उपरोक्त शर्तों पर बल्कि आम तौर पर भी साझेदारी के लिए इच्छुक नहीं था।[17]

इस संदर्भ में ईस्ट इण्डिया कंपनी का 1697 का आंतरिक पत्राचार दृष्टव्य है। "ऐसी उम्मीद पालना प्रकृति और तर्क के विरुद्ध है कि ऐसे चतुर लोग अपने व्यापारिक हितों पर कुल्हाड़ी चलाते हुए हमारे व्यापार को आगे बढ़ाएँगे। जो कपड़े के निर्माण से लेकर उसके व्यापार तक के लिए जुनूनी रहे हैं। ये (आर्मेनियाई) दुनिया के सबसे प्राचीन व्यापारियों में से हैं, यह सर्वथा सत्य है।"[18]

आर्मेनियाइयों के अनुभव और काबिलियत से अंग्रेज प्रभावित अवश्य थे और इस बात के लिए उनका आदर भी करते थे किंतु व्यापार में आर्मेनियाइयों की सफलता से ब्रिटिश कुंठित और ईर्ष्या से ग्रसित भी रहते थे। दरअसल, आर्मेनियाइयों से छुटकारा पाना ब्रिटिशों का ध्येय था लेकिन इसके लिए आवश्यक था कि पहले वे उनके गुरों को सीख लें। इसी नियत से इन्होंने आर्मेनियाइयों के साथ नजदीकियाँ बढ़ाई और साथ ही उनकी गतिविधियों पर नजर भी रखने लगे।

विदित है कि 17वीं-18वीं सदियों में यूरोपीय व्यापारी एशिया में सुचारू रूप से व्यापार कर पाने के लिए आर्मेनियाई पोशाक तक पहना करते थे और सुदूर पूर्व के बंदरगाहों में आर्मेनियाई ध्वज[19] के तले समुद्री-यात्रा करते थे क्योंकि यह ध्वज सुरक्षा की गारंटी देता था। ऐसे दर्जनों अभिलेख देखने को मिलते हैं जो इसकी गवाही देते हैं। यथा 31 अगस्त और 2 सितंबर, 1734 को ईस्ट इंडिया कंपनी के पत्राचार से ज्ञात होता है कि ब्रिटिशों को जब इस बात का आभास होने लगा कि उनके मनिला के साथ व्यापारिक संबंध नहीं बन पा रहे हैं तब उन्होंने अपने माल पर आर्मेनियाई लेबल चिपकाकर उसे मनिला के बंदरगाह में चोरी से भेजना शुरू कर दिया था।[20] इससे समुद्री मार्ग पर आर्मेनियाइयों की पकड़ और सुचारू प्रबंधन का अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है।

1757 के बाद भारत और दक्षिण पूर्व में आर्मेनियाई व्यापारिक समुदाय को ईस्ट इंडिया कंपनी अपना शत्रु मानने लगी। ब्रिटिशों का आर्मेनियाइयों से नाराजगी का एक और कारण था, और वह यह कि अंग्रेजों के खिलाफ लड़ रहे भारतीय राजाओं और नवाबों की सेना में आर्मेनियाइयों ने सैन्य सहयोग दिया था। वस्तुतः कोई भी आर्मेनियाई उनके ध्वज के नीचे नहीं लड़ना चाहता था। यह एक गौरतलब तथ्य है कि भारत के भिन्न शासकों की सेना में अनेक आर्मेनियाई कुशल तोपची रहे हैं। बंदूक बनाने की कारीगरी में भी वे माहिर थे। और कुछ तो भारत के राजाओं और नवाबों की सेना के सेनापति तक रहे जैसे बंगाल के नवाब मीर कासिम की सेना के कमांडर खोजा गोर्गिन खाँ और ग्वालियर में सत्तर वर्षों तक सिंधिया सेना के कमांडर रहे कर्नल जैकब पेत्रूस। उनकी सेनाओं में सौ से अधिक आर्मेनियाई सैनिकों की टुकड़ी भी हुआ करती थी।

बहरहाल, 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अंग्रेजों ने आर्मेनियाइयों को सताना आरंभ किया और उनके जहाजों को शत्रु संपत्ति के रूप में जब्त कर लिया। और यह सिर्फ भारत तक सीमित नहीं था। "1783 में ब्रिटिशों ने चीनी शहर ग्वांगझू के आर्मेनियाई लोगों के घरों में लूटपाट मचाई। हालांकि चीनी अधिकारियों ने आर्मेनियाई लोगों को सुरक्षा का आश्वासन दिया लेकिन इस घटना से आहत अधिकांश आर्मेनियाई मकाऊ और इंडोचाइना में पलायित कर गए।"[21] अंग्रेजों ने न केवल बाजार से आर्मेनियाइयों को बेदखल करना शुरू कर दिया बल्कि खुले तौर पर उनका उत्पीड़न भी किया। ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कंपनी की गंभीर वित्तीय दबिशों और पूर्वाग्रहों के कारण भारत के आर्मेनियाई समुदाय पर समय-समय पर खासा असर पड़ा था।

19वीं सदी समाप्त होते-होते अंग्रेज पूँजी से कड़ी प्रतिस्पर्धा में भारत के आर्मेनियाई व्यापारियों का एक बड़ा हिस्सा दिवालिया हो गया। आर्मेनियाइयों के व्यावसायिक हितों को भारी नुकसान पहुँचा। अधिकांश आर्मेनियाई परिवारों ने अपने व्यवसाय के लिए नए ठिकाने तलाश लिए और वे भारत से पलायित कर बर्मा, होन्ग-कोंग, मलेशिया, इंडोनेशिया सहित यूरोप में जा बसे। किन्तु कुछ परिवार अंग्रेजों के शत्रुतापूर्ण रवैये के बावजूद खुद को बचाए रखने में सफल रहे। और भारत की स्वतंत्रता के बाद तक भी उनका अस्तित्व बना रहा। समय के साथ-साथ उन्होंने नए अवसरों की तलाश की जिसमें जूट, लाख, कोयले की खदाने और बीमा कंपनियाँ जैसे नए धंधे शामिल थे। इसी क्रम में आब्गार एंड को, ईस्ट इन्शुरेन्स यूनियन, सी इन्शुरेन्स एजेंसी या फिर यूनाइटेड शिपिंग कंपनी, हुगली रिवर-शिपिंग कंपनी जहाँ आर्मेनियाई जहाज जोसेफ मानूक, जोहान्स-सार्खिज, आराथून-आब्गार, हृप्सिमे-आन्ना-मार्था, हीरो, एमनेगो जैसी कंपनियों की स्थापना हुई।

भारत में आर्मेनियाई व्यापारी थे और उस वर्ग चरित्र के

अनुसार चढ़ते सूरज का साथ उन्होंने भी दिया था जिसके दुष्परिणाम भी इन्हें भुगतने पड़े थे। डॉ. भास्वती भट्टाचार्य आर्मेनियाई व्यापारियों की गतिविधियों का मूल्यांकन कर लिखती हैं कि आर्मेनियाई व्यापारी भारत और एशिया के अन्य भागों में मौजूदा वाणिज्यिक संरचना के हिस्से थे। "ये भारतीय व्यापारियों के साथ मिलकर व्यापारिक गतिविधियों को अंजाम देते थे जैसा कि बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला ने भी रेखांकित किया था... किन्तु शुरू में भारत में अंग्रेजी कार्यशैली और स्वरूप से प्रभावित ये व्यापारी भविष्य में अपने असली स्वरूप में धोंस जमाती क्रूर अंग्रेजी महत्वाकांक्षाओं से बेखबर थे।"[22] निस्संदेह, कतिपय खोजाओं की गतिविधियों और सम्पूर्ण आर्मेनियाई समुदाय के कारोबार को एक चश्मे से नहीं देखा जाना चाहिए क्योंकि इस समुदाय में अधिकांश व्यापारी परिवारों पर ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कंपनी के जुल्मों का उतना ही असर पड़ा था जितना कि भारतीयों पर। इसका प्रत्यक्ष परिणाम 19वीं शताब्दी के खत्म होते-होते समृद्ध आर्मेनियाई समुदाय का भारत से उजड़ जाना था।

संदर्भ :

1. के.एन. चौधरी, 'द ट्रेडिंग वर्ल्ड ऑफ एशिया एंड द इंग्लिश ईस्ट इण्डिया कंपनी' (1660-1760), 1978, कैंब्रिज, पृ. 137-138
2. सं. रोबर्ट लाउडन, 'इमानुएल कांट, एंथ्रोपोलॉजी फ्रॉम ए प्रग्मटिक पॉइंट ऑफ व्यू', कैंब्रिज टेक्स्ट्स इन द हिस्ट्री ऑफ फिलोसोफी, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2006, पृ. 222
3. देखें शुशानिक खाछिक्यान, 'द आर्मेनियन ट्रेड ऑफ न्यू जुल्फा एंड इट्स कमर्शियल-इकनोमिक टाइस विथ रशिया ड्यूरिंग द सेवेंथिंथ एंड एग्थिथ सेंच्युरिज', (Nor Jughayi Hay Vacharak-anutyun'e yev nra arevtratntesakan kaper'e Rusastani het XVII-XVIII darerum), पब्लिशिंग हाउस ऑफ द अकादमी ऑफ साइंसेज ऑफ आर्मेनियन एस.एस.आर., 1988, येरेवान
4. भास्वती भट्टाचार्य, 'आर्मेनियन यूरोपियन रिलेशनशिप इन इंडिया, (1500-1800) नो आर्मेनियन फाउंडेशन फॉर यूरोपियन एम्पायर', जर्नल ऑफ द सोशल एंड इकनोमिक हिस्ट्री ऑफ द ओरिएंट, खंड 48, सं 2, 2005, पृ. 281 में उल्लेखित सं. एस. सी. हिल, 'बंगाल इन 1756-57, ए सिलेक्शन ऑफ पब्लिक एंड प्राइवेट पेपर्स डीलिंग विथ द अफेयर्स ऑफ द ब्रिटिश इन बंगाल ड्यूरिंग द रेग्न ऑफ सिराजुद्दौला' से उद्धृत
5. आ. आब्राहाम्यान, 'ब्रीफ आउटलाइन ऑफ द हिस्ट्री ऑफ आर्मेनियन डायस्पोरा कोम्मुनिटिज', खंड 1, आर्मेनियन अकादमी ऑफ साइंसेज, 1964, येरेवान, पृ. 447
6. प्रतिष्ठित व्यापारी खोजा पेत्रूस उस्कान (1681 - 1751) ने मद्रास में विख्यात मार्मलॉन्ग पुल और सेंट थॉमस पर्वत के तीर्थस्थल पर ले जाने के लिए सीढ़ियों का निर्माण करवाया था।
7. आ. आब्राहाम्यान, 'ब्रीफ आउटलाइन ऑफ द हिस्ट्री ऑफ आर्मेनियन डायस्पोरा कोम्मुनिटिज', खंड 1, आर्मेनियन अकादमी ऑफ साइंसेज, 1964, येरेवान, पृ. 458
8. तपन मोहन चट्टोपाध्याय, 'प्लासी का युद्ध', भारतीय ज्ञानपीठ, 2014, दिल्ली, पृ. 26
9. वही, पृ. 44-45
10. सं. सुशिल चौधरी, केराम केवोन्यान, 'आर्मेनियन्स इन बंगाल ट्रेड एंड पॉलिटिक्स इन द एग्थिथ सेंचुरी', प्र. एडिशन्स ऑफ द हाउस ऑफ ह्यूमन साइंसेज, 2007, पेरिस, पृ. 149-167
11. मेस्रोव्ब जैकब सेठ, 'आर्मेनियन्स इन इण्डिया : फ्रॉम द अर्लिअस्ट टाइम्स टू द प्रेजेंट डे', एशियन एजुकेशनल सर्विसेज, 2005, नई दिल्ली, पृ. 293-295
12. जॉन ब्रूस, 'एन्नल्स ऑफ द ऑनरेबल ईस्ट इंडिया कंपनी फॉर द इयर, 1688-1689 टू 1707-1708', खंड 3, 1810, लंदन, पृ. 140-141
13. लेवांत पश्चिमी एशिया के पूर्वी भूमध्य क्षेत्र के एक बड़े भूभाग को कहा जाता है।
14. सं. वाहे बालादूनी, मार्गरिट मेकपीस, 'आर्मेनियन मर्चेंट्स ऑफ सेवेंथिंथ एंड अर्ली एग्थिथ सेंचुरिज : इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी सोर्सेज', अमेरिकन फिलोलोजिकल सोसाइटी, 1998, फिलाडेल्फिया, xxi-xxii
15. वहीं, xxiii
16. मेस्रोव्ब जैकब सेठ, 'आर्मेनियन्स इन इण्डिया : फ्रॉम द अर्लिअस्ट टाइम्स टू द प्रेजेंट डे', एशियन एजुकेशनल सर्विसेज, 2005, नई दिल्ली, पृ. 233-239
17. सं. वाहे बालादूनी, मार्गरिट मेकपीस, 'आर्मेनियन मर्चेंट्स ऑफ सेवेंथिंथ एंड अर्ली एग्थिथ सेंचुरि : इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी सोर्सेज', अमेरिकन फिलोलोजिकल सोसाइटी, 1998, फिलाडेल्फिया, xxii
18. वहीं, xxiii-xxiv
19. ईसाई प्रतीक क्रूस को थाम रखे मेमने का चित्र।
20. के.एल. बालायान, 'द आर्मेनियन फ्लैग इन द इंडियन ओशियन इन द सेवेंथिंथ-एग्थिथ सेंचुरिज', फंडामेंटल आर्मेनोलोजी, सं. 1, (3), 2016 में उल्लेखित 'रिकार्ड्स ऑफ फोर्ट जॉर्ज, डिस्पैचेज टू इंग्लैंड, 1733-1735 (मद्रास), पृ. 42 (पब्लिक डिस्पैचेज टू इंग्लैंड, खंड-11, पृ. 1-38) से उद्धृत
21. आर. आब्राहाम्यान, 'हिस्ट्री ऑफ आर्मेनियन डायस्पोरा : फ्रॉम मिडिल एजेज अंटिल 1920', 2003, येरेवान, पृ. 431
22. भास्वती भट्टाचार्य, 'आर्मेनियन यूरोपियन रिलेशनशिप इन इंडिया, (1500-1800) नो आर्मेनियन फाउंडेशन फॉर यूरोपियन एम्पायर', जर्नल ऑफ द सोशल एंड इकनोमिक हिस्ट्री ऑफ द ओरिएंट, खंड 48, सं 2, 2005, पृ. 316-317।

❖

शोध छात्रा (हिंदी), जेएनयू
ई-77, तीसरी मंजिल, अमर कालोनी, लाजपत नगर
नई दिल्ली-110024, मोबाइल : 9717958077
ई-मेल : mane.jnu2013@gmail.com

जन आंदोलन की 'कर्मभूमि'

— डॉ. हरीन्द्र कुमार

कर्मभूमि में गाँव का गरीब किसान और शहर का दलित वर्ग जन आंदोलनों का प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं। इन आंदोलनों के चित्रण में अप्रत्यक्ष रूप से 1929 का लगानबंदी आंदोलन और 'सविनय आज्ञा भंग' आंदोलन का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। प्रेमचंद ने इस उपन्यास में यथार्थ के महत्त्वपूर्ण पहलुओं को परखकर सबसे अधिक बल 'लगान की समस्या' तथा 'शहर और गाँव के गरीब अछूत वर्ग' पर दिया है। नगर में यह आंदोलन पं. मधुसूदन की कथा में कुछ 'अछूतों' द्वारा भगवान के भक्तों की चरण-पादुकाओं के पास आकर बैठ जाने के अक्षम्य अपराध को लेकर प्रारंभ होता है। भक्तों की जूतियों के पास बैठकर भगवान की कथा-श्रवण के प्रसाद के रूप में स्वभावत: उन्हें जूते ही मिल सकते थे।

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है—यह एक सत्य है, परंतु जब हम पश्चिमी यूरोप से लेकर जापान तक विश्व के अन्य देशों को देखते हैं तो पाते हैं कि भारत पूरे गोलार्ध में सबसे प्राचीन एवं टिकाऊ लोकतंत्र है, यह एक दूसरा सत्य है। तीसरी बात यह है कि जब हम संसार की प्राचीन सभ्यताओं जैसे चायनीज सिविलाइजेसन्स, मैसोपनी-अपनी आस्था की डुबकी लगाने के लिए जाते हैं तो वहाँ की आधारभूत सांस्कृतिक संरचनाओं को समझ पाते हैं।

प्रेमचंद द्वारा रचित 'कर्मभूमि' उपन्यास जब साहित्य जगत के प्रकाश में आया तब देश अपनी आज़ादी की लड़ाई के कठिन दौर से गुज़र रहा था। यह उपन्यास प्रेमचंद ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' से ठीक पहले 1932 में लिखा। कर्मभूमि में स्वाधीनता आंदोलन की समस्याओं को लेकर प्रेमचंद ने अपने गहन आत्ममंथन का परिचय दिया है। राजनीति में महात्मा गाँधी और साहित्य के क्षेत्र में यह युग प्रेमचंद युग के नाम से भी अभिहित किया जाता है। ''गोल मेज़'' सम्मेलनों के जिन आयोजनों की शुरुआत हुई वे 'कर्मभूमि' के कथानक में अनुभूत किए जा सकते हैं। उपन्यासकार वर्तमान राजनीति और इतिहास ही अपनी रचना का आधार नहीं बनाता अपितु वह उन घटनाओं के साथ भविष्यद्रष्टा बन जाता है। 'कर्मभूमि' उपन्यास में ब्रिटिश सरकार के लंदन में शुरू गोलमेज सम्मेलन को कथासूत्र में अनुस्यूत कर दिया गया है। ''पहला गोलमेज सम्मेलन नवंबर 1930 में आयोजित किया गया जिसमें देश के प्रमुख नेता शामिल नहीं हुए। इसी कारण अंतत: यह बैठक निरर्थक साबित हुई। जनवरी 1931 में गाँधी जी को जेल से रिहा किया गया। अगले ही महीने वायसराय के साथ उनकी कई लंबी बैठकें हुई। इन्हीं बैठकों के बाद ''गाँधी इर्विन समझौते पर सहमति बनी जिसकी शर्तों में सविनय अवज्ञा आंदोलन को वापस लेना, सारे क़ैदियों की रिहाई और तटीय इलाकों में नमक उत्पादन की अनुमति देना शामिल था। रैडिकल राष्ट्रवादियों ने इस समझौते की आलोचना की क्योंकि गाँधीजी वायसराय से भारतीयों के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता का आश्वासन हासिल नहीं कर पाये थे।''[1]

'कर्मभूमि' उपन्यास में जनता जहाँ एक ओर अपने अधिकार के प्रति जागरूक होती जा रही थी वहीं दूसरी ओर संघर्ष का नेतृत्व करने वाले समझ नहीं पा रहे थे कि इसे जारी रखना राष्ट्र के हित में होगा अथवा विदेशी हुकूमत उन्हें अपने स्वार्थ साधन का ज़रिया बना रही है। ''दूसरा गोलमेज सम्मेलन 1931 के आख़िर में लंदन में आयोजित हुआ। उसमें गाँधी कांग्रेस का नेतृत्व कर रहे थे। गाँधी जी का कहना था कि उनकी पार्टी पूरे भारत का प्रतिनिधित्व करती है। इस दावे को तीन पार्टियों ने

चुनौती दी। मुस्लिम लीग का कहना था कि वह मुस्लिम अल्पसंख्यकों के हित में काम करती है। राजे-रजवाड़ों का दावा था कि कांग्रेस का उनके नियंत्रण वाले भूभाग पर कोई अधिकार नहीं है। तीसरी चुनौती तेज़-तर्रार वक़ील और विचारक बी॰आर॰ अम्बेडकर की तरफ़ से थी जिनका कहना था कि गाँधी जी और कांग्रेस पार्टी निचली जातियों का प्रतिनिधित्व नहीं करते।''[2] इसी सम्मेलन के पश्चात् गाँधी जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ कर दिया।

कर्मभूमि में जन आंदोलन के यही तीन विषय भी रहे। अछूत वर्ग का कहना है-''कहाँ जाएँ, हमें कौन पढ़ाए। मदरसे में कोई जाने तो देता नहीं। एक दिन दादा हम दोनों को लेकर गये थे। पंडित जी ने नाम लिख लिया; पर हमें सबसे अलग बैठाते थे; सब लड़के हमें 'चमार-चमार' कहकर चिढ़ाते थे। दादा ने नाम कटा लिया।''[3] जब शांति कुमार इन्हीं अछूतों से कहते हैं - ''क्या तुम ईश्वर के घर से गुलामी करने का बीड़ा लेकर आये हो? तुम तन-मन से दूसरों की सेवा करते हो; पर तुम गुलाम हो। तुम्हारा समाज में कोई स्थान नहीं। तुम समाज की बुनियाद हो। तुम्हारे ही ऊपर समाज खड़ा है पर तुम अछूत हो। तुम मंदिरों में नहीं जा सकते। ऐसी अनीति इस अभागे देश के सिवा और कहाँ हो सकती है। क्या तुम सदैव इसी भाँति पतित और दलित बने रहना चाहते हो।''[4] यह कथन इतिहास के उसी पन्ने को प्रमाणित करता है जिसमें एक समूह अपने ही देश में अपने ही लोगों से लड़ाई लड़ रहा है और जन आंदोलन की तैयारी कर रहा है। प्रेमचंद ने शांतिकुमार के माध्यम से उस समय के प्रख्यात चिंतक एवं विचारक बाबा साहेब अम्बेडकर के विचारों को अभिव्यक्ति दी है।

''आधुनिक भारत के इतिहास में सन् 1932 के सितंबर मास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। दलित जातियों को अलग से वोट देने के अधिकार के विरोध में गाँधी जी ने यरवदा जेल में आमरण अनशन की घोषणा कर दी। यह ऐतिहासिक अनशन 20 सितंबर को आरंभ हुआ। तेजप्रताप सप्रू, राजा जी और अम्बेडकर आदि नेताओं के प्रयत्नों से दलित जातियों से समझौता होने पर अनशन समाप्त हुआ। यह समझौता 'यरवदा करार' के नाम से जाना जाता है। वस्तुपरक दृष्टि से देखा जाए तो मानना पड़ेगा कि इस प्रकार के अनशनों या समझौतों से दलित जातियों का प्रश्न हल नहीं हो सकता। अस्पृश्यता का कारण सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में खोजा जाना चाहिए। पर इसमें संदेह नहीं कि गाँधी जी का यह उपाय एक सार्वजनिक बुराई के प्रति नाटकीय ढंग से देश का ध्यान आकर्षित करने में अवश्य सफल हो सका। सन 1932 में प्रकाशित प्रेमचंद के 'कर्मभूमि' उपन्यास की पृष्ठभूमि युक्त प्रांत का लगानबंदी-आंदोलन और अछूतोद्धार की समस्या है।'' 'कर्मभूमि' राजनीतिक दृष्टि से गाँधीवादी मूल्यों की कथा है।

'कर्मभूमि' में प्रेमचंद ने प्रथम बार इतने व्यापक स्तर पर अछूतोद्धार की समस्या को तत्कालीन राजनैतिक परिदृश्य के साथ उठाया है। ''छूआछूत की समस्या हिंदू-समाज में व्याप्त उस सामाजिक वैषम्य और भेदभाव की सूचक है जो शताब्दियों से धर्म के नाम पर उसका एक अनिवार्य अंग बना हुआ है। हिंदू समाज ने अपने माथे पर लगे हुए इस कलंक को धोने का प्रयास न किया हो-ऐसी बात नहीं है। स्वामी रामानंद से लेकर महात्मा गाँधी ज्ञात-अज्ञात अनेक समाज-सुधारक और धर्माचार्य अपने-अपने ढंग से इस विषय में समस्या के सुधार की दिशा में प्रयत्न करते आ रहे हैं।'' वर्तमान समय में 'सामाजिक समरसता' के रूप में इस कोढ़ को समाप्त करने का प्रयास जारी है। यह समरस समाज निश्चित रूप से नवीन भारत का निर्माण करने में सहायक सिद्ध होगा।

महात्मा गाँधी के भारतीय राजनीतिक मंच पर सूर्य की भांति उदित होने के पश्चात् साहित्य में उनकी सत्य, अहिंसा, सदाचार, सत्याग्रह, छुआछूत विरोध, ग्राम सुधार और स्वदेशी विचारधारा का प्रभाव लक्षित होता है। प्रेमचंद ने जहाँ गाँधीवादी विचारों और आदर्शों से प्रभावित होकर उपन्यास की रचना की वहीं अपने चिंतन, जीवनानुभव और ज्ञानार्जन से यथार्थवादी दृष्टि का भी विकास किया। प्रेमचंद हिंदी साहित्य में 'जनपक्षधरता' को स्थान देने वाले महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार हैं।

कर्मभूमि में रचनाकार ने स्वाधीनता आंदोलन की समस्याओं का गहन आत्ममंथन किया है। इस उपन्यास का प्रारंभ हमारे शिक्षालयों के द्वारा 'फीस वसूली' से हुआ है। प्रेमचंद ने कर्मभूमि में परतंत्र भारत में इस घटना को पश्चिमी सभ्यता से जोड़ते हुए लिखा-'पश्चिमी सभ्यता की बुराइयाँ हम सब जानते ही हैं—एक तो यह तालीम ही है। जहाँ देखो वहीं दुकानदारी। अदालत की दुकान, इल्म की दुकान, सेहत की दुकान।[5] वर्तमान स्वतंत्र भारत में आर्थिक उदारीकरण बनाम बाजारवाद की नीति इसी सभ्यता का परिणाम है।

कर्मभूमि में गाँव का गरीब किसान और शहर का दलित वर्ग जन आंदोलनों का प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं। इन आंदोलनों के चित्रण में अप्रत्यक्ष रूप से 1929 का लगानबंदी आंदोलन और 'सविनय आज्ञा भंग' आंदोलन का प्रभाव स्पष्ट

दिखाई देता है। प्रेमचंद ने इस उपन्यास में यथार्थ के महत्त्वपूर्ण पहलुओं को परखकर सबसे अधिक बल 'लगान की समस्या' तथा 'शहर और गाँव के गरीब अछूत वर्ग' पर दिया है। नगर में यह आंदोलन पं. मधुसूदन की कथा में कुछ 'अछूतों' द्वारा भगवान के भक्तों की चरण-पादुकाओं के पास आकर बैठ जाने के अक्षम्य अपराध को लेकर प्रारंभ होता है। भक्तों की जूतियों के पास बैठकर भगवान की कथा-श्रवण के प्रसाद के रूप में स्वभावत: उन्हें जूते ही मिल सकते थे। अत: भगवान के मंदिर में, भगवान के भक्तों के हाथों, भगवान के भक्तों पर पादुका प्रहार होने लगा। कर्मभूमि का यह वाक्य प्रेमचंद का अनुप्रास प्रेम नहीं है उसके हृदय की तीखी वेदना और कसक का परिचायक है।[6]

उपन्यास के मुख्यपात्र अमरकान्त महाजन लाला समरकान्त के पुत्र हैं। अमरकांत शिक्षा प्राप्त कर रहा होता है और इसी बीच में सुखदा से उसका विवाह हो जाता है। वह सादा तो था किंतु कई बार उसमें कर्म और विचारों का मेल दिखाई नहीं पड़ता है। 'चरखा चलाना'[7] 'चोरी से कोई काम नहीं करना चाहना'[8] उसे गाँधीवादी मूल्यों के निकट ले आते हैं। 'चरखा रुपये के लिए नहीं चलाया जाता, 'यह आत्मशुद्धि का एक साधन'[9] मानने वाले अमरकान्त का राजनैतिक विकास धीरे-धीरे होता है। 'देशवासियों' के साथ शासक मंडल की कोई अनीति देखकर उसका खून खौल उठता है। कॉलेज के प्राध्यापक डॉ. शान्तिकुमार के साथ अमरकान्त कुछ छात्रों के साथ देहातों की आर्थिक दशा की जाँच पड़ताल करने निकलता है। अमरकान्त कहता है -''मैंने कभी अनुमान न किया था कि हमारे कृषकों की दशा इतनी निराशाजनक है। किसानों की गरीबी और बदहाली उसके राष्ट्रीय विचारों को और भी दृढ़ता प्रदान करती है। अमरकान्त यदि कहीं 'पराभूत' होता है तो वह सुखदा के सामने। प्रारंभ में सुखदा उसके 'निर्जीव आदर्शवाद को पाखंडियों का पाखंड समझती है' लेकिन उसके घर छोड़कर चले जाने के बाद स्वयं भी दलित आंदोलन और गरीबों के घर बनवाने हेतु आंदोलन में बढ़-चढ़कर जनआंदोलनों की अगुवाई करते हुए जेल-यात्रा करती हैं। उनके साथ इस आंदोलन में पठनिन, सकीना, मुन्नी, सलोनी और नैना सक्रिय रूप से भागीदारी करती हैं।

'कर्मभूमि' के लाला समरकान्त जो पक्के गो भक्त थे 'केवल लेन-देन' करते थे। उनकी दृष्टि में 'धर्म और चीज है, रोजगार और चीज़'। अमरकान्त को जीवन की व्यावहारिकता का पाठ पढ़ाते हुए लाला समरकान्त कहते हैं-''इतने बड़े-बड़े हाकिम हैं, बताओ कौन घूस नहीं लेता? एक सीधी सी नकल लेने जाओ तो एक रुपया लग जाता है। बिना तहरीर लिए थानेदार रपट नहीं लिखता। कौन वकील है जो झूठे गवाह नहीं बनाता? लीडरों ही में कौन है जो चंदे के रुपये में नोच-खसोट न करता हो? माया पर तो संसार की रचना हुई इससे कोई कैसे बच सकता है?''[10] इन्हीं लाला समरकान्त का 'कर्मभूमि' उपन्यास के अंत में प्रेमचंद हृदय परिवर्तन करवा देते हैं। हृदय परिवर्तन का मूल आधार है जनआंदोलन। दलितों के सक्रिय प्रतिरोध ने मंदिर के द्वार सभी के लिए खुलवा दिये। जो लाला समरकान्त दलितों का मंदिर में प्रवेश वर्जित मानते थे वही सुखदा के समीप आकर ऊँचे स्वर में बोलते हैं -''मंदिर खुल गया है। जिसका जी चाहे दर्शन करने जा सकता है। किसी के लिए रोक-टोक नहीं है।''

यही दलित वर्ग गाँव में लगानबंदी का विरोध करता दिखाई देता है। इस लगान बंदी के विरोध में गूदड़ चौधरी, सलोनी, मुन्नी, अमरकान्त और आत्मानन्द एक नये जनआंदोलन को प्रारंभ करते हैं। असामियों को कभी ठाकुर जी के जन्म, ब्याह, झूला और जलविहार के अवसर पर महन्त जी को बेगार, भेंट, न्यौछावर, पूजा चढ़ावा आदि नामों से दस्तुरी चुकानी पड़ती थी। चुकाने वाले अधिकांश 'नीच जातियों के लोग' थे। इस कृषि प्रधान देश के किसान-मजदूर स्वामी आत्मानंद के सभापतित्व में एक जुट हो जाते हैं। भोला चौधरी और गूदड़ चौधरी सामन्ती महन्त जी को अपना मालिक मानकर अनुनय-विनय की भाषा बोलते हैं-''महन्त जी हमारे मालिक हैं, अन्नदाता हैं, महात्मा हैं। हमारा दुख सुनकर जरूर से जरूर उन्हें हमारे ऊपर दया आयेगी।'' जब महन्त विनय की भाषा नहीं समझते तो यह दलित-किसान वर्ग हिंसक आंदोलन पर विवश होता है। डॉ॰ रामविलास शर्मा ऐसे आंदोलन के लिए भारतेंदु का स्मरण करते हुए आधुनिक हिंदी साहित्य की राजनीतिक विरासत में लिखते हैं-''भारतेंदु ने अपने राजनीतिक अनुभव का सारत्व बतलाते हुए बलिया वाले अपने प्रसिद्ध व्याख्यान में जनता से कहा था कि वह राजा-रईसों का भरोसा न करके अपनी शक्ति का भरोसा करे। सामाजिक उन्नति के लिए निष्क्रिय प्रतिरोध का रास्ता न बतलाकर सक्रिय प्रतिरोध का मार्ग दिखलाते हुए कहा है-'हम इससे बढ़कर क्या कहे कि जैसे तुम्हारे घर में कोई पुरुष व्यभिचार करने आवे तो जिस क्रोध से उसको पकड़कर मारोगे और जहाँ तक तुम्हारे में शक्ति होगी। उसका सत्यानाश करोगे, उसी तरह इस समय जो-जो बातें तुम्हारे उन्नति-पथ में काँटा हों,

उनकी जड़ खोदकर फेंक दो। कुछ मत डरो। जब तक सौ-दो-सौ मनुष्य बदनाम न होंगे, जाति से बाहर न निकाल दिए जाएँगे, दरिद्र न हो जाएँगे, कैद न होंगे वरंच जान से न मारे जाएँगे तब तक कोई भी देश नहीं सुधेरगा।''[11] कर्मभूमि में शांतिकुमार कहता है-''तुम्हारे ऊपर गोलियों की वर्षा ही क्यों न हो। तुम ज़रा-ज़रा सी बात के पीछे अपना सर्वस्व गंवा देते हो, जान दे देते हो, यह तो धर्म की बात है और धर्म हमें जान से भी प्यारा होता है। धर्म की रक्षा सदा प्राणों से हुई है और प्राणों से होगी।[12] यही नहीं सुखदा भी पुलिस वालों के सामने खड़ी होकर ललकारती हुई बोली-''भाइयों भागने का समय नहीं, छाती खोलकर सामने आने का समय है। दिखा दो कि तुम धर्म के नाम पर किस तरह प्राणों को होम करते हो। धर्मवीर ही ईश्वर को पाते हैं। भागने वालों की कभी विजय नहीं होती।''[13]

लाला समरकान्त गाँव पहुँचकर सलीम से मिलकर रास्ता निकालते हैं। जन आंदोलन की ताकत सलीम का हृदय परिवर्तन करवा देती है। प्रेमचंद ने अंगरेजी राज में भारतीयों के साथ होने वाले जुल्म की दास्तान 'कर्मभूमि' में प्रस्तुत की है। प्रेमचंद के जीवन की 'कर्मभूमि' दलित गरीब जन और किसान वर्ग था। आज की राजनीति का प्रमुख आधार यही दलित किसान और गरीब जन है। प्रेमचंद स्वतंत्र भारत की सरकार के काम-काज को देखने के लिए जीवित नहीं बचे किंतु 'जनआंदोलन' का मार्ग साहित्य के माध्यम से जन-जन तक पहुँचा गए। परिणामत: आजादी के 73 वर्षों के पश्चात् भी स्वतंत्रता से 'स्वराज' भ्रष्टाचार-मुक्ति, स्वदेशी और कालाधन वापसी जैसी विकराल समस्याओं से लड़ने के लिए एक हथियार प्रदान कर गये-'जनआंदोलन'। आजादी के बाद स्वतंत्र भारत में स्वराज्य, स्वदेशी और जनलोकपाल ने मौजूदा सत्ता की नींव हिला दी थी। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को स्थापित कर नया मार्ग दिखाने वाली सत्ता ने एक नए स्वदेशी आंदोलन को जन्म दिया। 'अन्ना आंदोलन' आजादी के बाद सबसे बड़ा 'जेल भरो आंदोलन' साबित हुआ। यहाँ तक कि शांति कुमार जैसे वर्ग ने 'खुले मैदान में न आकर' पीछे से इस आंदोलन का समर्थन किया। परिणामत: आज इन्हीं गरीब-किसान-दलित और 'आम जन' ने जन-आंदोलनों की कर्मभूमि पर सत्ता के महानायक खड़े कर दिये हैं। प्रेमचंद ने 'गबन' उपन्यास में प्रश्न उठाया है कि स्वाधीन भारत में स्वराज का रूप क्या होगा। 'गबन' का देवीदीन जनता का उद्धार करने वालों से कहता है-'गरीबों का घर लूटकर विलायत का घर भरना तुम्हारा काम है। इसीलिए तुम्हारा इस देश में जन्म हुआ है। साहब, सच बतलाओ, जब तुम सुराज का नाम लेते हो, उसका कौन सा रूप तुम्हारी आँखों के सामने आता है। तुम भी बड़ी बड़ी तलब लोगे, तुम भी अंग्रेज़ों की तरह बंगलों में रहोगे, पहाड़ों की हवा खाओगे, अंग्रेज़ी ठाठ बनाए घूमोगे, इस सुराज से देश का क्या कल्याण होगा। +++ जब तुम्हारा राज नहीं है, तब तो तुम भोग-विलास पर इतना मारते हो, जब तुम्हारा राज हो जाएगा, तब तो तुम ग़रीब को पीसकर पी जाओगे।''[14]

आजाद हिंदुस्तान में भी प्रेमचंद के इस कथ्य ने जीवंतता प्रदान कर दी है-'सत्ता का मूल चरित्र निरंकुश और दमनकारी होता है। परतंत्रता और स्वतंत्रता उसमें कोई मायने नहीं रखती। इसी दमन और अत्याचार से सक्रिय प्रतिरोध का उपन्यास 'कर्मभूमि' एक 'क्लासिक' कृति है। यही प्रेमचंद की स्वतंत्रता पूर्व आंदोलन और समझौतों की 'कर्मभूमि' है।

संदर्भ :

1. भारतीय इतिहास के कुछ विषय, भाग-3, एनसीईआरटी, पृष्ठ-360 संस्करण 2007
2. वही, पृष्ठ-147
3. वही, पृष्ठ-199
4. प्रेमचंद और गाँधीवाद-रामदीन गुप्त, हिंदी साहित्य संसार, पटना, संस्करण 19, पृष्ठ-122,
5. कर्मभूमि, प्रेमचंद, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2004, पृष्ठ 21
6. प्रेमचंद और गाँधीवाद, रामदीन गुप्त, हिंदी साहित्य संसार, पटना, संस्करण 19, पृष्ठ-242
7. कर्मभूमि, प्रेमचंद, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2004, पृष्ठ-25
8. वही, पृष्ठ-26
9. वही, पृष्ठ-26
10. वही, पृष्ठ-55
11. भाषा सुबोध, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-50
12. कर्मभूमि, पृष्ठ-194
13. वही, पृष्ठ-205
14. भाषा सुबोध राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-53

❖

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हिंदू कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007 मोबाइल : 9810773114

संत सहजोबाई का काव्य-मर्म

— आलोक कुमार पाण्डेय

मध्यकालीन भारतीय समाज में अनेक तरह की जकड़बंदियाँ और वर्जनाएँ मौजूद थीं। इसका प्रमाण एक तरफ इतिहास में मिलता है तो दूसरी तरफ साहित्य में भी दृष्टिगत होता है। इन जकड़बंदियों की पहचान संत कवियों के यहाँ बहुत सूक्ष्म रूप में मिलती है। जब सामंतवाद और राजशाही व्यवस्था का वर्चस्व था उस समय संत कवियों ने उनकी प्रभुता को कोई महत्व नहीं दिया, उनकी व्यवस्था का मजाक उड़ाया था। सिकंदर लोदी द्वारा कबीर को प्रताड़ित करने की किंवदंती इस बात का साक्ष्य प्रस्तुत करती है। सामंतवाद जहाँ सामान्य जनता के लिए तमाम तरह के शोषण का मार्ग निर्मित करता और वर्ग-वैषम्य को बढ़ावा देता है; वहीं स्त्रियों की स्वतंत्रता तथा समानता को समाज के लिए हानिकारक सिद्ध करता है। सहजोबाई के समय में सामंतवाद जीर्ण-शीर्ण अवस्था में विद्यमान था, उसकी जगह नई व्यवस्था (जमींदारी) कायम हो रही थी।

भक्तिकाव्य के विकास में संत कवियों ने अग्रणी भूमिका निभाई है। द्रविड़ (तमिल) प्रदेश से लोक तात्विक भक्ति की जो धारा प्रवाहित हो रही थी वह हिंदी भाषी प्रदेशों में संत कवियों की रचनाओं के माध्यम से जन-जन तक पहुँच सकी। संतों में कबीर, रैदास, दादू, नानक, सुंदरदास और मलूकदास का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। संत कवियों का चिंतन आज से सैकड़ों साल पहले जिस लोकज्ञान, समानता, बंधुता और मानवीयता के धरातल पर खड़ा था, वह आज भी कवियों और आलोचकों को चमत्कृत करता है। मानवतावाद और उनकी प्रश्नाकुलता सहज ही आकर्षित करती है। संत कवियों की बानियों में पहले से चली आ रही सामाजिक रूढ़ियों का तार्किक विरोध और अपनी परंपरा का निर्वाह दोनों साथ-साथ दृष्टिगोचर होते हैं। उन्होंने वर्गगत, वर्णगत और धार्मिक भेदभाव को सामाजिक संरचना का नासूर माना है, उसका विरोध किया है। इन संत कवियों की एक लंबी परंपरा रही है। इन्हीं संत कवियों की परंपरा में सहजोबाई का नाम शामिल है। ऐसा माना जाता है कि उनका जन्म अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। हिंदी साहित्येतिहास के काल-क्रमानुसार उनका समय मध्यकाल के उत्तरार्द्ध (रीतिकाल) का था। उन्होंने अपना परिचय 'सहज प्रकाश' में इस प्रकार दिया है :

हरिप्रसाद की सुता, नाम है सहजोबाई।
ढूसर कुल में जन्म, सदा गुरुचरन सहाई॥
(सहज प्रकाश, पृ. 43)

सहजोबाई के इस कथन से स्पष्ट है कि राजस्थान में पाई जाने वाली ढूसर जाति में उनका जन्म हुआ था। इस पंक्ति में वे अपने गुरु का भी आदरपूर्वक स्मरण करती हैं। संत कविता की एक विशेषता यह भी है कि इसमें गुरुओं के प्रति आदर का भाव एवं उनकी महिमा वर्णित होती है। प्राय: सभी संत कवियों ने अपने गुरु के प्रति विशेष आदर एवं सम्मान का भाव प्रकट किया है। इस परंपरा का निर्वाह कबीर से लेकर सहजोबाई तक ही नहीं आगे के संतों में भी दिखाई पड़ता है।

सहजोबाई ने पारलौकिकता की जगह इहलौकिकता पर अत्यधिक बल दिया है। वे भौतिक जगत पर अधिकाधिक बल देती हैं, इसी कारण ईश्वर को दूसरी श्रेणी में रखती हैं जबकि गुरु को प्राथमिक :

हरिकिरपा जो होय तो, नाहीं होय तो नाहिं।
पै गुरु किरपा दया बिनु, सकल बुद्धि बहि जाहिं॥
(सहज प्रकाश, पृ. 6)

गुरु के प्रति व्यक्त उनके भाव एक तरफ उनकी परंपरा के निर्वाह को व्यक्त करते हैं तो दूसरी तरफ सामाजिक संरचना में आ रही तब्दीली को भी दर्शाते हैं। वे मानती हैं कि यदि ईश्वर की कृपा हो जाए तो ठीक और यदि न हो तो भी कोई बात नहीं है। यह उनके समय की सामाजिक चेतना का परिणाम भी है। भक्त कवियों का बल पारलौकिकता पर अधिक और इहलौकिकता पर कम था। रीतिकाल तक आते-आते इस चिंतन प्रक्रिया में खासा परिवर्तन दिखाई पड़ता है। रीतिकाल में इहलौकिकता पर बल दिया जाने लगा था। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आधुनिकता का बीज इसी युग में अंकुरित हो रहा था। वैश्विक पटल पर छापाखाना का आविष्कार, औद्योगिक क्रांति और मध्यवर्ग का उदय इस युग की प्रमुख घटनाएँ हैं, जिनके कंधे चढ़कर समाज में आधुनिकता का विस्तार हुआ। साहित्य-जगत में भी इसकी सुगबुगाहट महसूस की जाने लगी थी। भौतिक जगत या इहलौकिकता पर जोर आधुनिकता के विकास का एक लक्षण माना जाता है। इस अर्थ संदर्भ में उनकी कविता 'पूर्व-आधुनिक' समाज के भावबोध को व्यक्त करती है।

संत कवियों के यहाँ प्रेम का वर्णन पर्याप्त परिमाण में मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस प्रेम तत्व को सूफियों की देन माना है : "कबीर ने जिस प्रकार एक निराकार ईश्वर के लिए भारतीय वेदांत का पल्ला पकड़ा उसी प्रकार उस निराकार ईश्वर की भक्ति के लिए सूफियों का प्रेमतत्व लिया और अपना निर्गुण पंथ धूमधाम से निकाला (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 42)।" चूँकि सहजोबाई भी निर्गुण संतों की परंपरा में ही शामिल हैं इसलिए उनके प्रेम के उदात्त स्वरूप पर सूफियों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। उनके यहाँ प्रेम के उस उदात्त स्वरूप की अभिव्यंजना हुई है जहाँ पहुँचने के बाद इस जग के सारे विभेद अनायास समाप्त हो जाएँ। वे ऐसी प्रेमोन्मत्त दशा की कल्पना करती हैं जिसकी प्राप्ति के बाद राजा और रंक का विभेद, वर्णगत भेद और जातिगत विभेद समाप्त हो जाएँ :

प्रेम दीवाने जो भए, पलटि गयो सब रूप।
सहजो दृष्टि न आवई, कहा रंक कहा भूप॥

प्रेम दीवाने जो भए, जाति बरन गई छूट।
सहजो जग बौरा कहे, लोग गए सब फूट॥

प्रेम दीवाने जो भए, नेम धरम गयो खोय।
सहजो नर नारी हँसौं, वामन आनंद होय॥
(सहज प्रकाश, पृ. 37)

निश्चित रूप से प्रेम की यह दशा समाज की रूढ़ियों का परिमार्जन करके एक स्वस्थ एवं सुंदर समाज की स्थापना पर बल देती है। ये पंक्तियाँ सामाजिक गैर-बराबरी को मिटाकर समानता एवं बंधुता को स्थापित करने की कामना व्यक्त करती हैं। सहजोबाई की दृष्टि समाज की उस निम्नतम इकाई पर टिकी है जिससे यह जाति-व्यवस्था फलीभूत होती है इसीलिए 'जाति बरन' छोड़ने की बात करती हैं, 'नेम धरम' खोने की बात करती हैं। वे 'प्रेम दीवाने' की बात करती हैं जो जातिगत बंधन तोड़ सकता है। प्रसंगात डॉ. अंबेडकर ने जाति-व्यवस्था के जड़ीभूत होने का मूल कारण सजातीय विवाह को माना है जहाँ प्रेम को प्राय: महत्वहीन माना जाता है। उन्होंने लिखा है कि : "भारत में जातिप्रथा का अर्थ है समाज को कृत्रिम हिस्सों में विभाजित करना, जो रीति-रिवाजों और शादी-व्यवहारों की विभिन्नताओं से बँधे हों।...सजातीय विवाह एकमात्र लक्षण है जो जातिप्रथा की विशेषता है (संपूर्ण वाङ्मय, भाग 1, पृ. 21)।" सहजोबाई अपने काव्य में इसी कारण प्रेम की उस दशा का विवेचन करती हैं, जिसमें पहुँचकर व्यक्ति समाज के कृत्रिम वर्गीकरण को नकार देता है। यह वर्गीकरण समाज में असंतोष और ऊँच-नीच जैसे भेद-भाव को बढ़ावा देता है। वे अपने लोकानुभाव के आधार पर समाज की दु:खती नब्ज की पहचान कर लेती हैं।

मध्यकालीन भारतीय समाज में अनेक तरह की जकड़बंदियाँ और वर्जनाएँ मौजूद थीं। इसका प्रमाण एक तरफ इतिहास में मिलता है तो दूसरी तरफ साहित्य में भी दृष्टिगत होता है। इन जकड़बंदियों की पहचान संत कवियों के यहाँ बहुत सूक्ष्म रूप में मिलती है। जब सामंतवाद और राजशाही व्यवस्था का वर्चस्व था उस समय संत कवियों ने उनकी प्रभुता को कोई महत्व नहीं दिया, उनकी व्यवस्था का मजाक उड़ाया था। सिकंदर लोदी द्वारा कबीर को प्रताड़ित करने की किंवदंती इस बात का साक्ष्य प्रस्तुत करती है। सामंतवाद जहाँ सामान्य जनता के लिए तमाम तरह के शोषण का मार्ग निर्मित करता और वर्ग-वैषम्य को बढ़ावा देता है; वहीं स्त्रियों की स्वतंत्रता तथा समानता को समाज के लिए हानिकारक सिद्ध करता है। सहजोबाई के समय में सामंतवाद जीर्ण-शीर्ण अवस्था में विद्यमान था, उसकी जगह नई व्यवस्था (जमींदारी) कायम हो रही थी। उस समय में पुत्री के जन्म पर किस तरह से परिवार शोकाकुल होता था, इसका उल्लेख सहजोबाई के काव्य में मिलता है। उन्होंने लिखा है :

भया कुटुंबी जब सुख कैसा।
सहजो बंध पड़ै कोई जैसा॥

सुत पुत्री उपजै मरि जावै।
सोच सोचतन मन दुख पावै॥
(सहज प्रकाश, पृ. 27)

उस समाज में होने वाली प्रत्येक घटना पर उनकी पैनी नजर बनी हुई थी। जिस बात को सोचकर कवयित्री का मन दु:खी हो रहा है वह किसी भी संवेदनशील और मानवीयता से सराबोर व्यक्ति के लिए हृदय विदारक घटना है। इसकी चिंता एक संवेदनशील कवि ही कर सकता है। आज का पढ़ा-लिखा शिक्षित समाज भी इस तरह की निर्ममता से पूर्ण गतिविधियों को बढ़ावा दे रहा है। आज उत्तर-आधुनिकता और मशीनीकरण के दौर में यह समस्या और विकराल रूप ग्रहण करती जा रही है। समाज जितना शिक्षित होता गया है उतना ही मानवीय संवेदना के धरातल पर लगातार विपन्न होता चला जा रहा है। जनगणना के मुताबिक लैंगिक असमानता बढ़ती जा रही है। आज दुराचार एवं हिंसा की घटनाएँ जिस अबाध गति से बढ़ रही हैं, उसकी तरफ कवयित्री ने आज से सैकड़ों वर्ष पहले इशारा किया था। जिस परिवार अथवा समाज में लैंगिक समानता न हो, वह समाज चल नहीं सकता। हमारी सामाजिक संरचना में लैंगिक विभेद स्पष्ट रूप से नजर आता है। इसी समाज-व्यवस्था में पुरुष के ऊपर प्राय: वैसा कोई सामाजिक बंधन देखने को नहीं मिलता जैसा स्त्रियों के ऊपर दिखाई पड़ता है। स्त्रियों के ऊपर लादे गए ऐसे सामाजिक बंधनों की कोई सीमा नहीं होती है। ऐसी स्थिति में सुख की कल्पना बेमानी लगती है। जिस बंधन की बात उन्होंने की है वह आज भी लगभग वैसे ही पड़ा हुआ है, केवल उस बंधन का स्वरूप बदला है। आज भी हमारे समाज में यह विद्रूपता मौजूद है कि पुत्री के जन्म लेने से परिवार के सदस्य खुश नहीं होते जबकि वहीं लड़के के जन्म पर बधाव बजता है। तकनीकी व्यवस्था के दुरुपयोग से गर्भ में ही शिशु का लिंग परीक्षण करके उसे मार दिया जा रहा है। ऐसी स्थिति में सहजोबाई का यह कथन बेहद मार्मिक लगता है कि लड़कियाँ जन्म तो ले रही हैं लेकिन असमय काल के गाल में समा जा रही हैं, यह सोचकर ही मन दु:खी हो रहा है। उन्होंने अपने समाज के उन लोगों को अत्यंत घृणित माना है, जिन्होंने पुत्र-प्राप्ति की कामना व्यक्त की है :

जा की रहै पुत्र में आसा।
सूवर जन्म नीच घर बासा॥
(सहज प्रकाश, पृ.23)

उनका मानना है कि वे लोग नीच हैं जो केवल पुत्र प्राप्ति की कामना करते हैं। जाहिर बात है कि इस प्रकार से पुत्र की अभिलाषा रखने वाले लोग कहीं-न-कहीं एक प्रकार के लैंगिक विषमता का माहौल तैयार कर रहे होते हैं। यदि वे केवल पुत्र की चाह रखते हैं और पुत्री का जन्म हो जाए तो यह उनके लिए विषाद का विषय हो जाता है। यह अनुमान लगाना गलत नहीं होगा कि ऐसी मानसिकता वाले लोग स्वयं पुत्री को मार देते हैं, जिसकी तरफ इशारा करते हुए सहजोबाई कहती हैं 'सुत पुत्री उपजै मरि जावै'। यह सामान्य मौत नहीं है और यही कारण है कि इस विषय में सोच-सोच कर उनका मन अत्यंत दु:खी होता है। ऐसे कुकृत्य करने वाले तथा इस तरह की मानसिकता वाले लोगों को वे 'सूवर जन्मा' और 'नीच' कहती हैं।

सहजोबाई के यहाँ कविता के विविध रूप विद्यमान हैं। उनके काव्य में अपने जीवन का संघर्ष छिपा हुआ है। जिस प्रकार से संघर्ष और स्वतंत्रता की चाह कृष्ण भक्त कवियों में मीराबाई के यहाँ विद्यमान है; उसी तरह से संत कवियों में सहजोबाई के यहाँ है। जिस तरह की यातना उन्हें अपने कुटुंब अथवा परिवार से मिली थी उसे उन्होंने अपनी कविता में प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा है :

दोयज धंधा जगत का लागि रहै दिन रैन।
कुटुंब महा दुख देत है कैसे पावै चैन॥
(सहज प्रकाश, पृ. 44)

यह वेदना और कष्ट सहकर सहजोबाई ने अपने काव्य की सर्जना की है। माना जाता है कि हमारा जीवन ही हमारी चेतना को निर्मित करता है। इसलिए उनके काव्य का फलक उनके चिंतन के साथ-साथ उनके जीवन दर्शन का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

मध्यकालीन भक्तकवियों ने भक्ति के धरातल पर किसी भी तरह के ऊँच-नीच अथवा भेद-भाव को स्वीकार नहीं किया है। उन्होंने ईश्वर के रूप की सार्थकता पर जोर दिया है एवं उसे सर्वसुलभ बताया है। उन्होंने ईश्वर के नाना भेद को एक व्यक्ति के विभिन्न भेष के रूप में वर्णित किया है। सहजोबाई का मानना है कि ईश्वर जाति पाति, राजा प्रजा एवं ऊँच नीच के भेद से परे है। ईश्वर सबके लिए समान है :

सब घट ब्यापक राम है, देही नाना भेष।
राव रंक चंडाल घर, सहजों दीपक एक॥
(सहज प्रकाश, पृ. 38)

सहजोबाई ने राजा, रंक और चांडाल को भक्ति के धरातल पर समान माना है। भक्तिकाव्य के चिंतन का केंद्रबिंदु ही यही है कि ईश्वर सबके लिए सुलभ है, भक्त और ईश्वर के बीच संवाद के लिए किसी माध्यम की जरूरत नहीं है। सहजोबाई का चिंतन

उसी परंपरा से होते हुए विकसित हुआ है जिसमें कबीर और रैदास जैसे संत कवि हुए हैं, इसलिए उनकी चिंतनधारा उन सभी मूल्यों को स्थापित करने का उद्यम करती है जिन्हें सैकड़ों वर्ष पहले इन संत कवियों ने स्थापित करने का प्रयास किया था।

समाज का सबसे भावुक और विचारशील प्राणी साहित्यकार होता है। उसके हृदय पर समाज की प्रत्येक गतिविधि, प्रत्येक धड़कन का असर पड़ता है और यह गतिविधि, यह धड़कन उसकी लेखनी के जरिए अभिव्यक्त होती है। सहजोबाई के समय में अंग्रेजों का भारत में बड़ी तेजी से प्रसार हो रहा था। मुगल सत्ता का आधिपत्य धीरे-धीरे क्षीण होने लगा था। अंग्रेजों के भारत आने के पश्चात भारतीय जनता का शोषण पहले की अपेक्षा कई गुना बढ़ गया। अनेक तरह के कर (Tax) सामान्य नागरिक और किसान पर लाद दिए गए। उस कर या लगान को समय पर जमा न करने पर आम जनता को जानवरों की तरह पीटा जाता था। एक तरफ मनमाने कर की व्यवस्था ने सामान्य जनता का जीना बेहाल कर रखा था वहीं दूसरी तरफ असमय अकाल पड़ जाता था जिससे आम जन-जीवन तबाह हो जाता था। लोग भूख से बिलबिला उठते थे। अकाल तो प्राकृतिक होते थे लेकिन कई बार सरकार की मंशा से इसे निर्मित भी किया जाता था। 'बंगाल का अकाल' इन्हीं अकालों में से एक है जिसे 'मानवनिर्मित अकाल' कहा गया। मध्यकालीन भारत पर जिन लोगों ने काम किया है, उन्होंने यहाँ पड़ने वाले अकाल का उल्लेख आवश्यक रूप से किया है। मध्यकालीन भारत में पड़ने वाले दुर्भिक्ष के बारे में आर्थिक इतिहासकार डब्लू. एच. मोरलैंड ने वान ट्विस्ट के हवाले से लिखा है : "जैसे-जैसे दुर्भिक्ष बढ़ा, लोगों ने शहरों और गाँवों को छोड़ना शुरू कर दिया और असहाय होकर इधर से उधर घूमने लगे।...माथे में गहरी धँसी आँखें, पीले और कीचड़ से सने होंठ, कठोर त्वचा, जिनमें से हड्डियाँ दिखाई पड़ती हैं, खाली और लटकी हुई थैली जैसा पेट, उँगलियों तथा घुटनों की उभरी हुई हड्डियाँ। कोई तो भूख के मारे क्रंदन और आर्तनाद कर रहा है जबकि दूसरा भूमि पर मरने की दयनीय स्थिति में पड़ा हुआ है। जहाँ भी तुम जाओगे तुम्हें शवों के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा (अकबर से औरंगजेब तक, पृ. 242)।" जब समाज इस तरह से जूझ रहा हो तब यह कैसे संभव है कि किसी व्यक्ति को भरपेट भोजन नसीब हो। अकाल की ऐसी स्थिति में सरकार का रवैया आम जनता के प्रति अत्यंत अमानवीय था। अकाल पड़ने के बावजूद भी कर वसूला जाता था। ऐसी स्थिति में भूख से बेहाल सामान्य नागरिक की स्थिति को सहजोबाई ने कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है :

पेट बड़ा मुख सुई समाना।
भूख प्यास में फिरै दिवाना॥
भटकत फिरै ठौर नहिं पावै।
लागत फिरै जूतियाँ खावै॥
(सहज प्रकाश, पृ. 31)

भूख के कारण आम जनता की हालत कुछ ऐसी हो गई है कि उसका मुख सुखकर सुई के समान छोटा और नुकीला हो गया है। वह अपनी भूख और प्यास मिटाने के लिए न जाने कितने घरों में गया है लेकिन कोई उसे खाने के लिए भोजन नहीं दे रहा है। कुपोषित बच्चे की एक पहचान यह भी है कि उसका पेट आवश्यकता से अधिक बढ़ जाता है, लेकिन हाथ-पाँव और मुख एकदम पतला हो जाता है। जब अकाल में मनुष्य ही मनुष्य का भक्षण करने पर तुला हुआ है तो ऐसी स्थिति में भूख से बेहाल व्यक्ति का हाल कौन पूछे? कौन उसे खाना खिलाए? यही कारण है कि भूख से व्याकुल व्यक्ति को कोई ठौर-ठिकाना नहीं मिल रहा है।

सहजोबाई की कविता सामान्य व्यक्ति के सुख-दुख, उनकी संवेदना और उनकी स्थिति को बेहतर ढंग से चित्रांकित करती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में भी यह बड़ी बात है कि संवेदना ही साहित्य की मूल पूँजी है और इसी संवेदना के सहारे पाठक रचनाकार से तादात्म्य स्थापित करता है। उन्होंने लिखा है :

"जो वस्तु मनुष्य के हृदय को इतना संवेदनशील और सहानुभूतिशील बना दे कि एक व्यक्ति दूसरे के सुख-दु:ख में सुखी-दु:खी बन सके और दूसरे के मनोभावों को समझने का प्रयत्न करे, वह बड़ी चीज है। वही जब शब्द और अर्थ को आश्रय करके उन्हीं के माध्यम से प्रकट होती है, तो साहित्य कही जाती है। इसलिए साहित्य का प्रयोजन मनुष्य को संकीर्णता और मोह से उठाकर उदार, विवेकी और सहानुभूति पूर्ण बनाना है (विचार और वितर्क, पृ. 54)।" इस अर्थ में सहजोबाई का काव्य केवल वाग्जाल और शब्द-व्यापार नहीं है बल्कि उसमें जीवन का स्पंदन और उसकी उष्णता मौजूद है। उसमें सामान्य जनता का इंद्रिय-बोध, उनकी संवेदनाएँ और आंतरिक प्रेरणाएँ भी व्यंजित हुई हैं।

❖

हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, साहित्य विद्यापीठ
महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001
मो. नं. 7522968490, ई-मेल : alokhv16@gmail.com

नज़ीर अकबराबादी की भाषा और लोक-रंग

— डॉ. संगीता राय

हिंदुस्तान की लोक-संस्कृति को नज़ीर अकबराबादी ने अपने नज़्मों में सहेज लिया। नज़ीर के नज़्म हमारी सांस्कृतिक परंपरा का वो दस्तावेज़ है जिन पर पड़ी धूल को हटाने की ज़रूरत है। कबूतरबाजी, बुलबुलों की लड़ाई, तरबूज, संतरा, नारंगी, जलेबियाँ, मक्खियाँ नज़ीर के नज़्म का हिस्सा बनकर अमर हो गईं।

नज़ीर लोगों के दिलों में हैं। इसीलिए आगरा में लोग उन्हें एक सूफ़ी फ़क़ीर की तरह याद करते हैं। इतने बरसों बाद ही सही नज़ीर को नये सिरे से याद किया जा रहा है। नज़ीर की नज़्मों की भाषा भारत की लोक-संस्कृति, लोक-रंग की संवाहक हैं।

आशिक कहो, असीर कहो आगरे का है।
मुल्ला कहो, दबीर कहो आगरे का है।
मुफ़लिस कहो फ़क़ीर कहो आगरे का है।
शायर कहो नज़ीर कहो आगरे का है।

नज़ीर अकबराबादी ख़्वाबों और ख़्यालों की शायरी नहीं करते थे। वो ज़मीन से जुड़ी शायरी करते थे। इसीलिए नज़ीर अकबराबादी की भाषा में लोक जीवन नज़र आता है। भाषा-प्रयोग की दृष्टि से देखा जाए तो नज़ीर अकबराबादी हिंदी-उर्दू साहित्यकारों में पहली पंक्ति में नज़र आते हैं। नज़ीर अकबराबादी जिस भाषा का प्रयोग करते हैं उसे समझने के लिए शब्दकोश की आवश्यकता नहीं। वह अपने अनुभवों को बड़े प्रभावी ढंग से पाठकों तक पहुँचाते हैं। नज़ीर अकबराबादी के शब्द उनकी भाषा और परिवेश के अनुकूल हैं।

नज़ीर अकबराबादी के शब्द अनुभव और विचार का एक नया संसार गढ़ते हैं। इसीलिए उनका काव्य लोक संगीत की तरह लोगों के जीवन में प्रवाहमान है। नज़ीर अरबी, फारसी, हिंदी, संस्कृत सभी भाषाओं का प्रयोग करते हैं। वह अपने आस-पास के शब्दों का मोती चुनते हैं और एक नई काव्य-भाषा रचते हैं। इसीलिए वह अपने भावों को अभिव्यक्त कर सकने में सक्षम होते हैं। बोल-चाल की भाषा का प्रयोग करते समय नज़ीर सकुचाते नहीं हैं। लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग नज़ीर इस तरह करते हैं कि काव्य प्रवाह ठहरता नहीं। नज़ीर कुछ रूखे और अटपटे शब्दों का भी इस्तेमाल करते हैं। पर ये शब्द उनकी रचना को भौंडा नहीं बनाते हैं।

मैं इश्क का जला हूं मेरा कुछ नहीं ईलाज
वह पेड़ क्या हरा हो जो जड़ से उखड़ गया
न मेह में कोंद बिजली की न शोले का उजाला है
कुछ इस गोरे से मुखड़े का झमकड़ा ही निराला है।
ये यकताई ये यकरंगी तिस ऊपर ये क़यामत है
न कम होना न बढ़ना और हजारों घट में बढ़ जाना
बदन में जाम-ए-जरकश सरापा जिसपे जेबावर
कड़े, बुंदे, छड़ें, छल्ले, अंगूठी, नवरतन, हैकल
सरासर पूर फरेब ऐसा कि जाहिर जिसकी नज़रों से
शरारत, शोखी, ऐय्यारी, तरह, फिरती, दगा, छलबल
दिखाकर एक नज़र दिल को नेहायत कर गया बेकल
परी रु तुन्द खू सरकश हठीला चुलबुला चंचल[1]

नज़ीर अकबराबादी जिस विषय को चुनते हैं उसी के अनुसार भाषा का प्रयोग करते हैं। जब वो हिंदू देवी-देवताओं की बात करते हैं तो उनका शब्द चयन बदल जाता है। जैसे—

फिर आया वाँ एक ऐसा वक़्त, जो आए गर्भ में मनमोहन।
गोपाल, मनोहर, मुरलीधर, श्री किशन किशोर न, कँवल नयन
घनश्याम, मुरारी, बनवारी, गिरधारी सुंदर श्याम बरन।
प्रभुनाथ, बिहारी कान्हा लला सुखदायी, जग के दुख भंजन॥[2]

कृष्ण पर लिखी हुई उनकी कविताएँ जनमानस में इतनी लोकप्रिय हुईं कि क्या हिंदू और क्या मुसलमान सभी की जिह्वा पर ये गीत चढ़ गए।

यारों सुनो यह दधि के लुटैया का बालपन
और मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन
मोहन सरूप निरत करैया का बालपन
बन-बन के ग्वाल गौएं चरैया का बालपन
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन
क्या-क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन।[3]

नज़ीर सूर की तरह ही कृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन करते हैं। जैसे-बांसुरी, खेलकूद कन्हैया का, ब्याह कन्हैया का, श्री कृष्ण जी की तारीफ़ में, जनम कन्हैया जी का, बालपन बांसुरी बजैया का आदि। नज़ीर कृष्ण के रूप पर मोहित हैं।

तू सबका खुदा सब तुझ पे फ़िदा।
हे कृष्ण कन्हैया, नंद लला।
इसरारे हक़ीक़त यों खोले।
तौहीद के वह मोती रोले।
सूरत में नबी सीरत में ख़ुदा।
सब कहने लगे हैं सल्ले अला।
अल्लाहो ग़नी, अल्लाहो ग़नी।[4]

नज़ीर की ऐसी कविताएँ हिंदू-मुस्लिम कट्टरता पर करारा चोट करती हैं। नज़ीर की कविता कट्टरपंथियों पर प्रहार करती हैं। अपने काव्य के माध्यम से नज़ीर सच में एक 'नज़ीर' पेश करते हैं।

इसी तरह नज़ीर ने 'नानक शाह गुरू' पर कविता लिखी—

है कहते नानक शाह जिन्हें वह पूरे हैं आगाह गुरू।
वह कामिल रहबर जग है यूँ रौशन जैसे माह गुरू।
मक्सूद मुराद, उम्मीद सभी, बर लाते है दिलख्वाह गुरू।
नित लुत्फ़ो करम से करते हैं हम लोगों का निरबाह गुरू।
इस बख्सिस के इस अजमत के हैं बाबा नानक शाह गुरू।[5]

नज़ीर किसी की आस्था, किसी के धर्म पर चोट नहीं करते। नज़ीर की भाषा हिंदुस्तान की सांझी संस्कृति की पहचान है, विरासत है।

नज़ीर लीक पर चलने वाले कवि नहीं हैं और उन्हें इस बात की चिंता भी नहीं है कि आने वाले समय में उन्हें कैसे याद किया जाएगा। नज़ीर किसी राजा-महाराजा की खुशामद नहीं करते। उनकी तारीफ़ में एक शब्द भी व्यर्थ नहीं करते।

पर जब ककड़ी बेचने वाला उनसे नज़्म की मांग करता है ताकि उसकी ककड़ियाँ अच्छे से बिक सकें तो वह बिना किसी संकोच के उसकी माँग पूरी करते हैं।

क्या मीठी-मीठी प्यारी और पतली पतलियां हैं।
गन्ने की पोरियां हैं रेशम की तकलियां हैं।
फ़रहाद की निगाहे, शीरीं की हंसलियां हैं।
मजनूं की सर्द आहें, लैला की उंगलियां हैं।
क्या ख़ूब नर्मों नाज़ुक इस आगरे की ककड़ी
और जिसमें ख़ास काफ़िर इस्कंदरे की ककड़ी।[6]

लोक जीवन का कोई ऐसा रंग नहीं था जो नज़ीर से अछूता रहा हो। जिस पर नज़ीर की दृष्टि न पड़ी हो। नज़ीर अपने शब्दों से एक वृत्तचित्र गढ़ते हैं। छोटे-छोटे विषय उनके काव्य का अनिवार्य हिस्सा है-कौड़ी, रोटी, चूहा, रीछ का बच्चा, मर्द, बाज़ारू स्त्रियाँ, गिलहरी का बच्चा, फल, पेड़-पौधे, अज़दहे का बच्चा। नज़ीर को मेले-ठेले में घूमना बहुत पसंद था।

लाखों बैठे बिसाती और मनिहार
अपना सब गर्म कर रहे बाजार
चूड़ी, बगड़ी की इक तरफ झंकार
नौगरी, पोत, अंगूठी, छल्ले हार
टूटे पड़ते गंवारी और गंवार
जिस गंवारी को चाहिए धक्का मार
गिर के दे गाली, यूं कहे है पुकार
कैसो इठला चले है दाढ़ी जार।[7]

ग्रामीण अंचल के मेले, मेलों में होने वाली मस्ती और ठिठोली का जीवंत चित्रण नज़ीर के काव्य में नज़र आता है। नज़ीर लोक-जीवन के कवि हैं। लोगों के बीच रचे-बसे। किसी भी हाट-बाजार में कोई भी नज़ीर से एक नज़्म सुनाने की फ़रमाइश करता और नज़ीर बिना ना-नुकुर के उसकी फ़रमाइश पूरी करते। वह लोगों के दिलों में बसे थे और लोग उनके दिलों में बसे थे।

एक दिन नज़ीर के खाने में सिर्फ़ बेसनी रोटी थी। उन्होंने भोला राम पंसारी की दुकान से अचार मंगवाया। पंसारी ने जैसे ही नज़ीर का नाम सुना तो मर्तबान में हाथ डाला और जो जितना हाथ आया उसे दोने में बाँध दिया। नज़ीर अकबराबादी ने जब दोना खोला तो तेल-मसाले में लथ-पथ एक चूहा था। नाराज होने की जगह नज़ीर ने एक नज़्म ही बना दी-'चूहों का अचार'

"फिर गर्म हुआ आन के बाजार चूहों का

हमने भी किया खोमचा तैयार चूहों का
सर पांव कुचल कूट के दो-चार चूहों का
जल्दी से कचूमर सा किया मार चूहों का
क्या ज़ोर मज़ेदार है अचार चूहों का।
आगे थे कई अब तो हमीं एक हैं चूहे मार
मुद्दत से हमारा है इस अचार का व्यौपार
गलियों में हमें ढूंढते फिरते हैं ख़रीदार
बरसे है पड़ी कौड़ी, रुपे पैसों की बौछार
क्या ज़ोर मज़ेदार है अचार चूहों का।"[8]

नज़ीर फ़कीर थे और फ़कीरी में खुश भी थे। आस-पास ऐसे तमाम लोग थे जो रोज आटे-दाल के लिए तरसते। नज़ीर ने ग़रीबी को लोगों की आँखों में देखा था। रोटियाँ, पैसा, मुफ़्लिसी, आटे-दाल का भाव उनकी नज़्म के विषय बने—

क्या कहूं नक्शा मैं यारों ख़ल्क़ के अहवाल का।
अहले दौलत का चलन, या मुफ़्लिसो कंगाल का।
यह बयां तो वाकई है, हर किसी के हाल का।
क्या तबंगर, क्या ग़नी, क्या पीर और क्या बालका।
सबके दिल को फिक्र है दिन रात आटे-दाल का।[9]

मानवीय संबंध, आपसी रिश्ते नज़ीर की पूँजी थे। इन संबंधों पर भी नज़ीर की क़लम ख़ूब चली। 'समधिन' पर नज़्म नज़ीर ही लिख सकते थे—

"सराप हुस्ने-समधिन गोया गुलशन की क्यारी है।
परी भी अब तो बाजी हुस्न में समधिन से हारी है।
खिंची कंघी गुंथी चोटी, जमी पट्टी लगा काजल।
कमाँ अब्र नज़र जादू निगाह हर एक दुलारी है।
जबीं महताब आँखें शोख़, शीरीं लब गोहर दन्दाँ।
बदन मोती दहन गुंचा अदा हँसने की प्यारी है।
नया किमख़्वाब का लहंगा झमकते ताश की अंगिया
कुचें तसवीर सी जिन पर लगा गोटा किनारी है।"[10]

नज़ीर की कविताएँ मनुष्यत्व और देशप्रेम की प्रतीक हैं। जहाँ एक ओर वह होली, बसन्त और दीवाली मनाते हैं वहीं दूसरी ओर ईद और शब्बेरात के नज़्म गुनगुनाते हैं। होली का रंग नज़ीर को ख़ूब भाया। शायद ही किसी शायर ने या किसी कवि ने होली के इतने रंग अपनी कविताओं में बिखेरे होंगे।

जब फागुन रंग झमकते हों तब देख बहारें होली की।
और दफ़ के शोर खड़कते हों तब देख बहारें होली की।
परियों के रंग दमकते हों तब देख बहारें होली की।
ख़ूम शीश-ए-जाम छलकते हों तब देख बहारें होली की।
महबूब नशे में छकते हो तब देख बहारें होली की।

हो नाच रंगीली परियों का, बैठे हों गुलरू रंग भरे
कुछ भीगी तानें होली की, कुछ नाज़-ओ-अदा के ढंग भरे
दिल फूले देख बहारों को, और कानों में अहंग भरे
कुछ तबले खड़कें रंग भरे, कुछ ऐश के दम मुंह चंग भरे
कुछ घुंगरू ताल छनकते हों, तब देख बहारें होली की

गुलज़ार खिलें हों परियों के और मजलिस की तैयारी हो।
कपड़ों पर रंग के छीटों से खुश रंग अजब गुलकारी हो।
मुँह लाल, गुलाबी आँखें हो और हाथों में पिचकारी हो।
उस रंग भरी पिचकारी को अंगिया पर तक कर मारी हो।
सीनों से रंग ढलकते हों तब देख बहारें होली की।

और एक तरफ़ दिल लेने को, महबूब भवइयों के लड़के,
हर आन घड़ी गत फिरते हों, कुछ घट घट के, कुछ बढ़ बढ़ के,
कुछ नाज जतावें लड़ लड़ के, कुछ होली गावें अड़ अड़ के,
कुछ लचके शोख़ कमर पतली, कुछ हाथ चले, कुछ तन फड़के,
कुछ काफ़िर नैन मटकते हों, तब देख बहारें होली की॥

ये धूम मची हो होली की, ऐश मजे का झक्कड़ हो
उस खींचा खींची घसीटी पर, भड़वे खन्दी का फक्कड़ हो
माजून, रबें, नाच, मजा और टिकियां, सुलफा कक्कड़ हो
लड़भिड़ के 'नज़ीर' भी निकला हो, कीचड़ में लत्थड़ पत्थड़ हो
जब ऐसे ऐश महकते हों, तब देख बहारें होली की॥[11]

नज़ीर मनुष्यता की भी बात करते हैं। मानवता उनका सबसे बड़ा धर्म है—

दुनिया में बादशाह है सो है वह भी आदमी।
और मुफ़्लिसों गदा है सो है वह भी आदमी।
जरदार बेनवा है, सो है वह भी आदमी।
नेमत जो खा रहा है, सो है वह भी आदमी।
टुकड़े चबा रहा है, सो है, वह भी आदमी भी।
झगड़ा न करे मिल्लतो-मज़हब का कोई यां।
जिस राह में जो आन पड़े खुश रहे हर आं।
जुन्नार गले या कि बग़ल बीच हो कुरआं।
आशिक तो कलन्दर है न हिंदू न मुसलमां।[12]

जीवन का यथार्थपरक वर्णन करने वाला नज़ीर जैसा कोई कवि नहीं। वो 'दीवाली' नामक कविता में मिठाइयों का विवरण इस प्रकार देते हैं-

जो बालूशाही भी तकिया लगाए बैठे हैं।

तो लौंज खजले यही मसनद लगाए बैठे हैं।
इलायची दाने भी मोती लगाए बैठे हैं।
तिल अपनी रेबड़ी में ही समाए बैठे हैं।[13]

तिल के लड्डू के लिए जाड़े का मौसम उपयुक्त होता है—

जिसका कलेजा यारों, सर्दी ने होवे मारा।
नौ दाम के वह मुझसे, ले जाये तिल के लड्डू।
हमने भी गुड़ मंगाकर, बंधवाए तिल के लड्डू।
तन फेर ऐसा भबका, जब खाये तिल के लड्डू।[14]

नज़ीर ने लोक-चेतना को अपने काव्य का आधार बनाया। इसी लोक चेतना से प्रभावित होकर उन्होंने श्रृंगारिक प्रवृत्ति तथा सुरा सुंदरी से हटकर आम जन-जीवन को वाणी प्रदान की। लुहार, मज़दूर, कृषक, मनिहार, भड़भूजा, फेरीवाला, बिसाती, दर्जी, मोची, कुंजड़ा, भिश्ती जैसे लोगों को भी कविता का विषय बनाया गया।

नज़ीर एक आधुनिक कवि हैं। पर वो वेशभूषा, खानपान और रहन-सहन से आधुनिक नहीं बल्कि अपने विचारों से आधुनिक हैं।

हाशिए पर खड़ा व्यक्ति उनकी कविता का नायक है। आलोचक प्रोफ़ेसर सैयद एहतेशाम हुसैन लिखते हैं—

"जनता से उनका ऐसा घनिष्ठ संबंध था कि उनके यहाँ ऊँच-नीच, हिंदू-मुस्लिम, बड़े-छोटे का भेदभाव मिट गया था। उनके स्वभाव में ऐसी सरलता और व्यवहार में ऐसी स्वछन्दता पायी जाती थी कि सभी उनके मित्र थे। भिखारी और खोमचे वाले भी उनसे अपने लिए कविताएँ लिखा लेते थे।"[15]

नज़ीर ने आदमी को उसकी हैसियत और रुतबे से नहीं आंका। ककड़ी वाले, तरबूज़ वाले के इसरार पर वो ठहर जाते हैं। उनके लिए नज़्म बनाते हैं और जब नवाब सआदत अली खाँ अपने दरबार में बुलाते हैं तो कुंभनदास की तर्ज पर 'संतन को कहाँ सीकरी सो काम' मना कर देते हैं। वो जानते हैं—

यह धूम-धड़क्का साथ लिए क्यों फिरता है जंगल जंगल
इक तिनका साथ न जावेगा, मौकूफ़ हुआ जब अन्न और जल
घर बार अटारी, चौपारी, क्या ख़ासा तनसुख और मलमल
क्या चिलमन, पर्दे, फर्श नये, क्या लाल पलंग और रंग-महल
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा, जब लाद चलेगा बंजारा।[16]

नज़ीर ने उन विषयों पर कविता लिखी जो काव्य के विषय ही नहीं माने गए-ऊमस, चपाती, बुढ़ापा, लूली पीर (बूढ़ी वेश्या) पर नज़ीर ने काव्य रचा।

पतंगबाज़ी नज़ीर को अत्यंत प्रिय थी। उन्होंने अपनी कविता 'कनकौए और पतंग' में लिखा है—

"लाता है फेर-फार के तुक्कल जो अपनी वां
कहता है कोई उनसे, ख़बरदार हो, मियां
अब पेंच पड़ने को है, ना दो इतनी ठुमकियां
घबरा के कन्ने इसके ना फंसने दो मेरी जां
अच्छा नहीं है, मुफ्त कटाना पतंग का"[17]

कबूतरबाजी, बुलबुल की लड़ाई पर भी नज़ीर ने नज़्म लिखी। आगरे की तैराकी, का भी नज़ीर ने जीवंत चित्रण किया है। जब यमुना के किने लोग इकट्ठा होते थे और वर्षा ऋतु में तैराकी का आयोजन होता था।

"कुछ नाच की बहारें, पानी की कुछ लताड़ें
दरिया में मच रहे हैं, इंदर के सौ अखाड़े
लबरेज़ गुलरुखों से दोनों तरफ़ करारे
बजरे व नाव, चप्पू, डोंगे बने निवाड़े
इन झमघटों से होकर, सरशार पैरते हैं"[18]

लल्लू जगधर का मेला, कंस का मेला, बल्देव जी का मेला नज़ीर को खूब भाया।

हिंदुस्तान की लोक-संस्कृति को नज़ीर अकबराबादी ने अपने नज़्मों में सहेज लिया। नज़ीर के नज़्म हमारी सांस्कृतिक परंपरा का वो दस्तावेज़ है जिन पर पड़ी धूल को हटाने की ज़रूरत है। कबूतरबाजी, बुलबुलों की लड़ाई, तरबूज, संतरा, नारंगी, जलेबियाँ, मक्खियाँ नज़ीर के नज़्म का हिस्सा बनकर अमर हो गईं।

नज़ीर लोगों के दिलों में हैं। इसीलिए आगरा में लोग उन्हें एक सूफ़ी फ़क़ीर की तरह याद करते हैं। इतने बरसों बाद ही सही नज़ीर को नये सिरे से याद किया जा रहा है। नज़ीर की नज़्मों की भाषा भारत की लोक-संस्कृति, लोक-रंग की संवाहक हैं।

संदर्भ :

1. नज़ीर अकबराबादी के कलाम का तनक़ीदी मोतालय-डॉ. सैय्यद तलत हुसैन नक़वी-पृष्ठ 481
2. नज़ीर ग्रन्थावली-पृष्ठ 556
३. कुल्लियात-ए-नज़ीर, संपादक-अब्दुर बारी आसी और अशरफ़ अली, रामकुमार प्रेस बुक डिपो लखनऊ, पृष्ठ- 743-749
4. नज़ीर ग्रंथावली, पृष्ठ 81-81
5. कुल्लियात-ए-नज़ीर, संपादक-अब्दुर बारी आसी और अशरफ अली, रामकुमार प्रेस बुक डिपो लखनऊ, पृष्ठ- 414-415
6. कुल्लियात-ए-नज़ीर, संपादक-अब्दुर बारी आसी और अशरफ़

अली, रामकुमार प्रेस बुक डिपो लखनऊ, पृष्ठ- 575-576
7. नज़ीर ग्रंथावली- पृष्ठ-391-392
8. कुल्लियात-ए-नज़ीर, संपादक-अब्दुर बारी आसी और अशरफ़ अली, रामकुमार प्रेस बुक डिपो लखनऊ, पृष्ठ-663-665
9. कुल्लियात-ए-नज़ीर, संपादक-अब्दुर बारी आसी और अशरफ़ अली, रामकुमार प्रेस बुक डिपो लखनऊ, पृष्ठ-912
10. कुल्लियात-ए-नज़ीर, संपादक-अब्दुर बारी आसी और अशरफ़ अली, रामकुमार प्रेस बुक डिपो लखनऊ, पृष्ठ 690-699
11. कुल्लियात-ए-नज़ीर, संपादक-अब्दुर बारी आसी और अशरफ़ अली, रामकुमार प्रेस बुक डिपो लखनऊ, पृष्ठ 437-438
12. नज़ीर ग्रंथावली-पृष्ठ 239
13. नज़ीर ग्रन्थावली-पृष्ठ संख्या 376
14. नज़ीर ग्रन्थावली-पृष्ठ संख्या 464
15. उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-प्रो. सैयद एहतेशाम हुसैन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 2016 पृष्ठ-981
16. कुल्लियात-ए-नज़ीर, संपादक-अब्दुर बारी आसी और अशरफ़ अली, रामकुमार प्रेस बुक डिपो लखनऊ, पृष्ठ-541-543
17. नज़ीर ग्रंथावली-डॉ. नज़ीर मुहम्मद पृष्ठ 410
18. नज़ीर ग्रंथावली-डॉ. नज़ीर मुहम्मद पृष्ठ 406

❖

803, गृह प्रवेश सोसाइटी, सेक्टर-77
नोएडा-201301 मोबाइल : 9990218282

लघुकथा-सरोवर

मृणाल आशुतोष

पागल नहीं हूँ मैं

फटे-पुराने गन्दे कपड़ों में वह इधर-उधर भटकता रहता। अक्सर बड़बड़ाता रहता। लोग उसे देखकर हँसते। कुछ बच्चे उस पर कंकड़-पत्थर भी फेंक देते। मेरा मन होता तो सबको रोकूँ पर रोकने की हिम्मत न होती। जी चाहता कि उससे बात करूँ पर डरता था कि कहीं कोई देख न ले। पर एक दिन मौका मिल ही गया। वह अकेला जा रहा था। संयोग से उसके आगे पीछे कोई नहीं। मैं उसके पीछे लपका।

'ए पागल, सुनो।'

उसने मुड़ कर देखा। उसकी अश्रंखें मानों प्रतिवाद कर रही थीं। अब मुझे एहसास हुआ कि मुझे पागल शब्द के प्रयोग से बचना चाहिए था।

'भाई, एक मिनट सुनना।'

उसकी आँखों ने ही जबाब दिया, 'कहिये'।

'भाई, तुम मुझे पागल तो लगते नहीं पर पागल की तरह क्यों करते हो?' मैं सच जानने को इतना व्यग्र था कि अपने आपको रोक न पाया।

पल भर के लिए वह चुप रहा। मेरी नजरें उसके चेहरे पर जमी हुई थी। अब उसके चेहरे की भाव-भंगिमा बदलने लगी।

'तुम्हें लगता है कि देश और समाज की जो वर्तमान स्थिति है, उसमें कोई सामान्य रह सकता है? कोई चांद पर जा रहा है, किसी को रोटी नहीं मिल रही है। हर तरफ लूटखसोट, मारामारी, डर का माहौल! जो भी ये सब गंभीरता से सोचेगा, वह सामान्य अवस्था मे रह पायेगा क्या? सब पागल हो जाएगा। एक दिन...सब.. पागल...'

उसकी आँखों से बरसते आँसू चीख रहे थे।

अब मुझे लगने लगा कि मैं भी उसकी तरह ही होने लगा हूँ।

मैं बड़बड़ाने लगा,'नहीं! नहीं! मैं पागल नहीं हूं। मैं नहीं हूं पागल।'

❖

हॉकी स्टिक

कजन के लिये बैडमिंटन लेने जब दुकान पर पहुंचा तो ढेर सारे हॉकी स्टिक को देख आश्चर्यचकित हो दुकानदार से पूछ बैठा, 'इस शहर में हॉकी खेलने लायक तो एक भी फील्ड नहीं है तो हॉकी स्टिक बिकता है क्या?'

'हाँ, खूब बिकती हैं ये। दूसरे कई फील्ड में खूब डिमांड है इनकी।' दुकानदार ने मुस्कुराते हुये कहा।

❖

द्वारा : कुणाल आशुतोष
बी-106 प्रथम तल, कर्मपुरा, नई दिल्ली-110015
मोबाइल : 8010814932

ध्रुवस्वामिनी नाटक में इतिहास और कल्पना

— डॉ. शैलजा

प्रसाद ने इतिहास नहीं लिखा है, अपितु प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं एवं चरित्रों को अपने साहित्य के माध्यम से जनसाधारण तक पहुँचाने का प्रयास किया है। प्रायः इतिहास में तो केवल तथ्यों का संकलन किया जाता है और उन घटनाओं का उल्लेख किया जाता है, जो समय-समय पर घटती रहती है। परंतु उन घटनाओं के घटित होने में कौन सी आंतरिक गति रही है, कौन सी विचारधारा काम करती है, उनके पीछे की प्रेरणा क्या थी? इन सब बातों का उल्लेख इतिहास में नहीं होता। प्रसाद ने अपने नाटकों में अपने समय और देश को प्रत्यक्षतः चित्रित नहीं किया है, बल्कि उसे इतिहास के दर्पण में प्रतिबिंबित किया है। उन्होंने वर्तमान को अतीत के शीशे में संचित और सघन बना कर प्रस्तुत किया है। प्रसाद के नाटक अपने युग की उपज हैं। उनमें तात्कालिक राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है।

नाटक हिंदी साहित्य की सबसे पुरातन विधा है। भारतीय दृष्टि से नाटक काव्य का अभिन्न अंग है। नाटक को समाज कल्याण का सबसे सशक्त माध्यम माना गया है। काव्य का समाज के कल्याण के साथ जो संबंध है वह नाटक में सबसे अधिक स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। समाज जितना उन्नत होता है उसकी रंगशाला उतनी ही उन्नत होती है। "नाटक ऐसी कला है जो परंपराबद्ध है और जो किसी राष्ट्र के सुदूर अतीत तक के कलात्मक और सांस्कृतिक समुदाय से जुड़ी रहती है तथा विभिन्न युगों में नए-नए सामाजिक संदर्भों में अपने इसी पारंपरिक रूप में शक्ति ग्रहण करती है।"[1] नाटक एक जीवंत अनुभव है जो अपनी जीवंतता रंगमंच पर ही प्राप्त करता है। नाटक की सही कसौटी रंगमंच ही है। मध्य युग में लोकधर्मी नाट्य-परंपरा, जीवन-समाज, घर-गृहस्थी, विवाह-शादी, मंगल-उत्सव के अवसरों पर अनेक कर्मकांड के रूप में जीवित रही। कहीं गायन का रूप धारण करके, कहीं नृत्य के रूप में, कहीं सामूहिक उत्सवों के रूप में।

भक्ति आंदोलन मध्य युगीन संस्कृति की सबसे बड़ी घटना है। इसी भक्ति ने पहली बार अपने उद्‌भव और लोकप्रियता के लिए रंगमंच के रूप को हृदय से ग्रहण किया। इतिहास के अनेक ग्रंथ तथा घटनाएँ इस बात की साक्षी हैं कि भक्ति-आंदोलन के प्रमुख उन्नायकों ने इसी लोकधर्मी परंपरा का सहारा लिया। बंगाल के चैतन्य महाप्रभु नाटक के प्रेरणा स्रोत थे। बंगाल की 'जात्रा' इसका निश्चित-स्वरूप बना। मिथिला में कीर्तनियों और आसाम में अंकिया नामक नाट्य-रूपों का प्रचलन हुआ। दक्षिण में 'गंभीरा' नामक विशिष्ट लोकनाट्य का विकास हुआ। दक्षिण के मालावर में गीत गोविंद के आधार से 'कृष्ण-नाट्य' का उदय हुआ। महाराष्ट्र में 'तमाशा' राजस्थान में 'माय' और उत्तर प्रदेश में 'स्वांग', 'भगति', 'नौटंकी' और 'बहुरूपिया'।

प्रसाद जी ने अनुभव किया कि अब तक लिखे गए नाटक इतने गंभीर नहीं हैं जिनसे जीवन की गहराई अभिव्यक्त हो, इतने भी नहीं की राष्ट्र की चेतना अथवा कोई मूल्यगत विमर्श उनसे पैदा हो सके। अतः इतिहास के भीतर विशेषकर मध्यकालीन स्वर्ण युग के भीतर से इतिहास को लेकर उन्होंने भारतीय चेतना को पुष्ट करने के लिए अनेक नाटक लिखे-'सज्जन', 'अजातशत्रु', 'कामना', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'स्कंद गुप्त', 'एक घूंट', 'चंद्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी'। उन्होंने अपने नाटकों में

युग चेतना को ही अभिव्यक्ति दी है। यद्यपि "प्रसाद के नाटक ऐतिहासिक हैं पर उनमें आधुनिक आदर्शों और भावनाओं का आभास इधर-उधर बिखरा मिलता है। स्कंदगुप्त और चंद्रगुप्त दोनों में स्वदेश प्रेम, विश्वप्रेम औरआध्यात्मिकता का आधुनिक रूप रंग बराबर झलकता है।"[2] प्रसाद के नाटकों में उनका समय अपनी पूरी तत्परता के साथ उपस्थित है। उनमें प्रसाद के समकालीन पराधीन भारत का उद्वेग भी है और मुक्ति की आकांक्षा भी है। प्रसाद के नाटकों में उस भव्य भारत की गौरवगाथा है जो सपनों का देश है। प्रेम की रंगभूमि है, मानवता की जन्मभूमि है और जहाँ के वीर असीम साहसी और दुर्जेय हैं। प्रसाद के नाटकों में भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण का स्वर मुख्य रूप में आता है। प्रसाद ने इतिहास को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बना कर भी इतिहास को दोहराया नहीं है बल्कि उससे आगे जाकर उसे उच्चतर एवं महत्तर स्थिति प्रदान की है।

प्रसाद के नाटक भारत की राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित हैं। प्रसाद ने जिस रूप में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना को अपने नाटकों में प्रस्तुत किया है, वह केवल सामयिक नहीं है, उनके पहले की भी है और उनके समय के बाद की भी है। उन्होंने घटनाओं को चित्रित नहीं किया है बल्कि सामाजिक चेतना को अभिव्यक्त किया है। प्रसाद के नाटकों में शांति और प्रेम का, करुणा और क्षमा का, सहिष्णुता और कृतज्ञता का स्वर भी है और धर्म दीप को जलाए रखने के लिए सत्य और न्याय की वेदी पर प्राणों का विसर्जन भी है।

प्रसाद के नाटकों में उनके इतिहास के गंभीर अध्ययन का पुख्ता प्रमाण मिलता है। प्रसाद हिंदी के पहले ऐसे नाटककार हैं जिन्होंने इतिहास और कल्पना दोनों का सही-सही समन्वय किया है। इतिहास तथा कल्पना के संबंधों की चर्चा करते हुए मोहन राकेश ने लिखा है कि "साहित्य में इतिहास अपनी यथा तथ्य घटनाओं में व्यक्त नहीं होता, घटनाओं को जोड़ने वाली ऐसी कल्पना में व्यक्त होता है जो अपने ही एक नये और अलग रूप में इतिहास का निर्माण करती हैं।"[3]

आलोचकों का मानना है कि अपने रोमांटिक चेतना के कारण प्रसाद ने ऐतिहासिक और काल्पनिक प्रसंगों का आधार ग्रहण किया। प्रसाद ने इतिहास के उस युग को अपने नाटकों का आधार बनाया जो भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता की उन्नति का स्वर्ण युग कहा गया है। प्रसाद ने महाभारत युद्ध के बाद से लेकर हर्षवर्धन के राज्यकाल तक के भारतीय इतिहास को अपना लक्ष्य बनाया है, क्योंकि यही भारतीय संस्कृति की उन्नति और प्रसार का स्वर्ण युग कहा जाता है। इन्हीं घटनाओं के साथ अपनी कल्पना शक्ति का इस्तेमाल करके उन घटनाओं को सृजनात्मक रूप दिया है। यह नाटककार प्रसाद की जीवन दृष्टि ही है जिसने इतिहास और कल्पना के विशेष प्रसंगों को उनके नाटकों का आधार बनाया है। प्रसाद की कल्पना में उनकी जीवन दृष्टि उभरकर सामने आती है। जीवन दृष्टि परिस्थितियों की उपज होती है और इसके पीछे अनेक शक्तियाँ कार्य करती हैं। प्रसाद की कल्पना तथा उससे उत्पन्न जीवन-दृष्टि को नियंत्रित करने वाली परिस्थितियों में तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ, हिंदी साहित्य एवं रंगमंच की परंपरा और तत्कालीन संदर्भ तथा व्यक्तिगत जीवन की परिस्थितियाँ-पारिवारिक स्थिति, संस्कार, अध्ययन, जीवन-संघर्ष, प्रेम आदि हैं। इन सबके फलस्वरूप प्रसाद की जीवन दृष्टि की कुछ विशेषताएँ उभरकर सामने आती हैं; राष्ट्रीयता की प्रखर चेतना, भारतीय संस्कृति के प्रति गहन आस्था, जीवन के उदात्त मूल्यों की प्रतिष्ठा का आग्रह, नियति में विश्वास और प्रेम की रोमानी दृष्टि। अपनी जीवन दृष्टि के कारण ही प्रसाद ने भारतीय पुराण और इतिहास से उन्हीं प्रसंगों को ग्रहण किया, जिनके माध्यम से वे अपने को अभिव्यक्त कर सके। राष्ट्रीयता और भारतीय संस्कृति के प्रश्न को लिया जाए, तो उन्होंने इतिहास के उन प्रसंगों को लिया जिसमें भारत पर विदेशी आक्रमण हुए थे, उस समय देश विभिन्न खण्डों में बँटा था, क्षेत्रीयता और सांप्रदायिकता की भावना चारों ओर व्याप्त थी। प्रसाद ने इतिहास-पुराण के उन प्रसंगों को लिया जिसमें विदेशी आक्रमण का सामना किया गया था।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी नाटक को एवं नाट्य-कला को जन्म दिया, प्रसाद ने उसे एक नई दिशा दी, विषय और शैली की दृष्टि से उसे चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। प्रसाद ने पूरे हिंदी साहित्य में जागरण की, सांस्कृतिक चेतना की, राष्ट्रीय भावना की, करुणा और प्रेम की, उदात्त मानवीय भावों और आदर्शों की लहर सी दौड़ा दी। उनकी बहुमुखी प्रतिभा ने नाटक ही नहीं, कविता, निबंध, कहानी, उपन्यास, आलोचना, सभी माध्यमों में हिंदी

साहित्य को नयी शैली, नया शिल्प तथा नये रूप दिए। प्रसाद के नाटक हिंदी नाट्य साहित्य में एक नया अध्याय खोलते हैं। प्रसाद का युग राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से उथल-पुथल का, क्रांति का युग था। यह राष्ट्रीय आंदोलन का युग था। प्रसाद ने कुल बारह नाटकों की रचना की है। 'कामना' और 'एक घूंट' को छोड़कर प्रसाद के सभी नाटक ऐतिहासिक हैं।

भारतीय अपनी संस्कृति की उपेक्षा करके विदेशी सभ्यता से अत्यधिक प्रभावित हो रहे थे, बाह्याडंबर और अंग्रेजी भाषा तथा सभ्यता पर मुग्ध होकर वे भारतीय आदर्शों, मातृभाषा और सभ्यता को हेय समझने लगे थे। प्रसाद के सामने भारतीय संस्कृति का उपासक होने के कारण एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ था, इस हीनता की भावना को जड़ से उखाड़ने और भारतीय संस्कृति को पुनर्प्रतिष्ठित करने का। इसी आकुलता ने उन्हें भारत के अतीत गौरव की ओर मोड़ा। उन्होंने इतिहास की घटनाओं तथा चरित्रों को अपने नाटकों की विषय-वस्तु बनाई।

प्रसाद का मानना था कि प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक विरासत इतनी संपन्न तथा समृद्ध है कि उसके आधारों पर खड़े होकर पश्चिमी संस्कृति को चुनौती दी जा सकती है। प्रसाद का मत था कि इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यंत लाभदायक होता है, क्योंकि हमारी गिरी दशा को सुधारने के लिए हमारी अतीत सभ्यता से बढ़कर कोई भी आदर्श हमारे अनुकूल नहीं है। उनका विश्वास था कि भारत का अतीत ही इन भारतीयों को अपने गौरव, सभ्यता संस्कृति और आदर्शों का, मानवता का दर्शन करा सकता है, उन्हें पश्चिमी सभ्यता के खोखलेपन से हटा सकता है। अत: उन्होंने इतिहास को नाट्याभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम बनाया। प्रसाद को भारतीय इतिहास में भारतीयों का वैभव, वीरत्व और पराक्रम के अपूर्व उदाहरण मिलते हैं और विदेशियों को भारतीयों द्वारा पराजित करने की गाथा भी। इन ऐतिहासिक कथानकों द्वारा प्रसाद ने धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, हर्ष-विषाद, विजय-पराजय से युक्त मानव-जीवन का चिरंतन स्वरूप प्रस्तुत किया, भारतीयों के आगे मँडराते हुए विदेशी धुएं को हटाने के लिए इतिहास के पृष्ठ खोलकर अप्रत्यक्ष रूप में ही उस युग की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया, राष्ट्रीय जागरण का ही नहीं, मानवतावाद का शाश्वत आदर्श प्रसारित किया और दर्शक-समूह को ऐसा मनोरंजन दिया जो शोद्देश्य था, चिरस्थायी प्रभाव छोड़ने वाला था।

प्राचीन भारतीय इतिहास से शक्ति, सामर्थ्य, आशा तथा संकल्प प्राप्त करने की इसी दृष्टि के कारण वे प्राचीन संस्कृत वाङ्मय के साथ-साथ जैन एवं बौद्ध ग्रंथों का अनुशीलन करते हुए इस अगाध सागर में बिखरी हुई ऐतिहासिक सामग्री को साहित्य के माध्यम से प्रकाश में लाना चाहते थे। इसके दो कारण थे, "एक तो भारत के प्राचीन वाङ्ग्मय में वर्णित, ऐतिहासिक इतिवृत्तों को पौराणिक गाथा या कपोल-कल्पित कथाएँ कहकर उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था और दूसरा कारण यह था कि अनेक देशी व विदेशी विद्वान संपूर्ण प्राचीन साहित्य को पारलौकिक विषयों से संबंधित मानकर ऐतिहासिक दृष्टि से इनका कोई महत्व स्वीकार नहीं करते थे।"[4] वे न केवल अपने नाटकों अपितु अपनी सबसे महत्वपूर्ण काव्य-कृति 'कामायनी' महाकाव्य में इतिहास को वर्तमान के संदर्भ में प्रस्तुत करते हैं। इतिहास के अपने नवीन अन्वेषण के आधार पर उन्होंने अपने नाटकों द्वारा उत्तर वैदिक काल से लेकर पृथ्वीराज चौहान तक के प्राचीन इतिहास के उन धुंधले पृष्ठों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया जिनकी ओर न तो सर्वसाधारण का ध्यान गया था और न ही जिनको इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण समझा गया था।

प्रसाद ने इतिहास नहीं लिखा है, अपितु प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं एवं चरित्रों को अपने साहित्य के माध्यम से जनसाधारण तक पहुँचाने का प्रयास किया है। प्राय: इतिहास में तो केवल तथ्यों का संकलन किया जाता है और उन घटनाओं का उल्लेख किया जाता है, जो समय-समय पर घटती रहती है। परंतु उन घटनाओं के घटित होने में कौन सी आंतरिक गति रही है कौन सी विचारधारा काम करती है उनके पीछे की प्रेरणा क्या थी ? इन सब बातों का उल्लेख इतिहास में नहीं होता। प्रसाद अपने नाटकों में अपने समय और देश को प्रत्यक्षत: चित्रित नहीं किया है, बल्कि उसे इतिहास के दर्पण में प्रतिबिंबित किया है। उन्होंने वर्तमान को अतीत के शीशे में संचित और सघन बना कर प्रस्तुत किया है। प्रसाद के नाटक अपने युग की उपज हैं। उनमें तात्कालिक राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। किसी भी राष्ट्र के जीवन के लिए यह चेतना अनिवार्य है। जब तक राष्ट्र रहेगा, राष्ट्रीय भावना की आवश्यकता बनी रहेगी अपनी सांस्कृतिक महत्ता का बोध अपेक्षित रहेगा। प्रसाद ने जिस

रूप में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना को अपने नाटकों में प्रस्तुत किया है, वह केवल सामाजिक नहीं है, उनके समय के पहले की भी है, उनके समय के बाद की भी है। उन्होंने सामयिक घटनाओं को चित्रित नहीं किया है, सामाजिक चेतना को अभिव्यक्त किया है। जब तक हमारे देश में स्वाधीनता की भावना बरकरार रहेगी, देश के लिए आवश्यक होने पर कुर्बानी देने या संघर्ष की आवश्यकता रहेगी, तब तक प्रसाद के नाटकों की प्रासंगिकता बनी रहेगी, साथ ही प्रसाद ने अपने नाटकों में जिस प्रकार के उदात्त चरित्रों को सृजित किया है वे हमेशा आदर्श रूप में हमें प्रेरित करते रहेंगे।

प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में उनके चरित्र-निर्माण का एक महत्वपूर्ण आधार है उनके भारतीय इतिहास के तथ्यों से ग्रहण की गई सांस्कृतिक चेतना। प्रसाद प्राचीन भारतीय संस्कृति के गहन अध्येता तथा भक्त थे। वे भारतीय संस्कृति के उच्चादर्शों से प्रेम करते थे और उनके हृदय में भारतीय संस्कृति की गरिमा के प्रति अटूट श्रद्धा थी। जिसके चलते उन्होंने अपने ऐतिहासिक चरित्रों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के उच्चादर्शों एवं महान मूल्यों को प्रकट करने की कोशिश की। जिसमें प्रसाद जी काफी हद तक सफल रहे। उन्होंने अपने अधिकांश चरित्रों द्वारा शौर्य, पराक्रम, त्याग, उत्सर्ग, प्रेम, कर्तव्य परायणता, कर्मठता, शील, उदारता, अहिंसा, करुणा, सेवा, परोपकार, देशभक्ति, सहानुभूति, लोकहित, सज्जनता, क्षमा, सहिष्णुता आदि उदात्त भावनाओं का निरूपण किया है। प्रसाद की सांस्कृतिक चेतना का सर्वाधिक भाग नारी चरित्रों को प्राप्त हुआ है। नारी चरित्रों की सृष्टि में प्रसाद ने अभूतपूर्व कौशल दिखाया है और नारी को परा-शक्ति के रूप में अंकित किया है। इसी कारण उनके नारी-चरित्र, पुरुष-चरित्र की अपेक्षा कहीं अधिक आकर्षक एवं प्रभावशाली बने हैं।

भारतीय समाज में नारी की स्थिति और उसकी मुक्ति के प्रश्न ने उन्हें 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक के कथानक की ओर प्रेरित किया। अतीत के माध्यम से वर्तमान की चेतना को समसामयिक प्रश्न के रूप में प्रतिबिंबित करने में प्रसाद ने इस नाटक में एक परिपुष्ट विकसित चिंतन को अपनाया है। इस नाटक में उनकी नारी-संबंधी दृष्टिकोण में गुणात्मक परिवर्तन आया है। इसमें विवाह, मोक्ष और नारी के स्वतंत्र अस्तित्व तथा परंपरा से मुक्ति संबंधी प्रसाद का चिंतन स्पष्ट रूप से सामने आया है। ध्रुवस्वामिनी प्रसाद के नारी चरित्रों की अपेक्षा गुणात्मक तौर पर भिन्न आधुनिक नारी है। जहाँ पहले के नाटकों में आदर्श तथा संस्कारित स्त्री चरित्र सामने है, समर्पण जिनका सबसे बड़ा मूल्य है। वहीं ध्रुवस्वामिनी अपने व्यक्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष करती है। ध्रुवस्वामिनी ऐतिहासिक नाटक है लेकिन इस नाटक में ऐतिहासिक तथ्यों पर नहीं बल्कि इतिहास से वर्तमान के लिए निकलने वाले निष्कर्षों पर जोर है। प्रसाद ने इस नाटक में इतिहास के ध्रुव सत्यों के साथ जीवन के चल सत्यों का उद्घाटन ऐसी सजीव संभाव्यता के साथ किया है कि इतिहास स्वतंत्र वस्तु न रहकर जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति का साधन मात्र बनकर रह गया है। इसीलिए प्रसाद ने इस नाटक की कथावस्तु को साहित्यिक कृतियों और ऐतिहासिक सूत्रों से प्राप्त करके भी अपने चिंतनशील व्यक्तित्व और सामाजिक समस्या की अभिव्यक्ति के लिए सब प्रमाणों का ज्यों का त्यों आधार नहीं बनाया है।

ध्रुवस्वामिनी के कथानक का मूल आधार विशाखदत्त का 'देवीचंद्रगुप्तम' नाटक के वे अंश हैं जो विभिन्न सूत्रों से विद्वानों को उपलब्ध हैं लेकिन प्रसाद ने नाटकीय आवश्यकता तथा उपयोगिता के हिसाब से इसमें अपनी कल्पना से जोड़ने तथा घटाने का काम भी किया है। अधिकांश ऐतिहासिक स्रोत इस बात को स्वीकार करते हैं कि शक राज पर विजय प्राप्त करने के पश्चात रामगुप्त के मन में चंद्रगुप्त की शक्ति के प्रति जो आशंका पैदा हुई, उससे बचने के लिए उसने विक्षिप्तता धारण कर ली थी। इन ऐतिहासिक प्रमाणों के बावजूद प्रसाद ने अपने नाटक में इस विचार को महत्व नहीं दिया-वस्तुतः रामगुप्त की यह विक्षिप्तता उन्हें स्वीकार न थी। इसका मुख्य कारण यह था कि वे उसे इतना नीचे गिराने को तैयार नहीं थे। इसी प्रकार चंद्रगुप्त ने स्वयं भाई की हत्या कर उसकी पत्नी से विवाह किया था, इस बात का ऐतिहासिक प्रमाण होने पर भी प्रसाद को चंद्रगुप्त के गौरव की रक्षा करनी पड़ी। फलतः उन्होंने उसकी हत्या को भिन्न रूप में प्रस्तुत कर ऐतिहासिक तथ्य तथा नाटकीय कला के साथ सुंदर सामंजस्य स्थापित किया है। मूल कथावस्तु में शकराज और कोमा के प्रणय प्रसंग को जोड़कर प्रसाद ने पूरे नाटक को सार्थकता प्रदान करने की कोशिश की है। उन्होंने इस ओर संकेत कर कि कोमा की सगाई पहले ही शकराज से हो चुकी थी, ध्रुवस्वामिनी को प्राप्त करने की उसकी कोशिश को

सार्थकता प्रदान की है। शकराज का ध्रुवस्वामिनी संबंधी प्रस्ताव ऐतिहासिक माना जाता है। इन सारे प्रसंगों में प्रसाद की महत्ता इस बात में है कि इस नाटक की रचना में उन्होंने इतिहास तथा कल्पना का सुंदर समन्वय किया है। शक-युद्ध के ऐतिहासिक संदर्भ के साथ उन्होंने शकराज और कोमा के काल्पनिक प्रणय-प्रसंग की भी अवतारणा की है। इस प्रसंग से तिरस्कृत प्रेम की व्यंजना और नारी के प्रति पुरुष के अत्याचार और विश्वासघात को चित्रित किया गया है जो नाटक की स्त्री समस्या को और गहरा रंग प्रदान करता है। इस काल्पनिक प्रसंग की अवतारणा प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी की पीड़ा को और गहरे रूप में प्रस्तुत करने के लिए भी किया है। इस प्रकार से ध्रुवस्वामिनी नाटक में प्रसाद ने अन्य कई काल्पनिक प्रसंगों की अवतारणा की है।

नाटक के प्रारंभ में ध्रुवस्वामिनी के दांपत्य जीवन का कटु तथा कुबड़ों, बौनों आदि का हास-परिहास सभी नाटक की मूल समस्या को प्रखर रूप से सामने लाने के लिए रचे गए हैं। कुबड़ों, बौनों का हास-परिहास आदि गंभीर अर्थ लिए हुए हैं। ये सब रामगुप्त की नपुंसकता तथा कायरता पर गहरा व्यंग्य करते हैं। तीसरे अंक में शकराज की मृत्यु के बाद उसका शव लेने कोमा का आना, ध्रुवस्वामिनी से निवेदन करना, रामगुप्त के आदेश पर कोमा तथा उसके पिता का वध होना, चंद्रगुप्त का ध्रुवस्वामिनी के प्रति पूर्व प्रेम को स्वीकार करना और ध्रुवस्वामिनी तथा पुरोहित का वाद-विवाद जैसे महत्वपूर्ण प्रसंग पूर्णतया काल्पनिक हैं। इसी प्रकार शिखर स्वामी तो है ऐतिहासिक पात्र, लेकिन प्रसाद ने अपनी कल्पना द्वारा उसे विलक्षण व्यक्तित्व प्रदान किया है। ये सभी काल्पनिक प्रसंग ऐतिहासिक तथ्यों के साथ मिलकर ध्रुवस्वामिनी नाटक की समस्या को उसकी परिणति तक पहुँचाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद अपने युग की अन्य समस्याओं के समाधान के लिए भारतीय जनमानस में स्थापित प्रेरणा के स्रोत ऐतिहासिक पात्रों को चुनते हैं लेकिन उन्हें अपने समय की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने के लिए इतिहास की तथ्यात्मकता की सीमा को तोड़कर, अपनी कल्पना शक्ति का इस्तेमाल करते हैं और ऐसे चरित्रों का निर्माण करते हैं, जो युग समस्याओं के समाधान के लिए प्रेरणा-स्रोत बन सके।

प्रसाद ने 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में गुप्तकालीन एक विस्मृत से इतिहास को उजागर करने का प्रयास किया है। इस नाटक में प्रसाद ने सम्राट समुद्रगुप्त के बड़े बेटे राम गुप्त और उनकी पत्नी ध्रुवस्वामिनी के इतिहास को प्रकट किया है। कई इतिहासकार इस बात को स्वीकार नहीं करते हैं कि राम गुप्त ने कभी शासन किया था। समुद्रगुप्त के बाद रामगुप्त कभी राजगद्दी पर नहीं बैठा था। उनके अनुसार समुद्रगुप्त के बाद चंद्रगुप्त द्वितीय उत्तराधिकारी के रूप में गद्दी पर बैठा था। रामगुप्त की ऐतिहासिकता पर उठने वाले सवालों का प्रधान कारण यह था कि बहुत दिनों तक न तो रामगुप्त का कोई सिक्का मिला था न कोई अभिलेख संबंधी साक्ष्य प्राप्त हुआ था। परंतु 1924 ईस्वी में फ्रेंचपुराविद सिल्वालेवी ने विशाखादत्तकृत 'देवीचंद्रगुप्तम' के कुछ उद्धरणों को रामचंद्र गुप्त द्वारा रचित 'नाट्यदर्पण' नामक नाट्य-ग्रंथ में पढ़कर अपना एक लेख जनरल ऐशियाटिक में प्रकाशित कराया और उसमें लिखा कि 'देवीचंद्रगुप्तम' के आधार पर यह ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त के पश्चात रामगुप्त गद्दी पर बैठा था। वह कायर एवं क्लीव था। उसे दुर्बल जानकर शकराज ने उस पर आक्रमण करके उसे आतंकित किया था तथा संधि की शर्तों में उसने उसकी सुंदर रानी ध्रुवस्वामिनी या ध्रुवदेवी को मांग लिया था। भयभीत रामगुप्त ने यह शर्त स्वीकार कर ली थी, लेकिन उसके छोटे भाई चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपने कुल और ध्रुवदेवी के गौरव की रक्षा की थी।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रसाद के नाटक इतिहास के माध्यम से युग की मानसिकता से जुड़े हुए हैं। ध्रुवस्वामिनी में नारी के अस्तित्व, स्वातंत्र्य और मोक्ष की जो समस्या प्रसाद ने इतिहास के पृष्ठों से उठाई है, वह भी स्वयं उनके अपने युग की नारी-समस्या थी।

संदर्भ :

1. कुसुम कुमार : नाट्यकला मीमांसा, पृष्ठ 13।
2. शुक्ल रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 528।
3. मोहन राकेश, लहरों के राजहंस, पृष्ठ 8।
4. विद्यालंकार सत्यकेतु, भारत का प्राचीन इतिहास, पृष्ठ 40।

❖

असिस्टेंट प्रोफेसर, श्री गुरु नानक देव खालसा कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
मोबाइल : 9868617559 ई-मेल : drshailjamohan@gmail.com

आज की कविता

— हेमंत कुकरेती

कर्मभूमि में गाँव का गरीब किसान और शहर का दलित वर्ग जन आंदोलनों का प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं। इन आंदोलनों के चित्रण में अप्रत्यक्ष रूप से 1929 का लगानबंदी आंदोलन और 'सविनय आज्ञा भंग' आंदोलन का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। प्रेमचंद ने इस उपन्यास में यथार्थ के महत्त्वपूर्ण पहलुओं को परखकर सबसे अधिक बल 'लगान की समस्या' तथा 'शहर और गाँव के गरीब अछूत वर्ग' पर दिया है। नगर में यह आंदोलन पं. मधुसूदन की कथा में कुछ 'अछूतों' द्वारा भगवान के भक्तों की चरण-पादुकाओं के पास आकर बैठ जाने के अक्षम्य अपराध को लेकर प्रारंभ होता है।

कविता-संग्रहों में कवि भूमिका लिखने से अमूमन बचते ही हैं। फिर पाँच संग्रह बिना भूमिका के छपने के बाद छठे संग्रह में ऐसी क्या आफत आ पड़ी कि यह व्यायाम करना अनिवार्य हो गया है! वैसे भी कविता की किताब की भूमिका उन कथित पुस्तक-समीक्षकों और पेशेवर निंदकों के सबसे ज्यादा काम आती है जो एक भी कविता पढ़े बगैर भूमिका की 'तार्किक' समीक्षा के बहाने कवि की पिटाई करने की पुण्य-पावन भूमिका निभाते हैं। उन्हें भी मदद मिलती है जो भूमिका को सामने रखकर कविताओं की निंदा करना चाहते हैं। इन खतरों को जानते-बूझते हुए पहला सवाल तो यही कि कविता-संग्रह में भूमिका की जरूरत क्या है? कविता अपने आप में संपूर्ण भूमिका है। लेकिन कुछ आंतरिक दबाव हैं जो इन कविताओं को लिखने और इन्हें संकलित करने की समूची प्रक्रिया में महसूस होते रहे हैं। यह भूमिका भी शायद उस दबाव की प्रतिश्रुति है।

ऐसे तो हर नई कविता पिछली से आगे की नहीं तो अलग कविता जरूर होती है। इस संग्रह की कविताएँ मेरी मनोभूमि से छिटकती रही हैं। संग्रह के लिए कविताएँ चुनने के क्रम में पाया कि इन रचनाओं (हालाँकि उन्हें रचा नहीं गया वो जैसे अपने आप ही आई हैं) के पाठ आश्चर्यजनक तरीके से पूरा होने के बाद संतुष्ट करने की जगह बेचैन करते रहे हैं। पहले की तमाम कविताएँ एक ही कविता के सुविचारित अंश की तरह रचने का आनंद देती थीं। जबकि इन्हें बार-बार कंडीशनिंग तोड़ने के क्रम में पाया गया है। ऐसे में लिखने वाले की स्थिति काफी हद तक उस व्यक्ति जैसी होती रही है जो नई शक्ल पाने के लिए बनी हुई छवि में तोड़-फोड़ करता रहा। इस सिलसिले में उसने पाया कि यह तकलीफदेह उपक्रम था। वह सफल हुआ या असफल या इस ध्वंस में कुछ नया बना भी या सब कुछ बिखर गया, इसका फैसला दूसरे करेंगे।

कविता को प्रवृत्तिमूलक कथ्य के रूप में समझने-समझाने वाले इन कविताओं के साथ क्या सलूक करेंगेय कहना मुश्किल है क्योंकि इनमें कोई भव्य या दिव्य संदेश या उपदेश नहीं हैं। इनमें गुस्सा है। अपने आसपास जो बुरा या गलत हो रहा है, उसकी चुगली लगाई गई है या अवसाद से भरकर बुराई की गई है। कुछ न कर सकने की विवशता है। खुद पर ही शक होता रहा कि कहीं यह अपने समय की छिछले किस्म की निंदा तो नहीं है। यहाँ खुद की भी शिकायत है। अपने आप से जिरह करते हुए खुद को कठघरे में खड़ा करते हुए आत्मदया या नकली शहीदी भाव नहीं ओढ़ा गया। कुछ न कर सकने की खीज अब विषादग्रस्त नहीं करती! एक बात और हुई है कि पहले बार-बार घिरनेवाला अँधेरा छँटने लगा है। कोलकाता, झारखंड, बनारस, इलाहाबाद, जबलपुर, शिलांग, अंडमान, दार्जिलिंग, सिक्किम-हैरत की बात है कि ज्यादातर कविताएँ इन पहली बार गए प्रांतों या उनकी यात्रा में लिखी गईं। पिछले ग्यारह वर्षों में अज्ञातवास या प्रवास की चाही-अनचाही स्थितियों में ये कविताएँ लिखी गई थीं। अब इन्हें संकलित करने के बाद यह सवाल उठ रहा है कि क्या इन जगहों की ईकोलॉजी, भू-संस्कृति या राजनीति ने इन कविताओं को इस रूप में आने में मदद की या इस तथ्य का महत्त्व केवल अकादमिक है? इतना तो है कि मेरे समय की सच्चाईयों को या अंतरालों को ये रचनाएँ रेखांकित ही नहीं करती बल्कि उन्हें बड़े परिप्रेक्ष्य में महत्त्व देती हैं और अपने बृहत्तर समाज के संदर्भ में उजागर करती हैं। सृष्टि या ब्रह्माण्ड या संसार या देश की बजाय कतई स्थानीय संदर्भों को सर्वसमावेशी और बहुलता में देखने और प्रस्तुत करने का प्रयास इन कविताओं में है।

विशिष्ट की बजाय सामान्य का महत्त्व अब अधिक स्पष्ट रूप में समझ आ रहा है।

जीवन के साढ़े पाँच दशक देश की राजधानी में गुजारने के बाद कई दुर्घटनाएँ या विस्मित करने वाले बदलाव क्षण-प्रतिक्षण देखने को मिलते रहे हैं। हर कोई ताकतवर बनना चाहता है। बड़ा बाजार घरों को दुकानों में तबदील कर चुका है। कई ताकतें हैं, जो मामूली जगहों को ही नहीं, वहाँ रहने वाले सामान्य मनुष्य को उपनिवेश की तरह देख रही हैं और उनके साथ ऐसा ही व्यवहार कर रही हैं। ऐसे में कविता कथित उदारवादी भूमंडलीकरण का प्रतिपक्ष स्थानीयता में रख रही है। यह उसकी मजबूरी है या उसकी चिर-विरोधी आदत या बेकार की कवायद हैय इसपर फिलहाल कोई टिप्पणी नहीं कर सकता क्योंकि मैं खुद इसकी वजह ढूँढ़ने की अभी कोशिश ही कर रहा हूँ!

मैंने पाया कि इससे पहले की मेरी कविताएँ नैतिक दवाबों से इतनी आक्रांत रहीं कि वे अपनी सफलता में हद-से-हद सुगठित ललित कला-प्रस्तुति जैसी बन सकीं। उन कविताओं ने अपनी भूमिका निभाई। वह अपने समय की जरूरतों या दबावों में अस्तित्व में आई थीं। सवाल उठ सकता है कि क्या मैं उन्हें खारिज कर रहा हूँ? असल में रचनाकर्म को दाखिल-खारिज करने का काम समय करता है। आज की जरूरतें आज की कविता ही पूरी कर सकती है। इतना जरूर है कि इस संग्रह की कविताओं में अच्छा-अच्छा कहने का भाव नहीं है। ये कविताएँ आरंभ, अंत और समूचे पाठ में पहले से निर्धारित शिल्पवाद के सामने भी खड़ी हैं इसलिए इनमें पूर्वाग्रही तार्किकता या निश्चित अर्थ नहीं हैं।

अब जब ये कविताएँ किताब में इकट्ठी हो गई हैं तो यह सोच जाती रही कि यह अपने समय और समाज से स्वायत्त हैं। अब ताकत या राहत इससे महसूस हो रही है कि तमाम तरह के पॉवर स्ट्रक्चर्स के सामने खड़े रहने का या उनकी दुष्टताएँ उजागर करने का प्रयास ये कविताएँ भरसक करती हैं जबकि इनका निर्माण किसी राजनीतिक एक्टिविस्ट ने नहीं किया! सब इन्हें स्वीकार करेंगे, ऐसी कोई उम्मीद नहीं है, अर्थ के अनेक मंच या अर्थ पाने के लिए शास्त्रीय निर्देशों का विरोध इनमें है। इसलिए परंपरित अर्थ में भी लोकप्रिय कविता का उदाहरण ये कविताएँ नहीं बनती हैं। इंसानी नियति की पैरोड़ी करने वाली ये कविताएँ तमाम तरह की सत्ता की सर्वोच्चता और उसके शक्ति प्रदर्शन का उपहास एक बच्चे की तरह उड़ाती रही हैं।

हमारी पीढ़ी जब कविता में आई तो वह बीसवीं सदी के अंतिम दो दशक थे, एक विशेष बौद्धिक वर्ग के लिए रूस का विघटन बड़ा अपघात था। दूसरी तरफ मंडलवादी और कमंडलवादी राजनीति के समानांतर उभार से सुलगता हुआ त्रिकोण बन गया था। रूस का टूटना कईयों के लिए रामराज्य का बिखर जाना था। मंडलवादी और कमंडलवादी विशेषण उन्होंने ही आविष्कृत किए थे। पहलेवालों के साथ उनका रिश्ता घृणा और प्रेम का संश्लेषण था। दूसरे वालों से वे दूरियाँ बनाए रखने के हिमायती थे। कई रूसवादियों को लगता था कि दक्षिणपंथी कमंडलवादी ही रूस के विघटन के जिम्मेदार थे। तीनों ही एक-दूसरे से टकरा रहे थे। वह दौर विचारों के नजरिए से धूल और धुएँ से भरा था। हम व्यवस्था से यह चाहते रहे कि वह हमारे आर्थिक हितों को सुनिश्चित करे और हमारे राजनीतिक स्पेस को बरकरार रख सके। साथ ही हमारी सामाजिक आस्थाओं और सांस्कृतिक विश्वासों को टूटने से बचाए। व्यवस्था ऐसा करने में हमेशा की तरह नाकाम रही। आज भी वह उतनी ही तटस्थ और संवेदनहीन है जितना कि पहले थी। इस शाश्वत सत्य में कोई बदलाव नहीं आया है कि रचनाकर्मियों के लिए यह कठिन समय है। फिर भी अच्छे-बुरे कई तीव्र बदलाव हुए हैं।

वामपंथ, दक्षिणपंथ या मध्यमार्ग जैसे किताबी किस्म के सरलीकृत वर्गीकरण बेमतलब साबित हो चुके हैं। जिस तरह जाति व्यवस्था टूटी है या शिथिल हुई है उसी तरह से किसी भी राजनीतिक विचारधारा-विशेष का वर्चस्व टूटा है। पिछली सदी के साठ और सत्तर के दशक में मचे गाँव बनाम शहर के झगड़े में गाँव की संवेदना वाली कविता को श्रेष्ठ ठहराने वाले फतवे आज ऐसे चुटकले लगते हैं जिन पर हँसी भी नहीं आती। असल में आज की कविता सजी-सँवरी खाँचाबद्ध विषयनिष्ठ निबंध न होकर ऐसी वैचारिक वस्तुनिष्ठ टिप्पणी है जिसकी प्रस्तावना और निष्पत्ति सुचिंतित है। मामूली लोगों के जीवन की दैनंदिन घटनाएँ और उनकी आपसी मुठभेड़ ही इस कविता की बुनावट निर्मित करने वाले कारक हैं। इसी सैद्धांतिकी से इस कविता के जीवन-मूल्य उपजे हैं।

इस कविता में एकवचन की जगह बहुवचन, प्रथम पुरुष की जगह अन्य पुरुष, अप्रत्यक्ष कथन की जगह प्रत्यक्ष कथन सक्रिय हुए हैं। विशिष्ट की बजाय वंचितों का वर्चस्व प्रस्तुत करने वाली इस कविता से पाठक अपने अनुकूल अर्थ पा सकता है। क्योंकि इसकी अर्थ प्रणाली पारदर्शी है। बँधे-बँधाए प्रतीक इनमें नहीं हैं। रोज दिखने वाले दृश्य बिंबों के रूप में यहाँ हैं। छोटे बिंबों से बड़े मेटाफर रचने में यह कविता कामयाब हुई है।

इस कविता के विषय छोटे हैं लेकिन अर्थ नहीं। यह कविता अकेले कंठ से निकली सबकी आवाज है। इसमें शीर्षक बेशक अर्थपूर्ण नहीं है लेकिन संपूर्ण नैरेटिव को कई आयामों में यह कविता रखती है। इसे समझने के लिए कविता को पूरा पढ़ना होगा। इस कविता की कोई परिभाषा नहीं है। आज विडंबना और विसंगतियों पर व्यंग्य भी बेअसर हो चुका है। इन कविताओं की पदावली की भाषिक प्रणाली भी बदल गई है। धीमी मद्धिम भाषा लाउड या वाचाल हो गई है। पहले की कविता के अभ्यस्त या दीक्षित कानों को यह कविता कर्कश और बेसुरी लग सकती है। मीठी भाषा तल्ख क्यों होती गई इसके उत्तर समय और समाज में ही मौजूद हैं। इतना तय है कि इसी भाषा में कविता अपना और अपने समय का क्रिटिक बन सकती है। ऐसे में ये कविताएँ एक नई भाषा पाने की जद्दोजहद हैं। इन कविताओं और हमारे बाद उभरने वाली पीढ़ी की कवियों में इन चीजों को देखा जा सकता है।

❖

ए-3/50, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063
मोबाइल : 9818540187, 7042848118
ई-मेल : hemantkukreti65@gmail.com

अखबारी हिंदी का बदलता स्वरूप

— डॉ. आलोक रंजन पांडेय

आज अखबार निकालना पूर्णतः व्यवसाय का कार्य बन गया है। इसलिए पहले जैसी हिंदी आज के अखबारों में दिखाई नहीं दे पाती। क्योंकि बाजारवाद का वर्चस्व अखबारों पर भी दिखने लगा है। बाजारवाद के इस जमाने में कितने अखबार के संपादक भाषा की अस्थिरता और अराजकता के प्रति सचेत हैं? उनकी दृष्टि में अखबार की प्रसार संख्या में वृद्धि का लक्ष्य सर्वोपरि है, भाषा का मुद्दा गौण। उन पत्र-प्रतिष्ठानों के हिंदी अखबारों की स्थिति तो अत्यंत निराशाजनक है, जो अंग्रेजी में भी अखबार निकालते हैं। माना जाता है कि अंग्रेजी अभिजातों की भाषा है और हिंदी दरिद्रों की। इतना होने के बाद आज भी भारत में हिंदी अखबारों का प्रसार ज्यादा है। अन्य मामलों में जिस तरह दरिद्र लोगों की रुचियाँ पिछड़ी हुई हैं उसी तरह भाषा के मामले में भी हिंदी भाषी पिछड़े हुए हैं।

मानव जो कुछ भी देखता है उसे अन्य व्यक्तियों को बताना चाहता है। साथ ही वह सबकी बातों को जानना भी चाहता है। किसी घटना को परखना और उसका वर्णन करना मानव-मन की एक सहज प्रवृत्ति है। इसी भावनात्मक प्रवृत्ति के कारण संचार ज्ञान-प्राप्ति की उत्कंठा, चिंतन एवं अभिव्यक्ति की आकांक्षा ने भाषा को जन्म दिया, ठीक उसी प्रकार समाज में एक दूसरे के बारे में जानने की प्रबल इच्छा शक्ति ने 'संचार' को विकसित किया। विचारों, अभिवृत्तियों तथा सूचना को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक संप्रेषित करने की कला का नाम ही संचार है। इस तरह संचार का सामान्य अभिप्राय व्यक्तियों का आपस में आचार, ज्ञान, विचार तथा भावनाओं का कुछ संकेतों द्वारा आदान-प्रदान है।

समाज में रहनेवाला कोई भी व्यक्ति बहुत देर तक बिना बात किए हुए नहीं रह सकता। वह अपने विचारों को दूसरे तक पहुँचाने का यथासंभव प्रयास करता है। हम चाहकर भी बिना संचार के नहीं रह सकते। वास्तव में संचार 'जीवन की निशानी' है। व्यक्ति जब तक जीवित है, वह संचार करता रहता है। यहाँ तक एक बच्चा भी रोकर, चिल्लाकर या संकेतों के द्वारा अपनी माँ का ध्यान अपनी ओर खींचता है और माँ उसकी बातों को समझती है। एक तरह से संचार विहीन होने का मतलब है जीवन का नाश। सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य संचार के द्वारा ही दूसरों से संबंध स्थापित करता है और रोजमर्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। ध्यान से देखा जाए तो सभ्यता की विकास की कहानी संचार और उसके साधनों के विकास की कहानी है। इसके लिए मनुष्य ने चाहे भाषा का विकास किया हो या लिपि का या फिर छपाई का या रेडियो, टेलीविजन, इंटरनेट और फिल्म का, इसके मूल में अपने संदेशों का सार्थक आदान-प्रदान ही है। दरअसल, संदेशों के आदान-प्रदान में लगने वाले समय और दूरी को कम करने के लिए ही मनुष्य निरंतर संचार माध्यमों की खोज कर रहा है। आज के इस तकनीकी युग में कुछ हद तक मनुष्य को इसमें सफलता भी मिली है।

दुनिया के किसी भी कोने में यदि कोई घटना होती है तो जनसंचार माध्यमों के द्वारा हमें कुछ ही मिनटों में वहाँ का समाचार मिल जाता है। अगर उस जगह किसी व्यक्ति के पास कैमरे वाला मोबाइल है या टेलीविजन समाचार चैनल का कोई संवाददाता है तो हमें वहाँ की तस्वीरें इंटरनेट या टीवी पर देखने को मिल जाती है। आजकल जो न्यूज चैनल में वायरल वीडियो का प्रचलन बढ़ा है, वह इसी का प्रमाण है। कोई भी व्यक्ति आज किसी भी खबर को अपने मोबाईल से रिकॉर्ड कर वायरल कर सकता है जिससे सारी दुनिया उस खबर को जान और समझ सकती है। कोई व्यक्ति

क्रिकेट का शौकीन है और उसके पास इतनी सुविधाएं नहीं हैं कि विदेश में जाकर भारतीय क्रिकेटरों को खेलता देख सके तो वह घर बैठे टीवी पर उस मैच का सीधा प्रसारण देख सकता है। जबकि पहले ऐसा संभव नहीं हो पाता था। संचार माध्यम ने समाज में अज्ञानता को हटाकर जागृति लाकर रख दी है । इसके कारण ढोंग, पाखंड और आडंबर का विस्तार कम हो रहा है हर मनुष्य अपने अधिकारों के प्रति सचेत होता जा रहा है। इसका ताजा उदाहरण अन्ना का भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन था। यह संचार माध्यम की ही शक्ति थी इस विशाल भारतवर्ष की सरकार को मात्र तीन दिनों में ही अन्ना के सामने झुकना पड़ा और 'जनलोकपाल' के संबंध में बात करने पर विवश होना पड़ा। यही कारण है कि आज संचार माध्यम हमारे लिए केवल सूचना के माध्यम नहीं रह गए हैं बल्कि उससे आगे बढ़कर वे हमें जागरूक बनाने और हमारा मनोरंजन करने में भी अग्रणी भूमिका निभा रहे हैं।

संचार माध्यम आज के युग की वह जादुई ताकत है जो हरे को लाल, लाल को सफेद और सफेद को नीला दिखा सकती है। यही वह ताकत है जो सामान्य को विशिष्ट और विशिष्ट को साधारण दिखा सकती है। यही वह माध्यम या रास्ता है जो हमें अपने छोटे-छोटे दु:ख और सुख के साथ एक-दूसरे से जोड़ती है। देश, भाषा और कौम की सीमा लांघ कर एक होने का अहसास कराती है।

मानव स्वभाव से ही जिज्ञासु होता है, वह अपने आसपास होने वाली घटनाओं को जानने के लिए उत्सुक रहता है। ज्ञानरूपी दिव्य शक्ति की सुविधा जो पहले मुट्ठी भर लोगों तक ही सीमित थी वह समाचार-पत्रों या अखबारों द्वारा सर्वसुलभ हो गई। इस प्रकार परिस्थितियों के अध्ययन, चिंतन-मनन और आत्माभिव्यक्ति की प्रवृत्ति और 'सर्वजनहिताय तथा सर्वजन सुखाय' के प्रति व्याग्रता ने अखबार या समाचार-पत्र को जन्म दिया। आज समाचार-पत्र को ही अखबार कहा जाता है। सभ्यता के विकास के साथ ही इसकी शुरूआत हुई और उतरोत्तर विकसित होती हुई यह मानव-समाज की अनिवार्य अंग बन गई। 'समाचार-पत्र' शब्द में प्रयुक्त समाचार शब्द कोई नया नहीं है। इसका प्रयोग आदिकालीन ग्रंथ वेदों से मिलता आ रहा है। हाँ, निरंतर प्रयोग के कारण अर्थ का विकास जरूर होता गया है। रामायण में लंका में अपहृत कर रखी गई सीताजी का 'समाचार' लाने वाले हनुमान तथा दुनिया भर के विचरण करके इधर की सूचनाएँ उधर करने वाले नारद मुनि समाचार श्रृंखला की प्राथमिक कड़ियों के रूप में गिने जा सकते हैं। इसी तरह पंचतंत्र की कथाओं एवं हितोपदेश में भी समाचार शब्द का प्रयोग मिलता है। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के सुंदरकांड में समाचार शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया है –

'ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई॥'

इस तरह कहा जा सकता है कि समाचार का अभिप्राय रोजमर्रा के जीवन को सरल एवं सुलभ ढंग से व्यतीत करने के लिए दी जाने वाली शिक्षा या ज्ञान से भी है। समाचार शब्द हिंदी वर्णमाला के चार वर्ण 'समचर' से बना है और इसका अर्थ है साथ-साथ चलने वाला। जिस तरह समाचार की परिभाषा के संबंध में विद्वानों का मत एक नहीं है उसी तरह अखबार या समाचार-पत्र की भी कोई अंतिम परिभाषा नहीं है। फिर भी विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि के अनुसार इसे समझने का प्रयास किया है –

1. भारतीय प्रेस एक्ट के अनुसार समाचार-पत्र ऐसे नियतकालिक पत्र को कहते हैं जिसमें सार्वजनिक समाचार या उनसे संबंधित टिप्पणी प्राप्त होती है।
2. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार समाचार-पत्र एक सजिल्द धारावाही प्रकाशन है जो नियमित समय के अंतर से प्रकाशित होती है और जिसमें समाचारों को प्रमुखता दी जाती है । अधिकांश समाचार-पत्र दैनिक या साप्ताहिक होते हैं। कुछ अर्द्ध-साप्ताहिक भी होते हैं। समाचार-पत्र और पत्रिका का अंतर भी रोचक है-विशेष रूप से साप्ताहिक प्रकाशनों के बीच यदि प्रकाशन सजिल्द हो तो उसे पत्रिका कहा जाता है।
3. ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा उपलब्ध तथ्यों के आधार पर अंबिका प्रसाद वाजपेयी ने समाचार-पत्र के संबंध में लिखा है कि जिस कागज में समाचार, जानकारी, घटनाएँ आदि हो और जो बिक्री के लिए नियत स्थान पर छापा जाता है, उसे समाचार पत्र कहते हैं। ब्रिटिश संसद के अनुसार अन्य परिभाषाओं को देखें तो केवल दैनिक समाचार पत्र को नहीं, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक सभी तरह के पत्र आ जाते हैं. परंतु समाचार-पत्र का नाम आते ही दैनिक समाचार-पत्र का रूप ही सामने आता है।
4. एफ. विलियम्स के अनुसार समाचार-पत्र तात्कालिक घटनाओं के संबंध में सबसे सही ज्ञान और विवरण शीघ्रता से प्राप्त कर उसको पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है।

समाचार को अरबी भाषा में 'खबर' कहते हैं। खबर का बहुवचन 'अखबार' है। इसीलिए खबर छापने वाले कागज को 'अखबार' कहते हैं। जनसमाचार माध्यमों की विविधता के बावजूद आज भी अखबार का अपना एक अलग स्थान है। अखबार केवल घटना की सूचना ही नहीं देता, बल्कि उसकी

व्याख्या भी करता है। इसीलिए खबरों में प्रकाशित समाचार विश्वसनीय और स्थायी होते हैं। सूचना के अन्य माध्यम किसी घटना की जानकारी केवल संक्षेप में देते हैं। साथ ही उन्हें केवल एक विशेष क्षण में ही देखा या सुना जा सकता है जबकि अखबार द्वारा प्रदत्त सूचनाएँ कभी भी पढ़ी जा सकती हैं। इसके अलावा टी. वी., रेडियो के दर्शक व श्रोता अपनी मनपसंद व वांछित जानकारी को सहेजकर नहीं रख सकते, क्योंकि हर व्यक्ति के पास रिकॉर्डिंग की सुविधा नहीं होती। लेकिन समाचारपत्र व पत्रिकाओं में प्रकाशित जानकारी को काटकर फाइल में लगाकर रखा जा जाता है और उसे समयानुसार काम में लाया जा सकता है। साथ ही अखबार सर्वजन सुलभ है जबकि संचार के अन्य माध्यम सभी के पास हो यह आवश्यक नहीं है। अखबार में जब किसी घटना का वर्णन होता है तो उस घटना के साथ यह भी बताना जरूरी होता है कि यह घटना कब, कहाँ, कैसे और क्यों हुई? ये समाचार के छः ककार कहलाते हैं। उसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। जैसे-'किसी रेल-दुर्घटना का समाचार अखबार में छपा।' इस समाचार से निम्नलिखित प्रश्न उभर कर सामने आते हैं -

क्या - दो रेलगाड़ियों की टक्कर।

कहाँ - दिल्ली में।

कब - 29 जुलाई 2020 को

क्यों - गाड़ी के अनियंत्रण के कारण।

कैसे - ब्रेक फेल होने से

कौन - 200 यात्री घायल हुए।

इस तरह कहा जा सकता है कि जब हम अखबार में किसी भाषा का प्रयोग करते हैं तो उसे अखबारी-भाषा कहते हैं लेकिन जब हिंदी भाषा का प्रयोग करते हैं तो उसे अखबारी हिंदी कहते हैं। अखबार पढ़ने वाले पाठक, मजदूर, पढ़ा-लिखा, अधिकारी, विद्यार्थी, महिला, वृद्ध, पानवाला, चायवाला, डॉक्टर, इंजीनियर, प्राध्यापक या साहित्यकार कोई भी हो सकता है। अतः समाचार सबकी समझ में आ जाए और उसमें बोधगम्यता हो यह आवश्यक है। अतः समाचार लेखक को इसमें भाषिक दक्षता का ज्ञान-होना आवश्यक नहीं। उसे अपनी खबर को इस तरह लिखना चाहिए कि उसे पढ़कर सभी समझ सकें। यही भाषा की सहजता की कसौटी है। अटपटी भाषा, उलझे वाक्य, आलंकारिक या अत्यंत साहित्यिक प्रयोग अखबार के लिए घातक होते हैं। अतः अखबार में अखबार लेखक को समाचार लिखते समय निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक होता है -

1. आम बोलचाल के शब्दों का प्रयोग होना चाहिए ताकि उनके अर्थ के लिए कोश न देखना पड़े।
2. जटिल और लंबे वाक्यों से यथासंभव बचना चाहिए और बोलचाल की भाषा का प्रयोग करना चाहिए।
3. फालतू की बातें नहीं लिखनी चाहिए अर्थात् उतनी ही बातें लिखनी चाहिए जितनी आवश्यक हो।
4. अपनी बातों या तथ्यों को छोटे-छोटे अनुच्छेद में लिखना चाहिए।
5. भाषा हल्की, अश्लील, असंतुलित, दुराग्रहपूर्ण एवं अमर्यादित नहीं होनी चाहिए।
6. चित्रात्मक एवं रचनात्मक भाषा खबरों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माना जाता है क्योंकि ऐसी भाषा से घटनाचक्र दृश्य के रूप में उभरते हैं।

आज अखबार की भाषा अंग्रेजी अनुवाद की भाषा बन गई है। यह भाषा पाठकों को अचंभित कर देती है जिसका प्रमुख कारण दोनों भाषाओं की व्याकरण में अंतर होना है। दोनों की वाक्य-संरचना में पर्याप्त भिन्नता होती है। हिंदी में सबसे पहले कर्ता, कर्म, और क्रिया का प्रयोग होता है, जबकि अंग्रेजी में कर्ता, क्रिया और कर्म का प्रयोग होता है। अनुवाद करते समय हिंदी अखबारों में अंग्रेजी के व्याकरण की छाया मिल जाती है। जैसे-'जापान के लिए रवाना' में 'के लिए' अंग्रेजी के 'और' शब्द का रूपांतरण है जबकि हिंदी में उसकी जरूरत नहीं है। केवल 'जापान रवाना' पर्याप्त है। इसी तरह 'बच्चों में पुरस्कार वितरण' में 'में' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'अमंग' शब्द के कारण हुआ है। जबकि सही वाक्य है-बच्चों को पुरस्कार वितरण। वाक्य रचना में कर्ता, कर्म और क्रिया के क्रम तोड़ने से भाषा का प्रवाह बाधित हो जाता है। जैसे: "अमेरिका में न्यूयार्क शहर के वन टाइम्स स्क्वायर पर एकत्रित करीब दस लाख लोगों ने कड़ी सुरक्षा के बीच नववर्ष का नाचते-गाते हुए स्वागत किया। समारोह में न्यूयार्क के मेयर माइकल ब्लूमबैंग और स्पाइडरमैन का किरदार निभाने वाले अभिनेता क्रिस्टोफर रीत्र भी उपस्थित थे।" (हिंदुस्तान, नई दिल्ली)। उक्त काले अक्षरों में मुद्रित पदों को वहाँ से हटाकर अगर क्रिया से पहले रख दिया जाए तो वाक्य शुद्ध और हिंदी की प्रकृति के अनुरूप हो सकता है-'नाचते गाते हुए नववर्ष का स्वागत किया' और 'समारोह में उपस्थित थे।' हिंदी भाषा सभी तरह के भावों को प्रकट करने में पूर्णतः सक्षम है। हर स्थिति के लिए हिंदी में अपना शब्द होता है। हिंदी के पर्याय-शब्दों में भी ध्वनि भेद के आधार पर सूक्ष्म अंतर होता है जैसे-पुलिस टीम ने जब घटना स्थल का निरीक्षण किया तो वहाँ खून बिखरा पड़ा था। (राष्ट्रीय सहारा, 20 मार्च) लेकिन ध्यान से देखने पर पता चल रहा है कि खून बिखरता नहीं फैलता है, क्योंकि ठोस चीजें

बिखरती हैं जबकि खून तरल है, इसी तरह 'रेल कर्मचारियों का वेतनमान-उठाना', 'आवश्यक अध्यादेश का बचाव', 'निर्णय दिया', 'बैठक या सम्मेलन बुलाना' आदि प्रयोगों में काले अक्षर के शब्द अंग्रेजी के शब्द 'रेंज', 'डिफेंस', 'डिलीवर' और 'कॉल' क्रियाओं के प्रभाव स्वरूप आए हैं। अंग्रेजी वाक्य-रचना का अनुसरण करने से वाक्य लंबे तथा जटिल हो जाते हैं।

भाषा को लेकर जो अराजकता आज फैली हुई है उसका प्रारंभ पहले ही हो चुका था। सभी अखबार अपने-अपने हिसाब से शब्दों का प्रयोग करते थे इसलिए जनसत्ता ने अपने पत्रकारों, संवाददाताओं, उपसंपादकों के लिए भाषा की एक मानक नियमावली प्रकाशित की । इस नियमावली की कुछ महत्त्वपूर्ण बातें निम्नलिखित है -

(1) सभा, समारोहों, कार्यक्रमों आदि की खबर देते हुए 'शुरू' का इस्तेमाल अक्सर अनावश्क होता है। जैसे-'10 अक्टूबर से रामलीला शुरू होगी' की जगह '10 अक्टूबर से रामलीला होगी' काफी है ।

(2) रेलगाड़ी के लिए केवल 'रेल' शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। 'रेल' का अर्थ पटरी होता है न कि रेलगाड़ी।

(3) 'हथियारबंद डकैत' गलत है। 'डकैत' हमेशा हथियारबंद ही होते हैं।

(4) हम आम तौर पर अनुस्वार का प्रयोग करेंगे। नियम के रूप में इसका अपवाद एक तो पंचमाक्षर हैं जिनके साथ अनुस्वार नहीं जाता : जैसे- अन्न, तण्वीर, मम्मट आदि शब्दों में। इसके अलावा य-वर्ग के व्यंजनों वाले अनेक शब्द जैसे-कन्या, अन्य, अन्वय, संन्यास आदि। संहार, संवाद आदि शब्दों में अनुस्वार चल सकता है।

(5) हिंदी वर्तनी में 'य' के वैकल्पिक रूपों के बारे में काफी अराजकता है। उसमें एकरूपता के ख्याल से और छपाई की सुविधा को ध्यान में रखते हुए हम 'ये' की जगह 'ए' और -'यी' की जगह 'ई' का प्रयोग करेंगे। क्रिया रूपों को हम ऐसे लिखेंगे: आए, गए, आएगा, पाएगा, जाएगा, आइए, दीजिए आदि। विशेषण भी वैसे ही लिखे जाएँगे: जैसे नई, पराई, पराए आदि। 'अपव्यय के लिये' 'में लिये' न लिखकर हम 'लिए' लिखेंगे। संज्ञा रूप लतायें, मातायें, कन्यायें आदि क्रमरू लताएँ, माताएँ, और कन्याएँ हो जाएंगे।

(6) एकवचन 'वह' को आदरसूचक रूप देने के लिए 'वे' का प्रयोग प्रचलित है। हम उसी का पालन करेंगे।

(7) जिन व्यक्तिवाचक संज्ञाओं से किसी स्थान या व्यक्ति का बोध होता है उनका रूप विभक्तियों को जुड़ने के कारण नहीं बदलेगा। जैसे, ढाके की मलमल, पटने का गांधी मैदान की जगह की ढाका की मलमल या पटना का गांधी मैदान ही सही है।

(8) संबंध कारक विभक्तियों के प्रयोग के बारे में इस बात का ख्याल रखा जाना चाहिए कि जिन दो शब्दों के बीच संबंध बताया गया हो, वे विभक्ति के पास हों, जैसे-'शिक्षा मंत्रियों की दिल्ली में बैठक' के बजाय 'दिल्ली में शिक्षा मंत्रियों की बैठक' लिखा जाना चाहिए।

(9) 'वाला', 'कर' आदि शब्दों का संज्ञा या क्रिया पदों के साथ मिलाकर लिखना चाहिए। जैसे-घरवाला खाकर, जाकर, आदि। लेकिन 'पहुँच कर' अलग-अलग लिखा जा सकता है।

(10) कृषि उत्पादन के लिए उपज अथवा पैदावार लिखा जाएँ औद्योगिक व खनिज उत्पादन आदि के संदर्भ में उत्पादन लिखा जाए।

(11) 'हेतु', 'एवं' 'तथा' शब्दों के अनावश्यक प्रयोग से बचा जाए।

(12) वाक्य में जब के बाद ही तब आनी चाहिए। अंग्रेजी से अनुवाद के प्रभाव में तब पहले इस्तेमाल करके फिर जब लाने की आदत छोड़नी चाहिए।

(13) देहात, जमीन, मानव, समय, वारदात, जैसे शब्दों के बहुवचन रूप गलत हैं।

(14) 'कार्यवाही' और 'कार्रवाई' शब्दों के अलग-अलग अर्थ रूढ़ हो गए हैं। 'कार्यवाही' प्रक्रिया के अर्थ में इस्तेमाल होता है जैसे बैठक की कार्यवाही तीन घंटे चली। 'कार्रवाई' कोई कदम उठाने के लिए इस्तेमाल होता है जैसे-जिला परिषद अपने फैसलो पर इस नौ अगस्त से कार्रवाई करेगी।

(15) अदालती फैसलों, निर्वाचित संस्थाओं के अध्यक्ष तथा पीठासीन अधिकारियों के फैसलों को 'निर्णय' लिखा जाए 'निश्चय' नहीं।

(16) नामों के साथ उपाधि अथवा श्री आदि लगना अनावश्यक है। श्री, श्रीमती आदि का प्रयोग केवल उपनामो के साथ होगा। जैसे बलराम जाखड़ तथा श्री जाखड़।

(17) किश्त और किस्त के अंतर को ध्यान में रखना चाहिए।

(18) लोकतंत्र, प्रजातंत्र, जनतंत्र और गणतंत्र समानार्थी शब्द हैं। किंतु एकरूपता की दृष्टि से 'लोकतंत्र' शब्द ही इस्तेमाल

किया जाएगा। गणतंत्र दिवस के संदर्भ में तो गणतंत्र का प्रयोग होगा ही, जब गणतंत्र के विशेष अर्थ को बताना हो, तभी गणतंत्र शब्द का इस्तेमाल किया जाएगा।

(19) याने, यानि लिखना गलत है। सही शब्द यानी है ।

(20) हिंदी वाक्य कर्त्ता पर टिका होता है। कर्मवाच्य रूप केवल क्रिया पर जोर देते समय ही रखा जाना चाहिए। अंग्रेजी से अनुवाद के प्रभाव में वाक्य को अनावश्यक कर्म पर टिकने की आदत पड़ गई है। उदाहरण के लिए 'मंत्री के द्वारा बैठक बुलाई गई है' लिखा जाने लगा है, जबकि सही रूप 'मंत्री ने बैठक बुलाई है' होगा। ऐसे वाक्यों में द्वारा के प्रयोग से सदा बचना चाहिए।

(21) हम चंद्रबिंदु का प्रयोग नहीं करेंगे। इसका अपवाद केवल 'हँसना' होगा ।

(22) हलंत के बारे में भी यही व्यवहार होगा। जब संस्कृत के शब्दों को संस्कृत के ही संदर्भ में इस्तेमाल किया जा रहा है, तब उसका प्रयोग होगा।

(23) अनेक शब्दों को नाहक दीर्घ बनाया जाने लगा है। सही रूप ये हैं : दिखाई, निचाई, ऊँचाई आदि।

(24) दुर्घटना और प्राकृतिक आपदाओं में लोग मरते हैं। 'बस ट्रक टक्कर में तीन मारे गए' प्रयोग गलत है। 'मारे गए' का प्रयोग युद्ध, संघर्ष अथवा पुलिस गोली कांड जैसी स्थितियों में ही उचित है। व्यक्ति की गरिमा के ख्याल से 'एक मरा' की जगह 'एक की मृत्यु' लिखा जाना चाहिए। 'चार मरे' प्रयोग सही है।

(25) निर्णय, निश्चय, संकल्प किया जाता है, लिया नहीं जाता।

(26) अँगरेजी, जरमनी आदि शब्दों की जगह अंग्रेजी, जर्मनी शब्द चल गए हैं, हम उन्हें इसी रूप में लिखें।

(27) हत्या के पहले जघन्य, नृशंस आदि विशेषण जोड़ना अनावश्यक है। हत्या अपने आप में ही जघन्य और नृशंस है।

(28) सोना 24 कैरेट का सोना स्टैंडर्ड समानार्थी शब्द हैं। इनमें से किसी एक का ही इस्तेमाल करना चाहिए। सोना 22 कैरेट, सोना आभूषण भी समानार्थी हैं और उनमें से कोई एक ही इस्तेमाल किया जाना चाहिए। एकरूपता की दृष्टि से सोना 24 कैरेट और सोना 22 कैरेट का इस्तेमाल किया जा रहा है।

(29) 'सार्वजनिक प्रतिष्ठानों' अथवा 'सार्वजनिक उद्योगों' के लिए सरकारी प्रतिष्ठान, सरकारी उद्योग लिखा जाना चाहिए।

(30) राजनीति संज्ञा के रूप में इस्तेमाल होता है और राजनीतिक विशेषण के रूप में। राजनीतिज्ञ शब्द को राजनीति विद्या पंडित का अर्थ बताने के लिए सुरक्षित रखना चाहिए।

(31) 'अभूतपूर्व का प्रयोग कम से कम किया जाए संसद, विधानसभाओं में अभूतपूर्व हंगामा, शोरगुल आदि का प्रयोग आम हो गया है इस विशेषण का प्रयोग अति विशेष स्थितियों के लिए बचाकर रखना चाहिए।'

(32) दु:ख, छ: आदि शब्दों में विसर्ग को छोड़ दिया जाएगा । छ: को छह लिखेंगे।

(33) जब तक उर्दू के शब्द का उर्दू के ही संदर्भ में इस्तेमाल नहीं किया जा रहा हो, तब तक नुक्ता नहीं लगाया जाएगा।

(34) 'जबकि' के इस्तेमाल को कम से कम किया जाए।

(35) प्रात:, अपराह्न, सायं, रात्रि की जगह सुबह, दोपहर, शाम, रात शब्दों का इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

(36) गरी, नारियल, खोपरा, गोला, पर्यायवाची शब्द हैं। इनके लिए गोला का इस्तेमाल किया जा सकता है।

अखबारी हिंदी के संबंध में 'दिनमान' और 'जनसत्ता' द्वारा दिए गए भाषा की मानक नियमावली के बावजूद पूरे अखबार की भाषा को एक जैसा नहीं रखा जा सकता है क्योंकि एक अखबार में कई तरह के समाचार होते हैं और उन सबकी अपनी बनावट और बुनावट होती है । जैसे खेल समाचार की भाषा, राजनीतिक समाचार से भिन्न होती है तो संपादकीय भाषा इन दोनों से अलग। हर वर्ग या प्रकार के समाचार की भाषा शैली, शीर्षक-रचना, आकार सीमा, आमुख, पंक्ति अलग-अलग होती है। जैसे-'सोना सुधारा', 'चाँदी चमकी', 'सचिन का बल्ला लहराया', 'दाल में गर्मी', 'सूचकांक में उछाल', जैसे प्रयोग भाषिक वैविध्य को दिखाते हैं। अत: संप्रेषण की सहजता भाषा का प्रमुख उद्देश्य होता है।

आज अखबार निकालना पूर्णत: व्यवसाय का कार्य बन गया है। इसलिए पहले जैसी हिंदी आज के अखबारों में दिखाई नहीं दे पाती। क्योंकि बाजारवाद का वर्चस्व अखबारों पर भी दिखने लगा है। बाजारवाद के इस जमाने में कितने अखबार के संपादक भाषा की अस्थिरता और अराजकता के प्रति सचेत हैं? उनकी दृष्टि में अखबार की प्रसार संख्या में वृद्धि का लक्ष्य सर्वोपरि है, भाषा का मुद्दा गौण। उन पत्र-प्रतिष्ठानों के हिंदी अखबारों की स्थिति तो अत्यंत निराशाजनक है, जो अंग्रेजी में भी अखबार निकालते हैं। माना जाता है कि अंग्रेजी अभिजातों की भाषा है और हिंदी दरिद्रों की। इतना होने के बाद आज भी भारत में हिंदी अखबारों का प्रसार ज्यादा है। अन्य मामलों में जिस तरह दरिद्र लोगों की रुचियाँ पिछड़ी हुई हैं उसी तरह भाषा के मामले में भी हिंदी भाषी पिछड़े

हुए हैं। उसके सामने भाषा जैसी परोस दी जाती है वे उसे खामोशी से स्वीकार कर लेते हैं। इसका फायदा अखबार के संपादक और उसके सहयोगी उठाते हैं। वे भाषा के मानकीकरण पर ध्यान नहीं देते और अंग्रेजी-हिंदी-उर्दू का घालमेल तैयार कर देते हैं जो हिंदी की प्रकृति के अनुकूल नहीं होता। नीचे कुछ समाचार पत्रों से असंगत भाषा-प्रयोग का उदाहरण दिया जा रहा है -

। आज जमीनी जिंदगी जीने और विचारों के आदान-प्रदान दोनों ही क्षेत्रों में तेज रफ्तारी और चुस्त स्पष्ट बयानी का जमाना है।

। किसी को दसमाले का निर्माण करवाना हो तो उसे अनेक औपचारिकताओं से गुजरना पड़ता है। अनेक सरकारी विभागों के अनेक बार चक्कर लगाने पड़ते हैं। अनेक प्रमाण पात्र जुटाने पड़ते हैं।

। चंडीगढ़, जम्मू-कश्मीर, जयपुर और लेह में ठंडी हवाओं और कोहरे के कारण राजधानी से आने वाली विमान सेवाएं प्रभावित हुई।

। ग्रैंडमास्टर विश्वनाथन आनंद आज उस समय भारत का पहला विश्व चैंपियन बन गया, जब उसने यहाँ फिडे विश्व शतरंज चैंपियनशीप के फाइनल में स्पेन के एलेक्सी शिरोव को मात दे दी।

। वहीं मोबाइल से मोबाइल और घरेलू फोन से बातचीत करने में लोगों को घंटों लाइन के व्यस्त होने और उसके खाली होने तक इंतजार करना पड़ा।

। अमिताभ बच्चन एबीसीएल का पुनरोद्धार करेंगे।

। आडवाणी ने आतंकवाद पर काबू पाने के लिए विज्ञान एवं बुद्धिबल की आवश्यकता पर जो बल दिया वह बिल्कुल सही है...लेकिन आतंरिक सुरक्षा से संबंधित हमारा जो ढांचा है उसमें अनेक कमजोरियाँ हैं।

। कांग्रेस में भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम संबंधी 25 साल दृष्टि पत्र भी प्रस्तुत किया जाएगा।

उपर्युक्त उदाहरणों में काले अक्षर में मुद्रित अंशों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि इनमें या तो वाक्य संरचना की गलतियाँ हैं या अटपटे शब्दों का प्रयोग हुआ है। उपर्युक्त उदाहरण सिर्फ समाचार से न होकर संपादकीय अग्रलेख या संपादकीय सूचनाओं से भी लिए गए हैं। जाहिर है, हिंदी भाषा के प्रति बरती जा रही लापरवाही सिर्फ रिपोर्टरों तक सीमित न होकर संपादकों तक पहुँच गई है। उद्धृत अंश जिन समाचारों के हैं वे आज प्रमुख समाचार पत्रों में से एक हैं। ये समाचार, समाचार पत्र-प्रतिष्ठान के निजी संवाददाताओं द्वारा प्रेषित हैं। जो प्रमुख समाचार पत्रों में गिने जाते हैं तथा समाज को आईना दिखाने का काम करते हैं।

आजकल अखबारों में अंग्रेजी का प्रयोग बहुत हो रहा है। जब अंग्रेजी का प्रयोग सही अर्थों में कर अंग्रेजी के इंजन को हिंदी के डिब्बों के आगे-पीछे लगा दिया जाए तो मालगाड़ी की गति बढ़ जाती है। जैसे-सुमंगल मिनी ट्रेवल्स, सदाबहार बाबासूट, परिणय बेंक्वट हाल, नवरंग पोस्ट जैसी अभिव्यक्तियां आज के दौर की भाषाई फैशन हैं। लेकिन एक बात ध्यान देने की है कि साहित्यिक पत्रकारिता की भाषा टकसाली हो सकती है, लेकिन अखबार की भाषा को जनता से जुड़ना ही होता है। जनता से जुड़ाव तो सही है पर आजकल इस जुड़ाव के चक्कर में अखबार की भाषा हिंगलिश की तरफ बढ़ रही जो सही नहीं है। आवश्यकतानुसार अखबार में अंग्रेजी मिश्रित शब्दों का प्रयोग तो करना चाहिए, लेकिन इसका प्रयोग ऐसे नहीं करना चाहिए कि हिंदी का वजूद ही समाप्त हो जाए। हिंदी माँ है और उसे माँ का दर्जा देकर आगे बढाना चाहिए। कुल मिलाकर सकारात्मक अर्थों में देखा जाए तो अखबार की भाषा पहले से ज्यादा व्यावहारिक, समय-सजग और समृद्ध हुई है।

संदर्भ :

1. हिंदी पत्रकारिता : कृष्णबिहारी मिश्र : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली : 2011
2. जनसंचार माध्यमों का सामाजिक चरित्र : जवरीमल्ल पारख : अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली : 1996
3. हिंदी पत्रकारिता के कीर्तिमान : जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी : साहित्य संगम, इलाहाबाद, 1993
4. समसामयिक हिंदी : डॉ. समरेन्द्र कुमार, डॉ. आलोक रंजन पांडेय : सतीश बूक डिपो, नई दिल्ली, 2014
5. साहित्यिक पत्रकारिता : ज्योतिष जोशी : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली : 2007
6. विकास पत्रकारिता : राधेश्याम शर्मा : हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला : 2014
7. हिंदी पत्रकारिता : समकालीन विमर्श; सिद्धेश्वर कश्यप; बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना; 2018
8. खोजी पत्रकारिता : ओमकार चौधरी : हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला : 2003
9. हिंदी पत्रकारिता : आधुनिक संदर्भ; देवप्रकाश मिश्र; स्वराज प्रकाशन, दिल्ली; 2007
10. गवेषणा पत्रिका (भाषा एवं सूचना-प्रौद्योगिकी पर केन्द्रित) : केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, अंक-88

❖

डब्ल्यू जेड-241-आई, प्रथम तल, इंद्रपुरी, नई दिल्ली-110012
मोबाइल : 9540572211

— अर्चना चतुर्वेदी

नफरत से मुहब्बत तक का सफर

गजेन्द्र कुमार जी उर्फ गज्जो चाचा..देखने में साधारण और सीधे सादे से हैं यूँ तो बड़े ही हँसमुख और मिलनसार हैं..पर वो सिर्फ बाहर की दुनिया में..घर के भीतर उनका व्यवहार एकदम उलट है..बात बात पर पिन्नाना, गाली गलौज करना.. अपनी हुकूमत दिखाना उनकी आदत में शुमार रहा है..बीबी के साथ उनके संबंध भी साँप नेवले के हो चुके हैं। ये दास्तान वो खुद अपने भतीजों को सुना चुके हैं। उम्र भले ही साठ के आसपास हो मुहल्ले के लड़के उनके साथ मित्रवत व्यवहार करते हैं और घर से दुखी चाचा के ये दर्जन भर भतीजे ही उनके दु:ख सुख के साथी हैं। कभी कभी जब भावुक होते हैं तो चाचा अपने पुराने दिन याद करते हैं जब चाची उनसे मुहब्बत करती थी और वो उनके दीवाने थे..पर अब वो सिर्फ रात दिन एक ही सपना देखते हैं..आज भी उसी सपने को लिए उदास भाव में चबूतरे पर विराजमान थे कि पिंटू महाराज अपनी टोली संग पधारे।

"क्या हुआ चाचे आज मुँह क्यों लटका है, चाची ने फिर भद्रा खंडे कर दी क्या?" चाचा को देखते ही पिंटू ने सवाल दागा।

अरे ना रे ऐसी बात ना है..चाचा मुँह नीचा करके ही बोले।

"अरे कुछ तो है वरना हमारे हरदम मुस्कुराते खिलखिलाते चाचा ऐसे तो मुँह ना लटकाते" बाकी के लड़के भी पास आ गए।

अरे यार आज अपने भाग्य पे दुखी हूँ चाचा बोले।

भाग्य में क्या बुराई है..मजे से सरकारी नौकरी कर रहे हो.. बाप दादा भी खूब छोड़ गए..पप्पू बोला।

अबे असली सुख जे ना है..देख बंसी की लुगाई मर गई, और बांके की भी लुगाई मर गई।

तो तुम क्यों उदास है रहे हो तुम्हारी तो जिंदा है कहकर सब हँसे।

अरे बू ही तो दु:ख को विषय है ससुरी मेरी ना मर रही सबकी मर रही है।

ये तो वाकई दुख की बात है चाचा पर जिसकी मौत जब आएगी तभी तो जाएगा..

अबे मेरी भाग्य ही कारे कोयला से लिखो भगवान ने जो पहले तो जे ससुरी कलिहरी मिली और अब जे मर भी ना रही।

अरे चाचा एक बात देखी।

का

बंसी अपनी लुगाई से कित्तो प्रेम करतो, कैसे घूमने जाते, फेसबुक पे जन्मदिन तक मनातो..पिंटू बोला।

"और वो बाँके तो जानू जानू करके रो रहा है देखो जरा जाकर" अबके पप्पू बोला।

तो

इसका सीधा मतलब है..मुहब्बत से मरे लुगाई, नफरत से ना मरे, तुम चाची कू कब ले गए आखिरी बार घुमाबे?

याद ना है..

साड़ी कब दी चाची कू?

याद ना है

तभी तो ना मर रही अब तुम तो ऐसे करो चाची से मुहब्बत शुरू कर दो।

का सच्ची कह रह्यो है..मुहब्बत करबे से मर जाएगी का?

अरे चाचा ट्राई करबे में का हर्ज है?

चाचा बड़े खुश हो गए..हाँ कुछ पैसा तो खर्च होयगो..ऐसो करो आज कछु साड़ी और लाली लिपस्टिक खरीद ही लाऊ.. इन्वेस्टमेंट तो करनी ही पड़ेगी मुहब्बत में।

चाचा खुशी खुशी चले गए उन्हें पक्का यकीन जो हो गया था कि उनकी मुहब्बत से घायल हो पत्नी सदा के लिए भगवान को प्यारी हो जाएगी और उनके लिए घर में ही स्वर्ग का वातावरण तैयार हो जाएगा।

तीन चार दिन तक चाचा नजर नहीं आए तो भतीजों को चिंता हुई ...पर घर जाने का मतलब चाची से गालियाँ खाना सो किसी की हिम्मत नहीं हुई आखिरकार पाँचवें दिन चाचा नजर आए..मुँह लटक कर पेट से बतिया रहा था आँखों में दु:ख के काले बदरा छाए थे..चेहरा मुरझाए पत्तों सा पीला हो चुका था.. उनकी ये हालत देख सभी भतीजे परेशान हो उनके पास आए और घेर कर बैठ गए..

सब ठीक तो है चाचा..देवदास से क्यों दिख रहे हो?

हाँ यार जे तो कुछ ज्यादा ही उदास दिख रहे हैं कहीं सच्ची में चाची से मुहब्बत तो ना है गई दुबारा से?

क्या हुआ चाचा तीर लगा क्या निशाने पर..मुहब्बत सफल हो रही है क्या?

सारे भतीजे अपने अपने अंदाज में चाचा के दिल में घुसने का और बात बाहर निकालने का प्रयास कर रहे थे..

एक भतीजा छोड़कर चाचा की फेवरिट लस्सी ले आया जिसे पीकर चाचा के चेहरे पर कुछ चमक आई लस्सी का असर हुआ और।

कुछ देर बाद चाचा के मुँह से बोल फूटे..अबे काहे की मुहब्बत...अरे यार कल बढ़िया सी साड़ी और कुछ मेकअप का सामान लेकर गया था..मैडम बुरी तरह बिदक गई पहले तो खूब खरी खोटी सुनाई इतने वर्ष बाद याद आई है बीबी की, जा बुढ़ापे में प्रेम टपक रह्यो है जब बच्चा ब्याह्बे लायक है गए हैं.. बेशरम आदमी ने शर्म बेच खाई है..

फिर का भयो चाचा।

अरे होयगो का जाने कहाँते दिमाग में घुस गई है कि मेरो कहूँ बाहर चक्कर है जे सब सामान बाहर वाली के लिए लाया था.. बाहर वाली ने रिजेक्ट कर दिया इसलिए उसको चिपका रहा हूँ . .लाख समझाई कि "भाग्यवान तू ही मेरी पहली और आखिरी मुहब्बत है पर एक ना सुनी..ससुरी ने मार मार झाड़ू और बेलन मेरी कमर पीठ सब सुजा डाली..राक्षसी है औरत ना है..

च च च सारे भतीजों के मुँह से दु:ख भरी आवाज निकली।

अबे अभी खत्म ना हुई बात..तीन दिना से खाना तक ना दिया ना ही घर से निकलने दे रही थी जैसे तैसे नमकीन और ब्रेड चाय दी छोटे बेटे ने माँ से छिपा कर तब जाके जान बची है..

तुमने झेल ली इत्ती दुर्गत।

तो का करू बेटा, बेटी सब माँ के संग हैं..जवानी में तो लड़ लेते अब बुढ़ापे में हिम्मत ना बची..अब मेरे वश की ना है कुछ भी चाचा फिर उदास हो गए..उनका दु:ख भतीजों से देखा ना गया उसके बाद एक योजना तैयार हुई और चाचा को थोडा सा समझाया गया..

कुछ खतरा तो ना है ना? चाचा बोले।

अब खतरा से मत डरपो चाचा..हिम्मत रखो हम सब संग है ..बस एक चिट्ठी लिख दो और सब कागज हमें लाके दे दो.. भरोसा रखो बस, पिंटू बोला।

चाचा के चेहरे पर मुस्कान आई और वे उठकर घर चले गए. .अब ठीक है जो हो रहा है उससे बुरा कुछ ना हो सके..

चार पाँच दिन बाद चाचा एकदम नए ब्याहे लड़के की तरह खिले खिले नजर आए।

क्यों चाचा काम कर गई योजना।

हाँ भाई मजा आ गया..अब तो तीनों वक्त गर्म भोजन, चरण सेवा..के साथ बीबी प्यार भी कर रही है..फिर शरमाते हुए... आजकल मेरे कमरे में सो रही है..

आय हाय मजा आ गयो लगे पुराने दिन लौट आए चाचा.. लड़कों ने फिर छेड़ा।

अबे यार सच्चा प्यार तो इसी लुगाई से किया है..मेरे खराब स्वभाव की वजह से बिगड़ गई थी वैसे तुम लोगों ने क्या कह दिया उससे जो उसका हृदय परिवर्तन हो गया? चाचा बोले।

अरे हमारी बड़ी भाभी ने मदद करी चाचा बू सहेली हैं ना चाची की सो उन्होंने चाची को समझा दिया कि तुम उनसे कित्तनी मुहब्बत करते हो कि आत्महत्या करने पहुँच गए। वो तो भला हो देवर जी का जो बचा लाए चाचा को नहीं तो जान तो चाचा की जाती और बेघर तुम सब हो जाते।

हम बेघर काहे हो जाते? चाची बिदकी।

घर के कागज भी साथ ही ले कर डूबने गए थे यमुना पुल पर और सुना है सारा पैसा भी गरीबों को दान करने की तैयारी कर दी थी..अब आप तो बड़ी हो जिज्जी इस उम्र में तमाशा अच्छा लगता है क्या और अभी तो बच्चों के ब्याह भी बचे हैं..अपने आदमी को मुट्ठी में रखो और जे लो सारे कागजात और पिंटू और बाकी लड़के ना सम्भालते तो तुम तो गई थी..ये सब सुनकर चाची रोते रोते घर चली गई..मैंने दुबक कर सब देखा पिंटू ने बताया..फिर आगे की कहानी तो तुम्हें पतो ही है चाचा।

अरे तुम सबकी वजह से कई साल बाद घर घर जैसा महसूस हुआ है रे..कल तो बू साड़ी भी पहन ली और सजी खूब ..चाचा बड़े खुश नजर आ रहे थे।

तो अब चाची मरेगी तो कैसो लगेगो चाचा।

अबे हट ससुरे शुभशुभ बोल यार नफरत को मारकर अब मुहब्बत को जिंदा किया है तो जीने दे ना इस मुहब्बत को और भीगने दो हमें भी मुहब्बत की इस बरसात में..चाचा फिल्मी वाले अंदाज में बोले।

हा हा हा क्या बात है चाचा जियो।

सारे भतीजे जोर जोर से हँसे और चाचा को खुश देखकर खुश हो गए।

चाची को बेघर होने का डर सताया या विधवा होने का ये तो किसी को नहीं पता पर एक मकान घर जरूर बन गया था..

❖

ई-1104, आम्रपाली जोडिएक
सेक्टर 120, नोएडा, गौतम बुद्ध नगर-201307
मोबाइल : 9899624843

डॉ. पुष्पलता

मधुर मिलन

'चाची मुझे तेरे से कुछ बात करनी है।' सूरज ने कहा।
'बैठ ले, बता?' अंगूरी बोली।

'तुझे तो पता ही है एक महीने बाद गौने को जाना पड़ेगा। चाची वा मुझे बिल्कुल चोखी नी लगती। तू किसी तरह उससे मेरा पीछा छुड़वा। मेरा जी करता है उसे मरवा दूँ। तुझे तेरी पसंद की साड़ी दूँगा किसी तरह मेरे गले में से निकलवा।'

चाची सोचने लगी यू दूध सा सफेद वा कोले सी काली इसीलिए मन नहीं भा रही।

'भाई मैं क्या तन्ने मानस मारनी समझ ली? दुनिया में दो ही रंग हैं एक गोरा एक काला, तेरे चाचा कु देख। जब ब्याहने कु गया था शीशा दिखाया था औरतों ने।' सूरज दूध सी सफेद चाची को देखने लगा, सोचने लगा जोड़ी तो ये भी ऐसी है। फिर उसे बड़े भाई-भाभी की जोड़ी ध्यान आई।

'तेरे भाई-भाभी को देख चाची भी बोली।'

'मेरा जी तो नु कर रहा है घर से भाग जाऊँ।' सूरज को उसकी शक्ल फिर याद आई।

ऐसा कर एक बार ले आ, ब्याह तो हो ही गया, ऐसी ही अब छोड़नी, ऐसी ही एक बार लाकर छोड़नी, पर छोड़ेगा तो हाथ न लगाइए उसे सबकी बेटी एक सी। चाची बोली।

तू हाथ लाने की बात कर रही है, मुझे उसकी शक्ल याद आते ही पता नी कसा कसा जी होज्या।

उसके बाद वह कहे सुने से गौना करवा लाया था। अगले दिन अंगूरी ने घेर में जाते हुए सोचा बहु से मिलती चलूँ। उस बेचारी की क्या गलती।

वह उनके बरामदे में पहुँची। सजी-धजी, मेहंदी लगे चूड़ियों से भरे हाथों से बहु पाँव छूने उठी तो जैसे सारी कायनात में झाँझर और चूड़ियाँ खनकने लगी।बहु का चेहरा काले गुलाब सा खिला था। उदासी का निशान नहीं था। चाची ने मुस्कराकर कोने में खड़े सूरज को देखा। वह सिर झुकाए था। चेहरे पर मुस्कराहट थी। चाची सब समझ गई। चाची ने जानबूझकर हँसकर कहा मेरे दिमाग में इसे छुड़वाने की एक तरकीब है बताऊँ के? 'उरे कु आ', वह धीरे से बोला, जब विदा करवा कर आ रहे थे इसकी माँ मेरी छाती से लगकर बहुत रोई, बोली बिना बाप की बच्ची इसे दुख ना दे दिए बेटे। इसने जिंदगी में सुख नी देखा। बस मेरा कालजा तो उसी बखत पिघल गया था। जोड़ी तो ऊपर वाला बना कै भेजता है चाची सोचने लगी। वह समझ गई थी मधुर मिलन हो चुका था।

❖

यकीन

शाम को खेत से मुंजी की सारी बोरियाँ लाकर नौकरों ने आँगन में पटक दी। सास मायके गई थी और पति ऑफिस। अगले दिन शाम को पति घर लौटा अपनी नवेली पत्नी से बोला 'किसको बुलाया था बोरियाँ कोने में लगाने को?' पत्नी बोली, 'खुद लगाई।' वह बोला, 'मुझे ये बता किसे बुलाया था। मजाक का मूड नहीं है मेरा?' वह बोली, 'बता तो दिया खुद लगाई।' बार-बार यही पूछने और यही जवाब मिलने पर पति ने एक तमाचा दिया गाल पर, बता क्यों नहीं रही?

पत्नी ने झुककर पति को उठाया और मुंजी की बोरियों के पास ले जाकर जोर से पटक दिया। अब उसे यकीन हो गया था।

❖

201-ए, सेक्टर-5, आइवरी टॉवर
वसुंधरा, गाजियाबाद-201012 (उ.प्र.)
मोबाइल : 9810350330

— इंजी. आशा शर्मा

कुत्ता

सुबह-सुबह गली के एक आवारा कुत्ते ने चिड़िया को मुँह में दबा रखा था। कुत्ता कभी उसे अपने पंजों में जकड़ता तो कभी फिर से अपने मुँह में दबा लेता। हाँ! कभी-कभी वह उसे अपने मुँह और पंजों से आजाद भी कर देता था लेकिन जैसे ही चिड़िया उड़ने की कोशिश करती, वह लपक कर उसे फिर से दबोच लेता। कुत्ते को इस खेल में बहुत आनंद आ रहा था।

उड़ पाना तो दूर चिड़िया बेचारी पंख भी नहीं फड़फड़ा पा रही थी। तभी एक अन्य चिड़िया उधर से गुजरी। उसने कुत्ते की हरकत देखी तो चीं-चीं करके आसमान सिर पर उठा लिया। देखते ही देखते चिड़ियों का एक बड़ा झुंड वहाँ जमा हो गया। सब चिड़ियाँ कुत्ते के चारों तरफ मंडराने लगीं। कुत्ते ने उनकी तरफ बेपरवाही से देखा और चिड़िया से खेलना जारी रखा।

अचानक चिड़ियों के झुंड ने उस पर चौतरफा हमला बोल दिया। कुत्ता इस अप्रत्याशित हमले के लिए तैयार नहीं था। वह 'प्यों-प्यों' करने लगा। पंजे में फँसी चिड़िया के लिए इतना मौका काफी था। वह उसके पंजे से छूट गई। अभी वह लपक कर उसे फिर से दबोचता इससे पहले ही चिड़िया फुर्र से उड़कर पेड़ की टहनी पर जा बैठी।

कुत्ते पर चिड़ियों का हमला अब भी जारी था। घायल कुत्ता नाली के पास पड़े एक पुराने अखबार पर जाकर लोटने लगा। अखबार पर सुर्खियों में लिखा था-"बलात्कार का आरोपी गवाहों के अभाव में बरी। पीड़िता ने आत्महत्या की।"

❖

पिंजरा

मुख्य दरवाजे के खुलने का आभास होते ही पिंजरे में बैठा तोता पंख फड़फड़ाने लगा। रमेश की भी आँखें चमक उठीं। बेटा भीतर आया और एक निगाह दोनों पर डालकर टेबल पर रखा टीवी का रिमोट उठा लिया।

'कितनी बार कहा है कि बोर हों तो टीवी चला लिया करें लेकिन आप...' तोते की तरफ देखते हुए आगे के शब्द मुँह में रखे ही बेटे ने रिमोट का बटन दबा दिया।

'कोरोना...कोरोना...कितने नए संक्रमित हुए...कहाँ कितनी मौतें हुईं...सरकार और समाज क्या कर रहे हैं...कैसे बचें...क्या करें...क्या न करें...' लगभग हर चैनल यही समझा और दिखा रहा था। कहकर रमेश ने वितृष्णा से मुँह फेर लिया। तभी एक एंकर चीखा।

'सरकार ने कोरोना को लेकर जो एडवाइजरी जारी की है उसके अनुसार पैंसठ वर्ष से ऊपर के बुजुर्ग एवं दस वर्ष से कम उम्र के बच्चों को घर से बाहर नहीं निकलने के निर्देश दिए गए हैं।' सुनते ही बेटे ने विजयी मुद्रा में पिता की तरफ देखा मानो घर के मुख्य दरवाजे पर ताला लगाने के उसके फैसले के औचित्य पर मुहर लग चुकी है।

रमेश अब इस पाँच सितारा कैद से उकता चुका है। कमोबेश यही हाल सामने घर में रहने वाले बच्चे का भी है। माँ-पापा मुख्य दरवाजे पर ताला लगाकर ऑफिस चले जाते हैं। बच्चे के पास रह जाता है-एक स्मार्ट फोन और सामने गली में खुलने वाली खिड़की। ऑनलाइन क्लास पूरी होते ही बच्चा खिड़की पर आ खड़ा होता है और सुनसान गली को घूरता रहता है।

गली में कचरा बीनने वाले लड़कों और आवारा गाय-कुत्तों के अलावा कोई दिखाई नहीं देता।

एक दिन रमेश ने अपनी बालकनी से बच्चे को देखा तो दोनों मुस्कुरा दिए। लंबे समय के बाद दो बाहरी आदमजात आमने-सामने हुए थे।

स्मार्ट फोन वीडियो कॉल के भी काम आने लगा। बच्चा रमेश के साथ-साथ तोते से भी घुलमिल गया। घर वालों ने चैन की साँस ली क्योंकि आजकल दोनों तरफ से ही अकेलेपन की शिकायत नहीं आ रही थी।

'तुम बड़े होकर क्या करोगे?' एक रोज रमेश ने बच्चे से पूछा।

'कचरा बीनूँगा' बच्चे ने क्षुब्ध अंदाज में कहा। फिर व्यग्रता से गली में झाँकने लगा जहाँ कुछ बच्चे कंधे पर प्लास्टिक का थैला लटकाए, बिना मास्क एक-दूसरे के साथ हँसी-ठिठोली करते जा रहे थे।

उन्हें देखकर तोता भी फड़फड़ाने और टें-टें करने लगा।

❖

ए-123, करणी नगर (लालगढ़) बीकानेर-334001
मोबाइल : 9413369571

खेमकरण 'सोमन'

बड़े साहब

बड़े साहब काम-काज में व्यस्त थे और एक गरीब महिला अपने पंद्रह वर्षीय बेटे के साथ दयनीय स्थिति में उनके सामने खड़ी थी।

बड़े साहब ने इस बार घूरकर देखा उसे। फिर गुस्से में बोले, 'अरे मेरी माता! जाती क्यों नहीं? क्यों एक घंटे से सिर खाए जा रही है। कह दिया न, कल करा लेना साइन! देखती नहीं, अभी काम कर रहा हूँ।'

महिला बेचारी सहम गई। किशोर बेटे की आँखों की चमक भी धीरे-धीरे गायब होने लगी।

तभी एक व्यक्ति ने बड़े साहब के कक्ष में प्रवेश किया।

'ओ हो! सहाय जी!' बड़े साहब आने वाले व्यक्ति को देखकर चहक उठे। खड़े होकर कहने लगे, 'आइए-आइए बैठिए, कहिए कैसे आना हुआ?'

'बस आ ही गए।' प्रसन्नमुख सहाय जी अपनी फाईल खोलकर बड़े साहब के सामने रखते हुए बोले, 'यह गरीब बंदा, आपको याद करते हुए और मात्र तीन-चार साइन करवाने के बहाने, आज आ ही गया।'

'तो ये लीजिए' कहते हुए बड़े साहब ने झट से तीन-चार साइन कर दिए।

❖

अब मैंने दूसरी ओर देखा

घर की छत पर पत्नी पास बैठे पति को स्वादिष्ट खाना खिला रही थी। अचानक पेट में तेज दर्द होने के कारण उसने रोटी बनाना छोड़ दिया, और पेट पकड़कर वह वहीं लेट गई। उसने अपने पति की आस भरी नजरों से भी देखा, लेकिन पति ने भद्दी सी गाली देते हुए उससे रोटी बनाने के लिए कहा।

वह रोटी बनाने के लिए उठी। फिर उठी, परंतु कामयाब नहीं हो सकी। तुरंत ही पेट पकड़कर रोने-चीखने लगी। यही समय था जब पति ने उसको लात-घूसों से पीटना शुरू कर दिया-'उठ! रोटी बनाती है कि नहीं! उठ-उठ!'

मैंने काल की ओर देखा और कहा-'क्या माँ, बहन-बहुओं और स्त्रियों के प्रति यही तौर-तरीका, व्यवहार और अनुशासन है तुम्हारा? ये तुम मुझे क्या दिखा रहे हो?'

काल बोला-'वही जो तुम देख रहे हो!'

काल की बात सुनकर मेरे गुस्से का पारा चढ़ने लगा। मैं तुरंत काल से भीड़ गया। हम दोनों के बीच बहुत भयंकर युद्ध होने लगा। लगभग एक घंटे के युद्ध के बाद काल मुझसे बुरी तरह हार गया और बोला-'दोस्त! तुम वाकई, काल अर्थात समय को जीत लेने वाले बंदे हो! ऐसे व्यक्तियों की बहुत कद्र करता हूँ। तुम जैसे बंदों से ही दुनिया खूबसूरत बनती है। मनचाहे रूप में चलती-ढलती है। बताओ, मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ?'

मैंने कहा-'बस इस वाहियात दृश्य को बदल डालो! वह महिला अभी भी असहनीय पेट दर्द से कराह रही है और उसका नालायक पति गायब है! अतिशीघ्र बदलो इस दृश्य को।'

अब मैंने देखा घर की छत पर पत्नी, अपने पति को खाना खिला रही थी। बीच-बीच में पति और पत्नी एक दूसरे को देखकर मुस्कुरा भी देते थे। अचानक पत्नी के पेट में तेज दर्द होने लगा। वह वहीं लेटकर चीखने-कराहने लगी।

पति ने खाना छोड़कर तुरंत उसको अपनी गोद में उठा लिया। पत्नी ने एक बार पति की ओर देखा और कहा-'पहले आप खाना खा लीजिए प्लीज।' और हिम्मत बटोरकर फिर से रोटियाँ बनाने की कोशिश करने लगी। लेकिन पति ने उसकी एक नहीं सुनी। अगले ही क्षण, मैंने देखा कि चिंतित पति अपनी पत्नी को लेकर अस्पताल पहुँच चुका है। डॉक्टर इलाज करते हुए कह रहे थे, 'जैंटिलमैन, तुम शाम को इन्हें घर ले जा सकते हो।'

अब मैंने दूसरी ओर देखा। समय अर्थात काल मुझसे काफी दूर निकल चुका था। वह मुझे देखकर जोर-जोर से हाथ हिलाने लगा। मेरे हाथ भी बाय-बाय की मुद्रा में स्वत: ही उठने लगे।

❖

द्वारा बुलकी साहनी
प्रथम कुंज, अम्बिका विहार, भूरारानी, वार्ड-32
रूद्रपुर, जिला-ऊधम सिंह नगर, उत्तराखण्ड-263153
मो. : 09045022156 ईमेल : khemkaransoman07@gmail.com

हिंदी विदेशी भाषा शिक्षा में 'आत्मनिर्भर भारत' की संकल्पना नवाचार की आवश्यकता

— द्विवेदी आनंद प्रकाश शर्मा

विदेशी विश्वविद्यालयों ने अपने स्तर पर ग्रेडेड पाठ्य सामग्री विकसित की है, तथापि भारत की ओर से आधिकारिक ग्रेडेड पाठ्य सामग्री विकसित किए जाने की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता जिसे आधार मानकर विदेशी विश्वविद्यालय स्थानीय स्तर पर हि.वि.भा.शि. को समृद्ध कर सकें। यहाँ ध्यान दिलाना उचित होगा कि भारतीय विश्वविद्यालयों में विदेशी भाषाएँ मूल देश में विकसित पाठ सामग्री के आधार पर पढ़ाई जाती हैं जबकि हिंदी के लिए ग्रेडेड सामग्री विदेशी विश्वविद्यालयों को स्वयं बनानी पड़ती है। हि.वि.भा.शि. के लिए ग्रेडेड पाठ्य सामग्री विकसित करना और शिक्षा-पद्धति में शोध और नवाचार का काम भारत को ही करना चाहिए था जिसे अब तक नहीं किया जा सका है। ग्रेडेड पाठ्य सामग्री और आधारभूत शब्दावली का निर्माण सर्वाधिक आवश्यक 'नवाचार' है।

हमारा मानना है कि 'आत्मनिर्भर भारत' की संकल्पना यदि भारतीय अर्थव्यवस्था की मजबूती और संवृद्धि के लिए आवश्यक है तो इसे प्रत्येक आर्थिक क्रिया का अनिवार्य अंग बनाना होगास जबकि हम जान चुके हैं कि 'आत्मनिर्भर भारत' की संकल्पना को साकार करने के लिए नवाचार आवश्यक है, तब हमें उत्पादन की प्रत्येक, प्रत्यक्ष और परोक्ष क्रियाओं में नवाचार को अपनाना ही होगा। उत्पादन में नवाचार को संभव बनाने में तकनीकी और मानव पूँजी की बड़ी भूमिका है और मानव पूँजी के निर्माण में शिक्षा की भूमिका निर्विवाद है। हिंदी विदेशी भाषा शिक्षा (हि.वि.भा.शि.) वैश्विक मानव पूँजी-निर्माण की क्रिया के रूप में अर्थव्यवस्था से अनिवार्य रूप से संबद्ध होने के साथ-साथ लोकल को ग्लोबल से जोड़ने का महत्त्वपूर्ण दायित्व भी निभाती है। इसलिए हमने इस अध्ययन में हि.वि.भा.शि. के संदर्भ में आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना के मायने और उसमें नवाचार की आवश्यकता की तलाश की है। इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक उत्पाद होने के नाते इसे निर्यात से जोड़कर भी देखा जा सकता है जो कि 'आत्मनिर्भर भारत' नीति का एक महत्त्वपूर्ण घटक है।

'आत्मनिर्भर भारत' की संकल्पना

'आत्मनिर्भर भारत' वास्तव में यह नए भारत का विजन दस्तावेज है जिसका उद्देश्य सभी प्रकार के उत्पादन और सेवाओं के मामले में भारत को आत्मनिर्भर बनाना है। 'आत्मनिर्भर भारत' को स्पष्ट करते हुए प्रधानमंत्री कहते हैं-"जब भारत आत्मनिर्भर होने की बात करता है तो इसका मतलब आत्मकेंद्रित होना नहीं है। 'आत्मनिर्भर भारत' में समस्त विश्व के हित की चिंता समाहित है और यह शान्ति और परस्पर सहयोग पर आधारित है।[1]

भारत को आत्मनिर्भर बनाने के लिए पाँच व्यापक रूपांतरण का लक्ष्य रखा गया है—1. अर्थव्यवस्था में धीरे-धीरे सुधार लाने के बजाय उसका अप्रत्याशित रूपांतरण, 2. अत्याधुनिक बुनियादी ढाँचे का निर्माण, 3. तकनीकी पर आधारित तंत्र (सिस्टम) का विकास, 4. जनसंख्या और जनतंत्र की ऊर्जा का सदुपयोग तथा 5. माँग और आपूर्ति की शक्ति का संपूर्ण दोहन।2 इसके अतिरिक्त, 'आत्मनिर्भर भारत' को संभव बनाने की दिशा

में नागरिकों के लिए तीन आदर्श कर्तव्य हैं—'वोकल फॉर लोकल', 'मेक फॉर दि वर्ल्ड', और 'लोकल टू ग्लोबल'। 'वोकल फॉर लोकल' का मतलब है भारतीय उत्पाद की कदर और उसे बढ़ावा देना। 'आत्मनिर्भर भारत' का अगला चरण है, 'मेक फॉर दि वर्ल्ड' अर्थात् विश्व-हित में भारत से बाहर खपत के लिए उत्पादों का भारत में निर्माण। तीसरा लक्ष्य है, 'लोकल टू ग्लोबल'। इसके दो आशय हैं—भारतीय उत्पाद और वस्तुएँ वैश्विक मानदंडों के मुकाबले की हों और उनकी पहुँच विश्व भर में हो।

हिंदी विदेशी भाषा शिक्षा में आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना के मायने

'आत्मनिर्भर भारत' जैसी व्यापक प्रभाव और दूरगामी परिणाम वाली आर्थिक नीति के मायने संदर्भ के अनुसार अलग तो होंगे लेकिन, उनके समेकित प्रभाव से ही अपेक्षित लक्ष्य प्राप्त किया जा सकेगा। हमारे मत में हि.वि.भा.शि. में आत्मनिर्भरता का अर्थ है हि.वि.भा.शि. को स्वतंत्र अनुशासन (डिसिप्लिन) के रूप में स्थापित करना। दरअसल, हमें यह समझना होगा कि हिंदी साहित्यालोचन और विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षा, अध्ययन-अध्यापन और शोध की दृष्टि से अलग-अलग क्षेत्र हैं जिसमें तदनुरूप विशेष प्रकार की दक्षता आवश्यक है। मोटे तौर पर, आज के संदर्भ में हि.वि.भा.शि. भाषा, संस्कृति, समाज, राजनीति और व्यापार आदि का समंजित रूप है। विदेशी शिक्षार्थी, भाषिक ध्वनि और व्यवस्था सीखने के साथ-साथ सांस्कृतिक ध्वनियों और समाज-व्यवस्था से भी इत्तेफाक रखता है। कुल मिलाकर, एक शिक्षार्थी विदेशी भाषा के माध्यम से उस देश की सामाजिक-सांस्कृतिक ध्वनियों और व्यवस्थाओं को पढ़ता है, राजनीतिक संस्कृति के विकास को समझने का प्रयास करता है, और व्यापारिक संभावनाओं की तलाश करता है ताकि अंतर्सांस्कृतिक संवाद में वह निपुण हो सके। इसलिए हि.वि.भा.शि. को परंपरागत दायरे से बाहर निकाल कर 'आत्मनिर्भर भारत' अभियान के 'लोकल' और 'ग्लोबल' के संदर्भ में स्वतंत्र अनुशासन के रूप में आत्मनिर्भर बनाना समय की माँग है।

हि.वि.भा.शि. के संदर्भ में 'वोकल फॉर लोकल' होने का आशय है भारत में हिंदी अर्थात् 'लोकल' के अधिकाधिक उपयोग के माध्यम से आर्थिक गतिविधियों में जनभागीदारी सुनिश्चित करना ताकि विकास और संवृद्धि समावेशी हो सके। यदि हम स्थानीय स्तर पर हिंदी के लिए वोकल नहीं होंगे तो 'ग्लोबल' स्तर पर इसकी पहुँच निश्चित ही सीमित हो जाएगी। कुछ देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई को बंद होते हुए हम देख रहे हैं। यदि हम हिंदी के मामले में 'वोकल' न हुए तो इसके गंभीर दूरगामी परिणाम होंगे। यह भी कह दें कि जिस प्रकार 'आत्मनिर्भर भारत' के संदर्भ में 'वोकल फॉर लोकल' होने का अर्थ संकीर्ण नहीं है उसी प्रकार हिंदी के लिए 'वोकल' होने का अर्थ भाषाई संकीर्णता नहीं है।

हि.वि.भा.शि. के संदर्भ में 'लोकल टू ग्लोबल' के दो मायने हैं—एक, भारत में काम करने के लिए स्किल के रूप में और दूसरा, पीपुल्स डिप्लोमसी की जरूरतों के अनुसार विदेशों में हिंदी भाषा की शिक्षा उपलब्ध कराना। दूसरे शब्दों में कहें तो विश्व में हिंदी की पहुँच का उद्देश्य 'लोकल' और 'ग्लोबल' के बीच आदान-प्रदान (सप्लाई चेन) में निर्णायक भूमिका निभाना है। 'मेक फॉर दि वर्ल्ड' का मतलब है विश्व में हिंदी को ऐसे उत्पाद के रूप में उपलब्ध कराना जो सांस्कृतिक उपभोग और अंतर्सांस्कृतिक संवाद की दृष्टि से अपरिहार्य हो। ध्यान रहे कि जिस प्रकार 'आत्मनिर्भर भारत' के संदर्भ में 'लोकल' उत्पाद की ग्लोबल बेंचमार्किंग आवश्यक है उसी प्रकार विदेशी भाषा के रूप में हिंदी-शिक्षा को भी विदेशी भाषा-शिक्षा के उच्चतम मानदंडों के अनुरूप होना पड़ेगा। यह तभी संभव है जब नीतिनिर्धारक और हितधारक (स्टेकहोल्डर्स) इस विषय पर 'वैल्यू-चेन विश्लेषण' के उपरांत लक्ष्य निर्धारित करें।

'नवाचार'

अकादमिक विमर्श की व्यापकता में न जाकर बुनियादी दृष्टि से कहें तो 'नवाचार' का मतलब है जीवन के किसी भी क्षेत्र को पहले से बेहतर बनाना और उसमें नयापन लाना। इसका सर्वाधिक प्रत्यक्ष रूप व्यवसाय के क्षेत्र में दिखाई पड़ता

है जहाँ इसका अर्थ है डायनेमिक उत्पाद का निर्माण और सेवाओं को उन्नत बनाना। जाहिर है कि 'नवाचार' में तकनीकी की बड़ी भूमिका है। सामान्यत: 'नवाचार' का उद्देश्य लोगों के जीवन को बेहतर बनाना है, लेकिन व्यवसाय की प्रगति के लिए तो 'नवाचार' निहायत जरूरी है जबकि यह अर्थव्यवस्था के मुख्य चालकों में से एक है। शोध अध्ययन बताते हैं कि दुनिया की बड़ी अर्थव्यवस्थाओं की कुल उत्पादकता-वृद्धि में लगभग 85% योगदान 'नवाचार' का रहा है।[3] यही कारण है कि 'आत्मनिर्भर भारत' अभियान के पाँच लक्ष्यों को पूरा करने की दिशा में 'नवाचार' एक अनिवार्य और महत्वपूर्ण कारक है। 'आत्मनिर्भर भारत' अभियान को सफल बनाना है तो भारत को वैश्विक नवाचार केंद्र के रूप में उभरना होगा और यह तभी संभव है जब भारतीय शिक्षण संस्थान नवाचार के लिए टिकाऊ तंत्र विकसित कर शिक्षा और शोध की प्रत्येक गतिविधि में नवाचार को अपनाएँगे। हिंदी विदेशी भाषा शिक्षा भी इन्हीं गतिविधियों में से एक है जिसमें नवाचार आवश्यक है।

हिंदी विदेशी भाषा शिक्षा में नवाचार की आवश्यकता

हमने हि.वि.भा.शि. के तीन मुख्य उपादानों की पहचान की है जिनमें नवाचार आवश्यक है—ग्रेडेड पाठ्य सामग्री, संदर्भ सामग्री तथा शिक्षण-पद्धति।

ग्रेडेड पाठ्य सामग्री—हम जानते हैं कि हि.वि.भा.शि. सामान्यत: तीन सोपानों (एलीमेंट्री, इंटरमीडिएट, और एडवान्स्ड) में संपन्न होती है जिसमें प्रत्येक सोपान के दो-दो चरण हैं। इस प्रकार छह सोपानबद्ध पाठ्य सामग्री की आवश्यकता होती है। विदेशी भाषा शिक्षा की पद्धति के मुहावरे में इसे ग्रेडेड शिक्षा सामग्री कहते हैं जिनके माध्यम से भाषा-दक्षता (प्रोफिसिएंसी) के लक्ष्य को प्राप्त करने का उपक्रम चलता है। इसे ध्यान में रख कर संबंधित भारतीय संस्थाओं की ओर से अब तक ग्रेडेड शिक्षा सामग्री विकसित नहीं की जा सकी है। इसी तरह आधारभूत शब्दावली का संग्रह भी हम नहीं कर सके हैं जोकि भाषा-शिक्षा की बुनियादी आवश्यकता है। ग्रेडेड पाठ्य सामग्री के लिए यह आवश्यक है कि किस स्तर पर किन आधारभूत शब्दों को शामिल किया जाए ताकि छह स्तरों में भाषा-दक्षता के लिए आवश्यक आधारभूत शब्द-संपदा अर्जित हो जाए।

विदेशी विश्वविद्यालयों ने अपने स्तर पर ग्रेडेड पाठ्य सामग्री विकसित की है, तथापि भारत की ओर से आधिकारिक ग्रेडेड पाठ्य सामग्री विकसित किए जाने की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता जिसे आधार मानकर विदेशी विश्वविद्यालय स्थानीय स्तर पर हि.वि.भा.शि. को समृद्ध कर सकें। यहाँ ध्यान दिलाना उचित होगा कि भारतीय विश्वविद्यालयों में विदेशी भाषाएँ मूल देश में विकसित पाठ सामग्री के आधार पर पढ़ाई जाती हैं जबकि हिंदी के लिए ग्रेडेड सामग्री विदेशी विश्वविद्यालयों को स्वयं बनानी पड़ती है। हि.वि.भा.शि. के लिए ग्रेडेड पाठ्य सामग्री विकसित करना और शिक्षा-पद्धति में शोध और नवाचार का काम भारत को ही करना चाहिए था जिसे अब तक नहीं किया जा सका है। ग्रेडेड पाठ्य सामग्री और आधारभूत शब्दावली का निर्माण सर्वाधिक आवश्यक 'नवाचार' है। शिक्षा-सामग्री के विकास के संदर्भ में यह याद दिलाना आवश्यक कि इसे आज की ग्लोबल पीढ़ी की रुचि, आकांक्षा और उद्देश्य के अनुरूप होना चाहिए। दरअसल, हि.वि.भा.शि. के संदर्भ में शिक्षा-सामग्री और संदर्भ-सामग्री का निर्माण ही वह उत्पाद है जिसकी गुणवत्ता वैश्विक स्तर पर इसके उपभोग को निर्धारित कर सकेगी। इसलिए 'आत्मनिर्भर भारत' के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए शिक्षा-सामग्री और संदर्भ-सामग्री के निर्माण में अप्रत्याशित रूपांतरण लाने के साथ-साथ यह सुनिश्चित होना चाहिए कि यह अत्याधुनिक पद्धति पर विकसित हो, आधुनिक तकनीकी के अनुकूल हो, जनतांत्रिक भावनाओं को व्यक्त करे, और विश्व की नई पीढ़ी की माँग के अनुरूप हो। 'नवाचार' की यह प्रक्रिया कोलाबोरेटिव होनी चाहिए अर्थात् पाठ्य सामग्री की योजना बनाने, खाका तैयार करने और लिखने की प्रक्रिया में हि.वि.भा.शि. में दखल रखने वाले देशी और विदेशी विद्वान दोनों की भूमिका होनी चाहिए। कहने जरूरत नहीं है कि टेक्नोलॉजी 'नवाचार' का सहगामी है

इसलिए ग्रेडेड पाठ्य सामग्री तकनीकी माध्यमों में भी उपलब्ध होनी चाहिए।

संदर्भ सामग्री—हि.वि.भा.शि. का यह ऐसा क्षेत्र है जिस पर सर्वाधिक ध्यान देने की जरूरत है। संदर्भ सामग्री कई प्रकार की हो सकती हैं जिनमें पूरक सामग्री भी शामिल हैं, लेकिन, हम यहाँ केवल शब्दकोष की बात करेंगे क्योंकि विदेशी भाषा के शिक्षार्थी या किसी भी विदेशी के लिए शब्दकोष सर्वाधिक उपयोगी होता है। आजकल ऑनलाइन शब्दकोष ही प्रचलन में हैंस हिंदी में जो ऑनलाइन शब्दकोष हैं, उनसे विदेशी भाषा सीखने वालों की जरूरतें पूरी नहीं होती हैं, क्योंकि उनकी सबसे बड़ी सीमा उनमें शब्दों के प्रयोग का नहीं होना है। इसके अतिरिक्त उनमें उन अधिकांश तत्त्वों का अभाव है जो एक आधुनिक शब्दकोष में होना चाहिए जैसे कि अंग्रेजी में कॉलिंस या ऑक्सफोर्ड या कैंब्रिज डिक्शनरी। इस स्थिति को और अधिक स्पष्ट करते हुए यह कहना होगा कि किसी हिंदी शब्द को ऑनलाइन हिंदी शब्दकोष (एकभाषी या द्विभाषी) में देखें जबकि दूसरी ओर किसी अंग्रेजी शब्द को कॉलिंस या ऑक्सफोर्ड या कैंब्रिज डिक्शनरी में देखें तो अंतर साफ नजर आएगा। हि.वि.भा.शि. में यदि किसी 'नवाचार' की आवश्यकता है तो वह है यथासंभव शीघ्र हिंदी में कॉलिंस या ऑक्सफोर्ड या कैंब्रिज जैसे ऑनलाइन शब्दकोष का निर्माण और उसे निरंतर अद्यतन बनाते रहने का प्रबंध करना।

विश्वविद्यालय के बाहर हिंदी सीखने वालों की दृष्टि से भी ऑनलाइन संदर्भ सामग्री का बहुत महत्त्व है। समय और लागत की बचत के चलते आने वाले समय में कम्पिटेंसी-बेस्ड शिक्षा का प्रचलन बढ़ेगा खासकर भाषा-शिक्षा जैसे नॉन-टेक्निकल शिक्षा के क्षेत्र में। ऐसे में ऑनलाइन सामग्री का ही सर्वाधिक महत्त्व होगा। हि.वि.भा.शि. को यदि हमें प्रासंगिक बनाए रखना है तो सभी प्रकार की ऑडियो-विजुअल पूरक सामग्री तथा संदर्भ सामग्री (डिक्शनरी, थिसारस, व्याकरण, प्रयोग आदि) को यथाशीघ्र ऑनलाइन उपलब्ध कराना ही पड़ेगा और कहने की जरूरत नहीं कि इसके लिए नवाचार आवश्यक है।

शिक्षण-पद्धति—शिक्षण-पद्धति में नवाचार से हमारा तात्पर्य भौगोलिक क्षेत्र केंद्रित विशिष्ट शिक्षण-पद्धति विकसित करने से है। हम जानते हैं कि विश्व में प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र की सांस्कृतिक जीवन-पद्धति एक-दूसरे से भिन्न है। उदाहरण के लिए पूर्वी एशियाई देशों और मध्य एशियाई देशों की सांस्कृतिक जीवन-पद्धति, धार्मिक आस्था और राजनीतिक दृष्टिकोण एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। इसी तरह यूरोपीय देशों का जीवन-व्यवहार एशियाई देशों से भिन्न है।

यह भिन्नता शिक्षार्थी के सामाजिक और कक्षा व्यवहार में भी परिलक्षित होती है और इसका प्रभाव भाषा-अर्जन पर पड़ता है। इसलिए हिंदी विदेशी भाषा की शिक्षण-पद्धति में ऐसा नवाचार आवश्यक है जिससे वह भौगोलिक क्षेत्र विशेष की सांस्कृतिक सोच, धार्मिक मूल्य, और राजनीतिक दृष्टिकोण, और कार्य-संस्कृति (वर्क कल्चर) से तालमेल बैठा सके।

हि.वि.भा.शि. शिक्षण-पद्धति में नवाचार का दूसरा उद्देश्य है—डेफिसिट एजुकेशन पद्धति के स्थान पर असेट-बेस्ड एजुकेशन मॉडल को अपनाना। व्यापारिक, राजनयिक और रणनीतिक संबंधों के विस्तार की पृष्ठभूमि में आज के शिक्षार्थी के उद्देश्य भी अलग-अलग हैं। शिक्षार्थी की आकांक्षा रहती है कि हि.वि.भा.शि. उसके उद्देश्य को अपनी गतिविधि में समाहित करे। मोटे तौर पर देखें तो कक्षा में कुछ शिक्षार्थी ऐसे होंगे जो भारत में व्यापार करने के लिए या किसी ग्लोबल कंपनी में काम करने के लिए हिंदी सीख रहे होंगे। कुछ शिक्षार्थी द्विपक्षीय और राजनयिक संबंधों में अपना करियर देख रहे होंगे। जबकि, कुछ ऐसे होंगे जो रक्षा और रणनीतिक क्षेत्र में आदान-प्रदान की दृष्टि से हिंदी पढ़ रहे होंगे। ऐसे में, यदि हि.वि.भा. शिक्षण भाषा और व्याकरण की बारीकियों की चर्चा को अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ ले तो इसका परिणाम विपरीत ही होगा।

इसलिए हि.वि.भा. शिक्षण को अपनी चारदीवारी से बाहर निकल कर नवाचार लाना ही होगा ताकि वह शिक्षार्थी के

उद्देश्यों की उपर्युक्त विविधता को कमी (डेफिसिट) न मानकर गुण (असेट) समझे और यथासंभव उनकी आकांक्षा को भाषा-अर्जन की क्रियाओं में समाहित करे। लेकिन, इस नवाचार को संभव बनाने के लिए हि.वि.भा. शिक्षण को स्वयं भी इनोवेटिव होना पड़ेगा अर्थात् उसे हिंदी के विशिष्ट ज्ञान के साथ-साथ, भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनीतिक-आर्थिक, व्यावसायिक-व्यापारिक और द्विपक्षीय संबंधों की अद्यतन स्थिति की जानकारी रखनी होगी। अन्यथा नवाचार केवल विमर्श तक ही सिमट कर रह जाएगा।

भाषिक चुनौतियों से संबंधित नवाचार

उपर्युक्त तीन उपादानों के अतिरिक्त हि.वि.भा.शि. में नवाचार के संदर्भ में कुछ भाषिक समस्याओं या चुनौतियों की चर्चा भी करनी होगी जिनके समाधान के लिए नवाचार आवश्यक जान पड़ता है। हि.वि.भा.शि. के संदर्भ में हिंदी की तीन भाषिक स्थितियाँ सर्वाधिक जटिल कही जा सकती हैं—बहुयामी क्रियारूप, यादृच्छिक लिंग-व्यवस्था, और परसर्गों की सृजनशीलता। इसके अतिरिक्त हिंदी की संरचना में सामाजिक स्तरीकरण की उपस्थिति, शैलीगत बहुलता, प्रयोगों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि आदि स्थितियाँ भी कम जटिल नहीं हैं। इन जटिल स्थितियों से अलग एक गंभीर स्थिति है, हिंदी में पुस्तकीय सूचना और व्यावहारिक प्रयोग में तालमेल का अभाव।

संचार माध्यमों और सोशल मीडिया में हिंदी के (अशुद्ध) प्रयोगों को विदेशी शिक्षार्थी के लिए पचा पाना मुश्किल होता है। भारत सरकार के अधीन हिंदी के लिए कार्यरत संस्थाएँ यदि चाहें तो लैंग्वेज कीबोर्ड सॉफ्टवेयर के माध्यम से हिंदी के अशुद्ध प्रयोग संबंधी अराजक स्थिति को बहुत हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। जहाँ तक जटिल भाषिक स्थितियों से निपटने के लिए नवाचार की बात है तो हमारा मानना है कि हिंदी में "ग्रामर्ली" जैसा सॉफ्टवेयर विकसित करना युगांतरकारी नवाचार होगा जिससे हिंदी के देसी-वेदेशी प्रयोक्ता को बहुत सहूलियत होगी।

निष्कर्ष

विदेशी भाषा के अर्जन से प्रतिलाभ (रेट टू रिटर्न) संबंधी अध्ययनों से यह सिद्ध हो चुका है कि विदेशी भाषा में दक्षता से उच्चतर योग्यता सुनिश्चित होने के कारण नौकरी की उपलब्धता और बेहतर वेतन की संभावना प्रबल हो जाती है।[4] श्रम बाजार (लेबर मार्केट) के वैश्वीकरण ने विदेशी भाषा-दक्षता को एक अनिवार्य योग्यता बना दिया है। हमने पाया है कि आज के समय में हि.वि.भा.शि. शिक्षार्थियों के लिए एक महत्वपूर्ण कौशल (स्किल) हो गई है। भाषाओं को यदि सांस्कृतिक उत्पाद के रूप में देखा जाए तो हिंदी विदेशी भाषा शिक्षा को हम सांस्कृतिक उत्पाद के निर्यात के रूप में ले सकते हैं। इसलिए 'आत्मनिर्भर भारत' अभियान के संदर्भ में हिंदी विदेशी भाषा शिक्षा के सामर्थ्य और उसकी संभावना को पहचानते हुए 'आत्मनिर्भर' बनाना समय की माँग है और नवाचार के माध्यम से इसे बेहतर भारतीय उत्पाद के रूप में निर्माण और निर्यात आवश्यक।

संदर्भ :

1. https://aatmanirbharbharat.mygov.in/प्राप्त : जनवरी 15, 2021
2. आत्मनिर्भर भारत अभियान, नेशनल इन्वेस्टमेंट प्रोमोशन एंड फेलिसिटेशन प्राप्त : जनवरी 15, 2021
3. इनोवेशन एंड इकनोमिक ग्रोथ-गोल्डमैनशश https://www.goldmansachs.com/insights/archive/archive-pdfs/gsr. pdf, प्राप्त : जनवरी 25, 2021
4. Ginsburg, Victor A.; Rodriguez, juan Prieto : Returns to foreign languages of native workers in the European Union; Industrial and Labor Relations Review, April01, 2011 Vol. 64, issue03, 599-618.

एसोसिएट प्रोफेसर
दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड कॉमर्स (दि.वि.)
पूर्व प्रोफेसर
हंगुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज, सउल, दक्षिण कोरिया
मोबाइल : +919868554484 ई-मेल : dapsdu@gmail.com

कमल किशोर गोयनका

मॉरीशस : हिंद महासागर में एक नवोदित गणराज्य

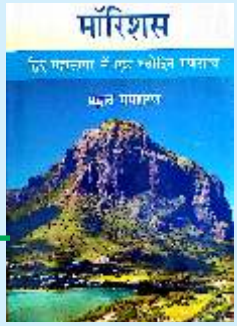

भारत के लिए मॉरीशस राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण देश है। मॉरीशस एक प्रकार से लघु भारत कहा जाता है और वहाँ भारत की धार्मिक संस्थाओं तथा हिंदी भाषा ने उल्लेखनीय योगदान किया है। भारत के हिंदी संसार को मॉरीशस के भारतवंशी प्रवासियों के संबंध में प्रमुखत: अभिमन्यु अनत के हिंदी साहित्य से जानकारी मिली और उसके बाद मॉरीशस का प्रवासी हिंदी साहित्य तथा हिंदी साहित्यकार भारत के लोक मानस से जुड़ते चले गए और दोनों देशों का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संबंध निरंतर स्थायी होता गया। इसके साथ वहाँ प्रह्लाद रामशरण जैसे व्यक्ति भी हुए जिन्होंने 1973 में दिल्ली विश्वविद्यालय से स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की और उन्होंने मॉरीशस की शिक्षा, दर्शन, संस्कृति, साहित्य, इतिहास, लोककथा, पत्रकारिता आदि में अनुसंधानपरक काम किया और वह 83 वर्ष के होने पर भी उसी तत्परता एवं लगन से लगे हैं।

पुस्तक	–	मॉरीशस : हिंदी महासागर में एक नवोदित गणराज्य
लेखक	–	प्रह्लाद रामशरण
प्रथम संस्करण	–	2019
मूल्य	–	600 रुपए
प्रकाशक	–	नेशनल पेपरबैक दरियागंज, नई दिल्ली

प्रह्लाद रामशरण ने मॉरीशस के लुप्त हिंदी साहित्य को खोजा, 'इंद्रधनुष' पत्रिका को हिंदी-फ्रेंच-अंग्रेजी में निकाला और अनेक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लिया। प्रह्लाद रामशरण की एक नई पुस्तक 'मॉरीशस! हिंद महासागर में एक नवोदित गणराज्य' वर्ष 2019 में प्रकाशित हुई है। यह पुस्तक 1987 में प्रकाशित एक पुस्तक का नया संशोधित संस्करण है और कई निबंध नए जोड़े गए हैं। इस पुस्तक में 19 निबंध हैं जो मॉरीशस में भारतवंशियों के आगमन, स्वतंत्रता संघर्ष, महात्मा गाँधी की मॉरीशस यात्रा, राष्ट्रपिता शिवसागर रामगुलाम, आर्य समाज आंदोलन, हिंदी भाषा और पत्रकारिता, प्रेमचंद्र का मॉरीशस संबंध, लोक साहित्य, हिंदी प्रेमी व लेखक सूरज प्रकाश भंगर भगत तथा सोमदत्त बखोरी आदि पर लिखे गए हैं।

मॉरीशस हिंदी महासागर में एक गणराज्य है और उसे जानने-समझने के लिए यह ग्रंथ उपयोगी होगा।

❖

कितनी माँएँ हैं मेरी

इसकी लेखिका अर्चना पैन्यूली वर्ष 1997 से डेनमार्क में रहती हैं और वे वहाँ हिंदी की अध्यापिका हैं। उन्होंने डेनिश तथा अंग्रेजी भाषा से कई उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद किया है और उनकी कहानियाँ हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहती हैं। उनका 'हाईवे ई-47' उपन्यास 1918 में प्रकाशित हुआ और अब उनका कहानी संग्रह 'कितनी माँएँ हैं मेरी' वर्ष 2019 में छपा है। यह कहानी संग्रह भारतीय पाठकों को माँ के महत्व को तो रेखांकित करेगी ही, माँ के अनेक रूपों से भी अवगत कराएगी, जिसकी यह स्वरूप में शायद हमने अनुभूति नहीं की है। इस कहानी संग्रह में माँ के कई रूप हैं—माँ, सौतेली माँ, अविवाहित माँ, धाय माँ और कुछ नए युग की माँएँ—फोस्टर

मदर, अडॉप्टेड मदर, सरोगेट मदर, सिंगल मदर, गे मदर आदि रूप दिखाई देते हैं, लेकिन इन माँओं पर लिखी इसकी 12 कहानियों की माँओं से लेखिका का निजी संपर्क रहा है और इनमें लेखिका की संवेदनाओं एवं अनुभूतियों का सौंदर्य विद्यमान है।

पुस्तक	–	कितनी माँएँ हैं मेरी (कहानी संग्रह)
लेखिका	–	अर्चना पैन्यूली (डेनमार्क)
प्रथम संस्करण	–	2019
मूल्य	–	400 रुपए
प्रकाशक	–	विद्या विकास ऐकेडमी, दरियागंज, नई दिल्ली,

लेखिका की इन कहानियों का यह वैशिष्ट्य है कि वह डेनमार्क अर्थात योख के परिवेश और जीवन शैली के साथ जुड़ी हैं, परंतु वे मातृत्व का जो भारतीय आदर्श है, उसकी स्पष्ट छाप इन कहानियों में देखी जा सकती हैं। कहानियों के कुछ विषय भारतीय पाठकों के लिए नए हैं और 'कबूतरी, थारो कबूतर गुटर-गुटर-गू बोल्यो रे' तो एकदम नई अनुभूति की कहानी है जिसमें कबूतर-कबूतरी के प्रेम, संतानोत्पत्ति के साथ मानवीय पात्रों—पति-पत्नी की संतानोत्पत्ति के प्रसंग को जोड़कर मार्मिक कहानी रची गई है।

इन कहानियों में अर्चना पैन्यूली की रचनात्मक क्षमता एवं सौंदर्य को देखा जा सकता है और माँ जैसे विषय पर बारह प्रकार की कहानियाँ लिखकर उनकी कल्पना शक्ति को भी। हिंदी के प्रवासी साहित्य की दृष्टि से इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

❖

देशी चश्मे से लंदन डायरी

हिंदी कि प्रवासी लेखिका शिखा वार्ष्णेय नई दिल्ली में जन्मी हैं और 2007 से लंदन में रहती हैं। वह स्वभाव से घुमक्कड़ हैं, कविता उनका पहला प्रेम है और वह अपने संस्मरण तथा सामाजिक जीवन की समस्याओं पर भी लिखती रही हैं। उनकी दो पुस्तकें 'स्मृतियों में रूस' (2012) यात्रा संस्मरण तथा 'मन के प्रतिबिंब' (2013) कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और अब 2019 में उनकी यह पुस्तक 'देशी चश्मे से लंदन डायरी' प्रकाशित हुई है। इसमें 63 लेख हैं जो 2012 से 2015 के बीच 'जागरण' तथा 'नवभारत' के पाक्षिक-साप्ताहिक स्तंभों में छपते रहे हैं और वे अब लंदन की डायरी के रूप में पुस्तक रूप में छपकर आए हैं।

शिखा वार्ष्णेय ने लंदन को भारतीय दृष्टि से देखा है। वहाँ के घटनाक्रम की तथा जीवन के विभिन्न रूपों की जाँच-पड़ताल की है और देशी चश्मे से लंदन के जीवन के ऐसे पक्ष रखे हैं, जिनके बारे में आम भारतीय नहीं जानता। जैसे लंदनवासी लोमड़ी पसंद करते हैं। वृद्धावस्था का अंत प्रायः 'ओल्ड एज होम' में होता है। कोचिंग सेंटर का धंधा खूब चलता है। भूत-चुड़ैलों आदि पर विश्वास करते हैं। बेरोजगारी वहाँ भी है। कैरियर और काम की असुरक्षा तनाव उत्पन्न करती है। व्यावसायिकता संवेदनशीलता खत्म कर रही है। नवयुवकों के चाकू-गन रखने वाले गैंग सक्रिय हैं। किशोरियों की योनि के अंग-भंग के अनेकों उदाहरण है। एशियाई माता-पिता पर बच्चों को अच्छी शिक्षा का गहरा दबाव है। स्वास्थ्य सेवा में भयानक कमियाँ हैं। बच्चों में मोटापा बढ़ रहा है।

लेखिका ने लंदन के भारतीय समाज के कुछ सुंदर प्रसंग भी दिए हैं जो यह विश्वास दिलाते हैं कि वे अपने

पुस्तक	–	देशी चश्मे से लंदन डायरी
लेखिका	–	शिखा वार्ष्णेय
प्रथम संस्करण	–	2019
मूल्य	–	200 रुपए
प्रकाशक	–	समय साक्ष्य, देहरादून

धर्म-संस्कृति तथा जीवन-शैली के साथ हिंदी भाषा को भी बनाए रखने के लिए कृत-संकल्प हैं। लंदन में होली, दिवाली, दुर्गा-पूजा, गणेश-चतुर्थी, करवा-चौथ आदि परंपरा के रूप में मनाये जाते हैं और भारत से दूर होने पर भी भारत को जीते हैं। लंदन में हिंदी सीखने का उत्साह है और नई पीढ़ी भारतीय संस्कृति, संगीत आदि को समझना चाहती है। हिंदी टी.वी. सीरियल बहुत लोकप्रिय हैं और ये भारतीय रहन-सहन एवं परिवेश में रमकर भी अपने मन में भारतीय संस्कृति की छवि को बनाकर रखते हैं। इस प्रकार लंदन ही नहीं यूरोपीय सभ्यता एवं जीवन-शैली को जानने के लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है।

❖

कविताएँ आस्ट्रेलिया से-बूमरैंग-2

हिंदी के प्रवासी साहित्य में आस्ट्रेलिया गए भारतीयों के हिंदी साहित्य की चर्चा कभी उल्लेखनीय नहीं रही, लेकिन ऐसा नहीं था कि वहाँ के हिंदी प्रेमियों ने हिंदी में कविता, कहानी आदि न लिखी हो। इधर इस कार्य में हरियाणा में जन्मी रेखा राजवंशी विगत दो दशकों से ऑस्ट्रेलिया में हैं और वे वहाँ शिक्षक हैं, हिंदी लेखिका हैं, अनुवाद अनुवादक हैं, रेडियो दूरदर्शन पर हिंदी में कार्यक्रम करती हैं और कई संस्थाओं में सक्रिय हैं। उनकी 5 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जिनमें पहली पुस्तक 'मुट्ठी भर चांदनी' ग़ज़ल संग्रह थी जो 2016 में प्रकाशित हुई। उन्होंने इसके लिए साथ एक और बड़ा काम किया है-'बूमरैंग' (एक शक्तिशाली आस्ट्रेलिया का अंतरराष्ट्रीय प्रतीक, मांस का अनेक चीजों में उपयोग होता है) नाम से आस्ट्रेलिया के हिंदी कवियों का कविता संग्रह, जिसमें 11 कवियों की रचनाएँ थीं और अब उन्होंने 'बूमरैंग-2' के रूप में उपरोक्त कविता संग्रह का संपादन करके प्रकाशित कराया है। इसमें ऑस्ट्रेलिया के 6 प्रांतों—ऐडलेड, ब्रिस्बेन, कैनबरा, मेलबोर्न, पर्थ और सिडनी के 40 कवियों की लगभग 150 कविताएँ संकलित हैं और इसकी यह भी विशेषता है कि इन कवियों में कृषि विशेषज्ञ, फाइनेंशियल सिस्टम कंसलटेंट, सिविल इंजीनियर, वैज्ञानिक, टैक्स अकाउंटेंट, भौतिकी प्रोफेसर, कैमिकल इंजीनियर, मनोचिकित्सक, मीडिया विशेषज्ञ आदि अनेक प्रकार के भारतीय हैं जो भिन्न-भिन्न आजीविका के क्षेत्रों में काम करते हुए भी हिंदी भाषा और अपने स्वदेश भारत से प्रेम करते हैं तथा अपने प्रवासी काल के अनुभवों, चिंताओं एवं संवेदनाओं को हिंदी भाषा में अभिव्यक्त करते हैं।

अत: रेखा राजवंशी का यह कथन ठीक है कि काव्य-शिल्प की दृष्टि से रखना उचित न होगा, लेकिन इन कविताओं में मिठास मिलेगी, विभिन्न रसों का आस्वाद मिलेगा और इनमें भारत की आत्मा के दर्शन होंगे। इन कविताओं में आस्ट्रेलिया के साथ भारत भी मिलेगा और हमें यह विश्वास भी कि रेखा राजवंशी ने आस्ट्रेलिया की प्रवासी हिंदी कविता का एक समग्र स्वर, एक झाँकी हमारे सामने रख रख दी है। पुस्तक का प्रकाशन भी सौंदर्यपूर्ण है।

❖

पुस्तक	–	कविताएं आस्ट्रेलिया से बूमरैंग-2 (कविता संकलन)
संपादन	–	रेखा राजवंशी
प्रथम संस्करण	–	2019
मूल्य	–	450 रुपए
प्रकाशक	–	विश्व हिंदी साहित्य परिषद शालीमार बाग दिल्ली

ए-98, फेज-1, अशोक विहार
दिल्ली-110052

संजय पंकज की कविताएँ

दिन आ गए

रंगों के दिन, गंधों के दिन
यौवन के अनुबंधों के दिन, आ गए!
गानों के दिन, तानों के दिन
रग-रग मोहक प्राणों के दिन, आ गए!

पागल बनकर हवा भागती
आप जगाती और जागती, हर ठौर!
मन की दुविधा बोझिलता ले
भागी जाती कोमलता दे, किस झौंर!

बौरों के दिन, भौंरों के दिन
संग नाचने, औरों के दिन, आ गए!

पग-पग घुंघरू, रुनझुन रुनझुन
फूट रहे हैं, गुनगुन गुनगुन, मधु बोल!
स्वर पर स्वर हर नूतन नूतन
सरगम-गत पर चंदन चंदन, है घोल!

अंजन के दिन, रंजन के दिन
पल पल मधु अभिनंदन के दिन, आ गए!

आँच बनी यह उतरायी है
डाल-डाल पर बौरायी है, चाँदनी!
पिछल-पिछल कर छाँह तलाशे,
अटक-भटक मन बाँह तलाशे, मादिनी!

छंदों के दिन, बंदों के दिन
मन के गोरख धंधों के दिन, आ गए!

फूल फूल पर, मदिर ऋचाएँ
गाकर धरती, मधुर कथाएँ, बाँचती!
सोंधी सोंधी, मींड़ रेत की
बुढ़िया दादी, पीर खेत की, आँजती!

अंधों के दिन, कंधों के दिन
रंग-बिरंगे, फंदों के दिन, आ गए!

❖

अग्नि कोख में पलती अम्मा

चूल्हा हो या हो घर आँगन
सब में खटती जलती अम्मा!
धूप संग दिन रात उसी के
जिसमें जलती गलती अम्मा!

खुली देहरी हवा बाहरी
जब भी घर के प्रतिकूल गई
असमय देख पसीने माथे
अम्मा अपना दुख भूल गई

बिस्तर से बिस्तर तक पहुँची
तब तक केवल चलती अम्मा!

कभी द्वार से लौट न पाए
कोई भी अपने-बेगाने
घर भर में हिम बोती है जो
उसके हिस्से झिड़की ताने

गोमुख की गंगा होकर भी
अग्नि-कोख में पलती अम्मा!

कैसी भी हो विपदा चाहे
उम्मीद दुआओं की उसको
बिना थके ही बहते रहना
सौगंध हवाओं की उसको

चंदा-सा उगने से पहले
सूरज जैसी ढलती अम्मा!

पीर-पादरी-पंडित-मुल्ला
मंदिर-मस्जिद औ' गुरुद्वारे
हाथ उठाए आँचल फैला
माँग रही क्या साँझ-सकारे

वृक्ष-नदी-गिरि शीश झुकाती
जितना झुकती फलती अम्मा!

❖

रंग जमाना

रंग-बिरंगी इस दुनिया में
अपना भी रंग जमाना!
मौसम चाहे जैसा भी हो
तुम खिलना और खिलाना!

अनुपम है यह देश हमारा
अनुपम इसकी माटी है,
अनुपम है हर राग सुहाना
अनुपम यह परिपाटी है,

इसका तो है रूप अनोखा
इसका है संग सुहाना!

भाषा-भाषा चन्दन-चन्दन
खुशबू-खुशबू बोली है,
बच्चा-बच्चा मंदिर मस्जिद
ईद दिवाली होली है,

कभी गिले फिर गले-गले हैं
बच्चों का ढंग सुहाना!

फूलों-सा तुम खिलते रहना
जलते रहना सूरज-सा,
चन्दन-सा तुम शीतल रहना
निर्मल रहना पंकज-सा,

रंग-गंध ले सब में घुलना
तुम मिलना और मिलाना!

❖

शुभानंदी, नीतीश्वर मार्ग, आमगोला
मुजफ्फरपुर-842002, मोबाइल : 6200367503

गरिमा सक्सेना की कविताएँ

छन रही है धूप

पत्तियों की
छन्नियों से
छन रही है धूप
दिख रहा
पगडंडियों का
अब सुनहरा रूप

सूर्य बनने को
चली हैं
शावकों की टोलियाँ
स्वप्न आँखों में
सजाए
तोतली सी बोलियाँ

नए कल का
गढ़ रही हैं
पुस्तकें प्रारूप

जा रहीं
अल्हड़ गगरियाँ
खिलखिलाने घाट पर
स्वर्ण
मिट्टी को बनाने
कृषक निकले बाट पर

चाहते
सुख-दुख फटकना
आँख के दो सूप

मंदिरों में
बज रही हैं
आस्था की घंटियाँ
रोटियों को
थाप देतीं
खनखनाती चूड़ियाँ

लग रही है
भोर मनहर
गीत का प्रतिरूप

❖

हफ्ता ही इतवार हो गया

खुशियों का उजियार हो गया
दूर सभी पतझार हो गया

बौराईं मन की इच्छाएँ
लगी कूकने कोयल मन में
बासंती सी छुवन तुम्हारी
कोंपल फूट पड़ीं जीवन में
धूप तुम्हारे संग की मिली
दिन खिलता कचनार हो गया

रंगमई हैं दसों दिशाएँ
रंगोली सी धरा सज रही
कानों में संगीत घुल रहा
शहनाई हर ओर बज रही
त्योहारों के मौसम में मन
सजी-धजी बाजार हो गया

रातें तारों में कटतीं हैं
दिन पतंग बन उड़ जाते हैं
कहाँ ध्यान अब काम-धाम का
ख्वाब हमेशा उलझाते हैं
प्यार भरा व्यापार हुआ है
हफ्ता ही इतवार हो गया

❖

मकान संख्या-212 ए-ब्लॉक, सेंचुरी सरस अपार्टमेंट, अनंतपुरा रोड, यलहंका, बैंगलोर, कर्नाटक-560064
मो : 7694928448 ईमेल-gariM+asaxena1990@gmail.com

डॉ. अलका दूबे की कविताएँ

प्रेम में डूबी स्त्री के पास प्रेम अपार होता है

प्रेम में डूबी स्त्री के पास प्रेम अपार होता है
और संभावना होती है इसके और अधिक विस्तार की
मन, मस्तिष्क के साथ-साथ वह करती है प्रेम
अपने शरीर के समस्त अंगों के माध्यम से भी
करती है वह सृजन मानव सृष्टि का
पोषती है सृष्टि को अपने तन से
करती है वह जो वह प्रेम का विस्तार है
प्रेम सृजन द्वारा प्रेम पोषण द्वारा
प्रेम स्पर्श द्वारा और आलिंगन से
प्रेम मिलन और विरह द्वारा भी
हैं अनन्त, असीमित, अनगिनत आयाम उसके प्रेम के
कोमल है प्रेम उसका और कठोर भी
प्रेम उसका समागम में है प्रेम उसका आगम में
अद्भुत है अनुभूति उसके प्रेम की क्योंकि

प्रेम में डूबी स्त्री के पास प्रेम अपार होता है!! V

मैं सृष्टि हूँ

मैं सृष्टि हूँ, वृष्टि भी मैं ही
आदि भी मैं हूँ,अनन्त भी मैं ही

जड़ भी मैं हूँ, चेतन भी मैं ही
मैं ही हूँ सत्ता तुम्हारे हृदय की

माता भी मैं हूँ, बेटी भी मैं ही
राधा भी मैं हूँ, रुक्मनी भी मैं ही

ममता भी मैं हूँ कठोरता भी मैं ही
आलम्ब भी मैं हूँ, स्वावलम्ब भी मैं ही

तुम्हारे स्वप्न में भी हूँ यथार्थ में भी
शान्ति में भी मैं ही चीत्कार में भी

नित कठोर होते इस जीवन में
निराशा भी मैं हूँ और ऊर्जा भी मैं ही

निर्विघ्न, निरापद, निरन्तर इस जगत में
सुनो!! मैं स्त्री हूँ!!!

❖

एन-1/65, ए-15, गणेश बाग, नगवा, निकट तुलसी विद्या निकेतन स्कूल
वाराणसी-221005 (उ.प्र.) मोबाइल : 7887251062

अशोक सिंह की नज़्में

तन्हा कितनी भी आज गुज़राँ है,
जल्द दोबारा मुस्कुराएगी,
जीस्त जो आज बे-मेहर सहमी
कल फिर इस में बहार आएगी।

बे-मेहर=प्रेम रहित

❖

दिन ओ हफ़्ते महीने गुज़रे यूँ
जैसे बदली न रुत ज़माने से
इक उदासी सी तारी दुनिया में
आजिज़ अपने सब आशियाने से
शम्मा भी है धुआँ धुआँ जैसे
ये उजाले भी ज़र्द दिखते हैं
तीरा-शब आफ़्ताब ख़्वाबों में
दिन में अक्सर ही तारे दिखते हैं
सच कहें तो दरीदा है तबियत
हम ओ तुम, सब ही चाक-दामानी
दूर रह कर हुये हैं दूर ऐसे
घुट रहा जज़्बा रोज़ इंसानी

इतना महरूम है अगर मंज़र
दिल की कैसे पुकार आएगी,
ज़ीस्त जब इतनी बे-मेहर सहमी
कल को कैसे बहार आएगी।

तन्हा रह कर वजूद फिर हमने,
ग़ौर से देखा आजमाया है,
आइना ख़ाने हमसे ख़ौफ़ ज़दा
ताबनाक अब न अपना साया है

राहतें तल्ख़ ज़िंदगी की अब
और लताफ़त में भी कसाफ़त है
पैरहन इस बहार का है जुदा
जैसे आई कोई क़यामत है
ख़ंदाजन जैसे इक ज़माने से
आज के दिन की राह तकता था
हम ओ तुम क़ैद आज बंदिश में
और वो कल से जैसे हँसता था

आँखें तरसीं शबाब तकने को
क्या ये यूँ ही बहार जाएगी
जीस्त जब इतनी बे-मेहर सहमी
कैसी अबकी बहार आएगी।

ताबनाक=रौशन; ख़ंदाजन=उपहास करने वाला; ताबनाक=आतिशीं; लताफ़त=मिठास; कसाफ़त =मिलावट

❖

सिलसिला वक़्त की ये गर्दिश का
सारी दुनिया में हर्जा-हाज़िर है
शक हुकूमत पे इसकी जिसने किया
उसका अंजाम सबको ज़ाहिर है
सब ही पाबंदी-ए-क़फ़स में जड़े,
जान-ओ-तन, होश-ओ-गुमाँ और ख़िरद,
कोई सूरत नजर तो अब आए
कोई तो बेबसी की भी हो हद
हो गुरेज़ाँ अगर ये आलम तो
गेसुओं के घने ख़ुनुक साए
कर के ख़ुशबू से उस मोअत्तर फिर
रोज़-ए-आइंदा में पिघल जाए

आँखों के दरमियान जो दहशत,
जाते जाते ये दिल से जाएगी,
ज़ीस्त इतनी थी बे-मेहर सहमी
कल याँ इसमें बहार आएगी।

ख़िरद=बुद्धि

❖

फिर से शादाबियों की तख़्लीक़ें,
बाँटें ख़ुशबू बदन की फूलों में
देखो बाहर बहार है शामिल,
फिर चमन के हसीन जल्वों में
चल के मानिंद तिफ़्ल के हम ने,
सब्र रख, जम के की लड़ाई है
रह के तन्हा, औ साथ मिल जुल के
इस मुसीबत से जाँ छुड़ाई है
फिर से महफ़ूज़ हो के रातों को,
चाँद, तारों के ख़्वाब बुनना है
ये मुरस्साई ज़ेब जो कुदरत
जज़्ब ख़ुद को फिर उस में करना है।

थक वबाई से ये ख़िज़ाँ भी अब,
खूब पुर-शौक़ मुस्कराएगी,
ज़ीस्त कितनी ही बे-मेहर सहमी
कल को फिर से बहार आएगी।

शादाबियों=ख़ुशियाँ;
तख़्लीक़=पैदाइश
मुरस्सा=अलंकृत; ज़ेब=ख़ूबी

❖

557, सेंट्रल एवेन्यू, 4बी
सेडारहर्ट्स्ट, एनवाई 11516 यू.एस.ए.
मोबाइल : +1 516 695 5544
ई-मेल : ashokgsingh@gmail.com

सत्या शर्मा 'कीर्ति' की कविता

बोलो कविता क्या तुम तैयार हो

सुनो कविता
तुम साथ दो मेरा
कुछ किताबें
लिख दो ऐसी
जिसके पन्नों पर सजे हों
जीवन-मृत्यु के गीत
जीत-हार के गीत
जिसमें समाज का
संघर्ष भी हो
परिवर्तन की उम्मीद भी हो
भविष्य के सपने भी हों
कुछ मेरे अपने भी हों
कुछ रास्ते के पते भी हों
कुछ जीवन के सन्देश भी हों

हाँ, देखा है मैंने भी
एक खूबसूरत सा सपना
पर, मेरी कविताओं!
क्या तुम तैयार हो?
क्या शब्द बन रहे हैं सार्थक
क्या लेखनी ले रही है करवट
हाँ, कविता आज तुम बोलो
मौन न रहो
क्या समाज को गति दे पाओगी तुम?
क्या विचारों की क्रांति ला पाओगी तुम?
दे सकोगी सूखे ओंठों पर खुशियाँ?
कहीं तख्त से डर तो नहीं जाओगी?
क्या सच्चाई का दामन थाम आगे बढ़ पाओगी?

बोलो कविता यूँ मौन न रहो
यह वक्त है परिवर्तन का
एक पुनर्जागरण का
लेना होगा तुम्हें भी नया रूप
सिर्फ बगीचों के बीच
नदियों के बीच
पहाड़ों की तलहटी के नीचे
मत ढूँढना तुम गीत
देखो आँखों की कोरों पर
ढलती बूँदों को
रास्ते पर चलते
नहीं थकते पैरों को

हाँ, बोलो कविता तुम तैयार हो
बस, मुझे तुम्हारा साथ चाहिए
पन्नों में नया इतिहास चाहिए
बदलाव की बयार चाहिए।।

अब तो बोलो कविता

क्या तुम तैयार हो.... ? ? ?

❖

डी-2, सेकेंड फ्लोर, महाराणा अपार्टमेंट
पी. पी. कम्पाउंड, रांची- 834001 (झारखंड)
मोबाइल : 7717765690
ई-मेल : satyaranchi732@gmail.com

शोभा त्रिपाठी के गीत

फूल सरसों के खिले
चले भी आते सनम
मुझको लगा लेते गले
चैन कुछ दिल को मिले
फूल...

नाचते आते भ्रमर
पुष्प-रस पाते भ्रमर
नशे में डूबे हुए
गीत कोई गाते भ्रमर
गीत जब गाते भ्रमर
आग सी इस तन में जले
कमी तब और खले
फूल...

हवा जो मस्त चली
खिली है दिल की कली
चमन से सुमनों को चुन
मैंने सजा दी है गली
सजा दी मैंने गली
स्वप्न भी आँखों में पले
एक उम्मीद तले
फूल...

करें सखियाँ ठिठोली
वो मारे ताना बोली
मेरे साजन ले आओ
अब तो मेरे आँगन डोली
ले आओ आँगन डोली
साँस तो साँसों में घुले
वक्त बिरहा का ढले
फूल...

❖

सुनो
नेहा तोसे लागे
बातें तुम्हारी खट्टी मीठी
इमली रस ज्यों गुड़ में पागे
नेहा...

जब से तुम मेरे इस उर की प्रीत बने
साज- सिंगार- गहने- दर्पण मीत बने
आभूषण के स्वर मिलकर संगीत बने
श्रृंगारी सब भाव होठ के गीत बने
मन वीणा की तंत्री के सातों सुर हैं जागे
नेहा...

ये पग तेरी ओर ही बढ़ते हैं क्षण-क्षण
लौह और चुंबक में हो जैसे आकर्षण
हृदय चाहता करना अब सर्वस्व समर्पण
नदिया जैसे सागर को सब कर दे अर्पण
जीत लिया तुमने मन मेरा रोम-रोम अनुरागे
नेहा...

ओढूंगी वो चुनरी जिसका तुझसे राब्ता हो
जिसमें नगीना तेरे प्यार का ही गुँथा हो
सूत-सूत कि जिसमें तेरा रंग घुला हो
तार तार के जिसमें केवल प्रेम लिखा हो
मन की तकली काट रही वो प्रेम- प्रीत के धागे
नेहा...

❖

ई-41, हरिहर नगर, इंदिरानगर, लखनऊ-226016
मोबाइल : 9454045098

गीतांजलि कालरा की कविताएँ

चौखट

कल की ही तो बात थी
मेरी हर शाम मुस्कुराती थी
गुनगुनाती थी और कहती थी
चलो थोड़ा और आगे चलो

अपने परायों के बीच
मैं सेतु बन कर चलती रही
जलती रही, संभालती रही
परंतु फिर भी चलती रही

चाहतों की वादियों को बंजर होते
मैंने अपनी आंखों से देखा
सपनों से बहते आंसुओं से खुद को भिगो कर देखा
मैंने सीखा खुद को भुला
जीवन जीने का फलसफा

उम्र के उलझे तारों से
आड़ी तिरछी होती लकीरों को देखा
और देखा उस चौखट को
जहाँ प्रवेश वर्जित हो गया था

धुआं धुआं से जिंदगी में
खुद को पिघलते हुए देखा
आस की गहरी लकीरों में
विश्वास को भटकते हुए देखा

मैंने देखा जीवन की रोशनाई को
रंग बदलते हुए
रंगीन अक्षरों को काला पड़ते हुए।

❖

सहेज कर

सावन के सपनों में
पतझड़ से गिरते पत्ते
मुझे बहुत याद आते हैं

बे मौसम झरने वाले पत्तों को
मैं सहेज कर रख लेती हूं
मैं सहेज कर रख लेती हूं
बे मौसम बदलने वाले रंगों को

मैं सहेज कर रख लेती हूं
शीतल हवा की आंधी में
उखड़े हुए पेड़ों की मासूम डालियों को
मैं सहेज कर रख लेती हूं
तूफान के बाद पत्तों से टपकते हुए
बारिश की कुछ बूंदों को
जो अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहा है

मैं सहेज लेती हूं
अपनी सुनहरी यादों को
बुरे वक्त के लिए
आखिर मुझे अभी जीना है
बहुत दूर तक चलना है।

❖

1494, द्वितीय तल, आउट्रम्स लाईन्स
मुखर्जी नगर, दिल्ली-110069

क्षेत्रीय कार्यालय लखनऊ द्वारा स्थापना दिवस के अवसर पर अफगानिस्तान के मसीह एल्हाम द्वारा गजल की प्रस्तुति।

क्षेत्रीय कार्यालय लखनऊ द्वारा क्षितिज श्रृंखला कार्यक्रम के तहत 21 जनवरी 2021 को श्री विजय चन्द्र द्वारा सिंथेसाइजर वादन की प्रस्तुति।

दिनांक 29.1.2021 को डॉ. प्रशांत मल्लिक और डॉ. निशांत मल्लिक द्वारा धृपद स्वर गायन का ऑनलाइन आयोजन क्षेत्रीय कार्यालय पुणे द्वारा किया गया।

दिनांक 30 जनवरी 2021 को टॉल्सटॉय फार्म, जोहानसबर्ग, दक्षिण अफ्रिका में उपस्थित समूह।

दिनांक 5 फरवरी 2021 को महात्मा गाँधी सांस्कृतिक सहयोग संस्थान, ट्रिनीडाड एवं टोबैगो द्वारा बैठक गाना की एक शाम का आयोजन किया गया जिसमें श्री शाम रामलाल और उनके परिवार के बैंड ने प्रस्तुति दी।

दिनांक 14 फरवरी 2021 को क्षेत्रीय कार्यालय वाराणसी और संगीत परिषद काशी के संयुक्त तत्वाधन में श्रीमति सुचरिता गुप्ता (बनारस से) द्वारा शास्त्रीय गायन कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

दिनांक 18 फरवरी 2021 को श्री विराज सिंह, राजदूत, दुशानबे ने ताजिक छात्रों से मुलाकात की, जो लखनऊ विश्वविद्यालय में GSS ICCR कार्यक्रम के तहत विभिन्न विषयों में स्नातक और स्नातकोत्तर के रूप में भारत में अध्ययन करने जा रहे हैं।

20 फरवरी 2021 को मेक्सिको में भारतीय राजदूतावास तथा गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर, भारतीय सांस्कृतिक केंद्र द्वारा ऑनलाइन फेसबुक लाइव पर एक कार्यशाला और सेमिनार लाइफ आन स्क्रोल का आयोजन किया गया। इसमें भारत और मेक्सिको की विविध लोक चित्रकलाओं का प्रदर्शन किया गया। इन दोनों देशों के कलाकारों की कलात्मक एवं सांस्कृतिक समानताओं तथा विविधताओं के अतिरिक्त कोविड 19 महामारी से वे कैसे जूझ रहे हैं इस बारे में भी बात की गई।

हमारी संस्कृति शृंखला के अंतर्गत गुरुदेव टैगोर भारतीय सांस्कृतिक केंद्र की निदेशिका डॉ. श्रीमती दास ने "विवाह स्वर्ग में निर्मित होते हैं"-के शीर्षक से भारतीय संस्कृति में उत्कृष्ट रीति रिवाजों पर एक वार्ता दी।

क्षेत्रीय कार्यालय लखनऊ द्वारा दिनांक 3 मार्च 2021 को क्षितिज शृंखला कार्यक्रम के तहत श्री जावेद हुसैन खान एण्ड पार्टी द्वारा कव्वाली प्रस्तुति।

दिनांक 15 अप्रैल 2021 को आई.सी.सी.आर. एवं दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा संयुक्त रूप से 'डेस्टिनेशन इंडिया-मेकिंग इंडिया द प्रिफर्ड हब ऑफ एजुकेशन' पर दूसरा राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया।

होराइजन सीरीज के अंतर्गत दिनांक 17 मार्च 2021 को क्षेत्रीय कार्यालय भोपाल द्वारा आमंत्रित सुश्री श्रद्धा जैन द्वारा सुर मिलाप कार्यक्रम की प्रस्तुति।

श्रीमती ममता शंकर के नेतृत्व में 18 सदस्यीय समसामयिक नृत्य समूह ने 15-23 मार्च 2021 तक भारत-बांग्लादेश राजनयिक संबंधों और बांग्लादेश मुक्ति संग्राम की स्थापना की 50वीं वर्षगांठ के जश्न के दौरान बांग्लादेश में सांस्कृतिक कार्यक्रम की प्रस्तुति।

17 मार्च 2021 को बंगबंधु शेख मुजीबुर रहमान की जयंती के दौरान बांग्लादेश के माननीय प्रधान मंत्री, श्रीमती एच.इ. शेख हसीना की उपस्थिति में श्रीमती ममता शंकर नृत्य समूह द्वारा प्रदर्शन।

दिनांक 26.03.2021-होराइजन सिरीज के अंतर्गत सुश्री रंजीता बनर्जी और उनके समूह छंद मंजुरी द्वारा सत्यजीत रे सभागार, रवींद्रनाथ टैगोर केंद्र, I.C.C.R., कोलकाता में ओडिसी नृत्य

स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, भारत के प्रधान कोंसलावास, सिडनी द्वारा ऑस्ट्रेलिया में भारत के उच्चायुक्त महामान्य श्री ऐ. गीतेश सर्मा का विदाई समारोह मार्च 2021 में आयोजित किया गया। इस अवसर पर उच्चायुक्त जी ने वहां उपस्थित अतिथि गण को सम्बोधित किया तथा सी.जी.आई., सिडनी द्वारा प्रकाशित 'इंडिया कनेक्ट' नामक अंक का विमोचन किया।

स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, तेहरान द्वारा दिनांक 23 मार्च 2021 को इंडिया@75 के उत्सव पर रंगारंग कार्यक्रम में ईरान के गिलान से आए कलाकारों द्वारा लोक गीतों की प्रस्तुति।

पंडित अजॉय चक्रवर्ती एवं उनके समूह द्वारा मुजीब बोरशो के समापन समारोह के दौरान, नई राग "MOITREE", बंगबंधु शेख मुजीबुर रहमान और भारत बांग्लादेश मैत्री को समर्पित की गई एवं दिनांक 26 मार्च 2021 को राष्ट्रीय परेड ग्राउंड, ढाका, बांग्लादेश में सांस्कृतिक कार्यक्रम की प्रस्तुति दी गई। इस दौरान श्री एच.इ. अब्दुल हामिद-बांग्लादेश के माननीय राष्ट्रपति एवं श्रीमती एच.इ. शेख हसीना-बांग्लादेश की माननीय प्रधान मंत्री, महामहिम श्री नरेंद्र मोदी-भारत के प्रधान मंत्री और अन्य उच्च स्तरीय गणमान्य व्यक्तियों की उपस्थिति में यह कार्यक्रम संपंन हुआ।

स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र सूवा, फीजी द्वारा दिनांक 29 मार्च, 2021 को होली उत्सव पर छात्र भांगड़ा प्रस्तुति देते हुए।

दिनांक 07 अप्रैल, 2021 को आयोजित कार्यक्रम के दौरान भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के अध्यक्ष एवं महानिदेशक द्वारा विदेशी सांस्कृतिक केंद्रों के प्रमुखों के साथ पारस्परिक संवाद।

दिनांक 07 अप्रैल, 2021 को भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के महानिदेशक और विदेशी सांस्कृतिक केंद्रों के प्रमुखों का सामूहिक फोटो।

दिनांक 9 अप्रैल 2021 को क्षेत्रीय कार्यालय गोवा द्वारा आयोजित आई.सी.सी.आर. स्थापना दिवस के अवसर पर डॉ. विनय सहस्त्रबुद्धे, अध्यक्ष, आई.सी.सी.आर., दर्शकों को संबोधित करते हुए।

दिनांक 9 अप्रैल 2021 को क्षेत्रीय कार्यालय गोवा द्वारा आयोजित आई.सी.सी.आर. स्थापना दिवस के अवसर पर मयंक बेडेकर व छात्र तबला वादन प्रस्तुत करते हुए।

दिनांक 09.04.2021 को क्षेत्रीय कार्यालय कोलकाता द्वारा रवींद्रनाथ टैगोर केंद्र, सत्यजीत रे सभागार में आई.सी.सी.आर. का स्थापना दिवस का आयोजन।

दिनांक 9 अप्रैल 2021 को क्षेत्रीय कार्यालय भुवनेश्वर द्वारा आई.सी.सी.आर. का 71वाँ स्थापना दिवस वर्चुअल प्लेटफॉर्म के माध्यम से मनाया गया।

दिनांक 03.04.2021 को रवींद्रनाथ टैगोर केंद्र, I.C.C.R., कोलकाता द्वारा रंगोत्सव कार्यक्रम का आयोजन तथा इस दौरान सुश्री मौनीता चटर्जी और श्रीमान सृजन चटर्जी द्वारा कार्यक्रम की प्रस्तुति।

विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, टोक्यो द्वारा भारतीय संस्कृति के प्रचार हेतु आयोजित कार्यक्रम में जापानी बच्चों द्वारा भरतनाट्यम नृत्य की प्रस्तुति।

विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, टोक्यो द्वारा आयोजित विश्व हिंदी दिवस, 2021 के कार्यक्रम में टोक्यो विदेशी अध्ययन विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के छात्रों द्वारा 'जान है तो जहान है' नामक नाटक की प्रस्तुति।

द गाँधी सेंटर, द हेग द्वारा होली पर्व के अवसर पर हास्य कवि सम्मेलन "सरहदों के पार" का ऑनलाइन आयोजन किया गया।

गोवा विश्वविद्यालय के कर्मचारियों और शिक्षकों के साथ ICCR के अंतर्राष्ट्रीय छात्र।

गोवा के माननीय मुख्यमंत्री डॉ. प्रमोद सावंत, पद्मश्री विनायक खेडेकर, सुदर्शन शेट्टी, क्षेत्रीय अधिकारी, गोवा और सम्राट संगीत अकादमी के सदस्यों द्वारा दीप प्रज्ज्वलित कर सम्राट संगीत सम्मेलन का उद्घाटन किया गया।

गोवा के माननीय मुख्यमंत्री डॉ. प्रमोद सावंत जी के हाथों पद्मश्री विनायक खेडेकर जी का सत्कार।

क्षेत्रीय कार्यालय बेंगलुरू द्वारा आयोजित कठपुतली प्रदर्शन के बाद सुश्रमेला पपेट ट्रूप, बेंगलुरू द्वारा दर्शकों को कला की व्याख्या करते हुए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....

.....

.....

.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....

.....

.....

.....

विवरण	शुल्क		प्रतियों की सं.	रुपये/US$
गगनांचल वर्ष	एक वर्ष	` 500 (भारत) US$ 100 (विदेश)		
	तीन वर्षीय	` 1200 (भारत) US$ 250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय पुस्तक विक्रेता	10% 25%		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक .....

रु./US$ ..... बैंक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ :
कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं. 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप .....

नाम .....

पद .....

दिनांक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 43 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ-साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश-विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य, विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों और दार्शनिकों जैसे महात्मा गाँधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएँ परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन-योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य और नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिलकर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र के दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनर्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दी पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारत य सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है, विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

अध्यक्ष	:	23378616, 23370698
महानिदेशक	:	23378103, 23370471
उप-महानिदेशक (प्रशासन)	:	23370784, 23379315
उप-महानिदेशक (संस्कृति)	:	23379249, 23370794
वरिष्ठ कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)	:	23379386
प्रशासन अनुभाग	:	23370834
वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23379638
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स. 2268/2272

गगनांचल

iath;u la[;k] vkj-,u/32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के प्रकाशन

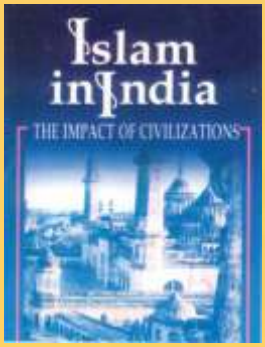

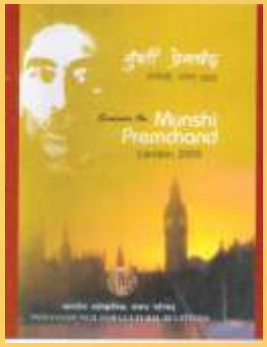

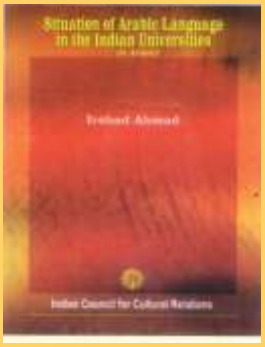

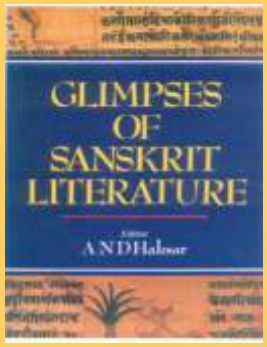

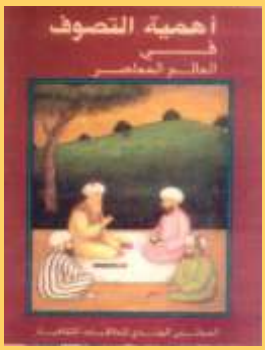

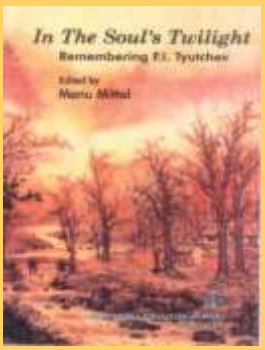

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
Qksu % 91-11-23379309, 23379310
bZ&esy % pohindi.iccr@nic.in
osclkbV % www.iccr.gov.in

आवरण परिकल्पना : ममता गोयनका